भारतीय तथ्य जो आधुनिक विज्ञान से परे (ज्ञानधारा-18)

वैज्ञानिक डार्विन तथा अन्यान्य जीव विज्ञान अधिक असत्य आंशिक सत्य

(धार्मिक तथा वैज्ञानिक दृष्टि से)

विदेशी वैज्ञानिक की जिज्ञासाओं का समाधान

फलोरिडा वि.वि. अमेरिका के प्रो.डॉ. बिटनी बॉमन की धर्म, दर्शन, विज्ञान, पर्यावरण सम्बन्धी जिज्ञासाओं का समाधान करते हुए आचार्य कनक नन्दी

संघ मिलन एवं प्रवचन

आचार्य कनक नन्दी ससंघ तथा आर्यिका सुप्रकाशमती ससंघ का वात्सल्य मिलन एवं प्रवचन। (टोकर-2011)

संघ मिलन, स्वाध्याय एवं शंकासमाधान

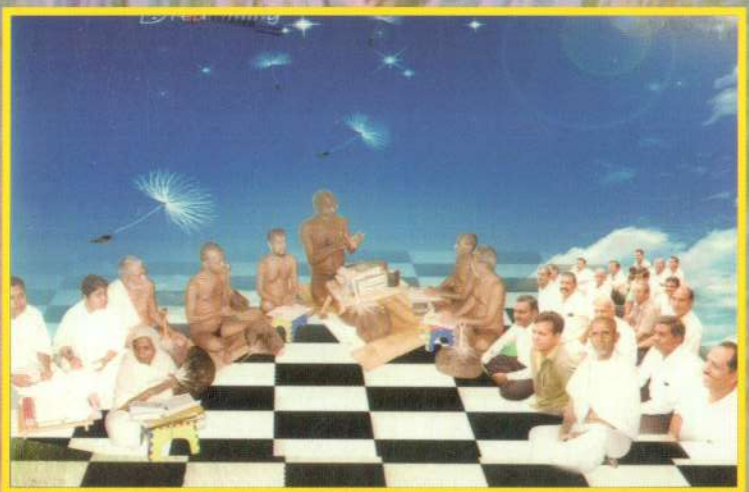

आचार्य कनक नन्दी ससंघ तथा मुनि पुष्पदन्त सागर (शिष्य, आ. पुष्पदन्त सागर)

भारतीय तथ्य जो आधुनिक विज्ञान से परे (ज्ञानधारा-18)

वैज्ञानिक डार्विन तथा अन्यान्य जीव-विज्ञान

अधिक असत्य आंशिक सत्य

(धार्मिक तथा वैज्ञानिक दृष्टि से)

लेखक - आचार्य कनकनन्दी

पुण्य-स्मरण

आचार्य श्री कनकनन्दी साहित्य कक्ष की स्थापना (स्वग्राम-मन्दिर) करने के उपलक्ष्य में आगामी साहित्य प्रकाशनार्थे स्वेच्छा से दान-दातार

-उदार ज्ञानदानी महानुभाव-

1. श्री प्रकाश शिखरचन्द जी अजमेरा, सञ्जय शान्तिलाल जी पहाड़े, शान्तिलाल खुशालचन्दजी पाटनी, सुनील गुलाबचन्द जी कासलीवाल (सभी औरंगाबाद, महाराष्ट्र) से
2. श्री लालचन्द सुमतिसा खड़कपुरकर, देवलगाँवराजा (महा.)
3. श्री दि. जैन समाज, झाड़ोल (सराड़ा)
4. श्री दि. जैन समाज, चावण्ड
5. श्री दि. जैन समाज, बड़गाँव
6. श्री मणिलालजी गोटी, बड़गाँव
7. श्री दि. जैन समाज, सेमारी
8. श्री दि. जैन समाज, टोकर
9. श्री दि. जैन समाज, सराड़ा
10. श्री दि. जैन समाज, केजड़

ग्रंथाक - 199 प्रतियाँ - 1000

संस्करण - 2011 मूल्य - 101/-रु.

-: सम्पर्क सूत्र :-

डॉ. नारायणलाल कछारा (सचिव)

55, रवीन्द्र नगर, उदयपुर (राज.) - 313001

-प्रस्तुत कृति का संक्षिप्त परिचय-

जो मानव स्व-शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि-सम्वेदना-भावना एवं आत्मा का समग्रता से पूर्णतः शोध-बोध करके स्व-शुद्धात्मा की उपलब्धि करेगा, वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का भी शोध-बोध कर लेगा। क्योंकि "जो एक्क जाणई सो सव्व जाणई" "एक भावः सर्वतः येन ज्ञाता सर्वभावः सर्वतः तेन ज्ञाता" "जो पिण्डे सो ब्रह्माण्डे" "आत्मनः विद्धिः" "आद दीपो भवो पर दीपो भवो" "आदहिदं कादव्वं यदि चेत् परहिद कादव्वम्" के अनुसार भौतिक शरीरादि के ज्ञान से भौतिक ब्रह्माण्ड का ज्ञान होगा, मन-बुद्धि आदि के ज्ञान, मनोविज्ञान से लेकर समाज विज्ञान, कानून, राजनीति आदि का ज्ञान होगा तथा आत्मा के ज्ञान से विश्वात्मा/शुद्धात्मा/सम्पूर्ण जीवों का ज्ञान होगा। क्योंकि एक परमाणु या एक जीव के पूर्ण ज्ञान के लिए अनन्तज्ञानी सर्वज्ञ होना पड़ेगा। सर्वज्ञ के बिना कोई भी मानव से लेकर वैज्ञानिक तक केवल एक परमाणु या एक जीव को पूर्णतः नहीं जान सकते हैं। इस दृष्टि से सामान्य मानव क्या, भौतिक वैज्ञानिकों से लेकर मनोवैज्ञानिक तथा जीव वैज्ञानिक भी एक जीव के बारे में पूर्णतः नहीं जान सकते हैं। इसके लिए प्रमाण है- दीर्घकालिक वैज्ञानिक शोध-बोध-खोज-इतिहास। इन सब सत्य-तथ्य-प्रमाणों को समन्वित करके सत्य-समता-शान्ति की साधना तथा उपलब्धि के लिए मैं (आचार्य कनकनन्दी) सतत प्रयासरत हूँ। उसका ही एक बाह्य छोटा प्रतिफल प्रस्तुत कृति है। इस कृति के सदुपयोग से विश्व मानव तथा विशेषतः सत्यग्राही वैज्ञानिक जीव, विज्ञान के परिज्ञान से स्व-परिज्ञान करके स्व-पर-विश्व कल्याण करें, ऐसी मंगलमय शुभभावनाओं के साथ-

आचार्य कनकनन्दी (दि. 14/8/2011)

विशेष सूचना -

इस शोधपूर्ण कृति में धर्म-दर्शन-विज्ञान सम्बन्धी गहन-गम्भीर-सूक्ष्म-व्यापक विषय है। अतः विषय को सरल-सहज-बोधगम्य बनाने के

प्राक्कथनम्

-आचार्य कनकनन्दी

यद्यदाचरितं पूर्वं तत्तदज्ञानचेष्टितम्।
उत्तरोत्तर विज्ञानद्योगिनः प्रतिभासते।। (251) आत्मानुशासन

वास्तविक सत्यान्वेषी पुरुष-सत्य के परिप्रेक्ष्य में असत्य को स्थान नहीं देता है। वह सत्य को ही भगवान् एवं सर्वस्व मानता है, वह सत्य के लिए सर्वस्व त्याग करता है, वह पहले जो अज्ञान के वशतः धारणा करता है, उसी धारणा का ज्ञान होने के बाद, अत्यन्त लज्जित होकर छोड़ देता है। अनन्तज्ञान की अपेक्षा अपना ज्ञान एक बिन्दु के समान है, यह मानकर वह ज्ञान का मद छोड़ देता है। वैज्ञानिक आईजक न्यूटन ने भी कहा है कि मुझे जितना ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह ज्ञान केवल रत्नगर्भा समुद्र के किनारे में पड़ी हुई एक सीप के समान है।

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्ध समभवम्,
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्य भवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किंचित्किंचिद् बुधजन सकाशादवगतम्,
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगत।।(8)

जब मुझे कुछ ज्ञान होने लगा तब मैं हाथी की तरह मदोन्मत्त हो गया और मेरे चित्त में यह गर्व हुआ कि मैं सर्वज्ञ हूँ परन्तु जब विद्वानों की तथा शास्त्रों की संगति से यथार्थ में कुछ ज्ञान प्राप्त कर सका, तब वह मेरा मद, ज्वर के समान उतर गया और मैंने यह समझा कि मैं मूर्ख हूँ। जो सत्यग्राही होते हैं, वे सत्य को ग्रहण करते हैं। उनकी दृष्टि में Right is mine जो सत्य है वह मेरा है किन्तु Mine is right अर्थात् जो मेरा है वह सर्व सत्य है, इस प्रकार दृष्टिकोण नहीं रहता है। पूर्व नीतिकारों ने कहा है-

आग्रहीवत् निनीषति युक्ति तत्र यत्र मतिरस्य निविष्टा।
पक्षपात रहितस्य तु युक्ति यत्र तत्र मतिरेति निवेशनम्।।

दुराग्राही मनुष्य ने जो पक्ष निश्चित कर रखा है, वह युक्ति को उसी ओर ले जाना चाहता है किन्तु जो आग्रह से रहित होकर निष्पक्ष दृष्टि से विचार

पुराणमित्येव न साधु सर्वं, न चापि काव्य नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्षान्यतरद् भजन्ते, मूढ़ पर प्रत्ययनेय बुद्धि।।

जो सब प्राचीन है, वह सर्व साधु नहीं है अर्थात् उत्तम नहीं है। जो नूतन काव्य है, वह सर्व निंदित है यह भी नहीं है। जो संत पुरुष होते हैं वे परीक्षा करके जो सम्यक् है, उसको ग्रहण करते हैं। जो मूढ़ होते हैं वे पर की बुद्धि के अनुसार चलते हैं। मनुष्य एक अनुकरण प्रिय जीव है, किन्तु जिस मनुष्य में सत्य-असत्य का विवेक नहीं होता है वह अन्य की असम्यक् प्रवृत्ति का भी अनुकरण कर लेता है। वर्तमान कुछ भारतीय तथा जैन व्यक्ति, वैदेशिक पद्धति का अनुसरण करके स्वतः को गौरवान्वित मानते हैं। इसी बात का खेद प्रदर्शित करते हुए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा है-

Until I had received an honour from a foreign country. I had received scant admiration from my country men. So we may say "Until an ancient view receives recognition from a foreign country, it receives scant admiration from its country men."

स्वामी विवेकानन्द ने भी जनता को सतर्क करते हुए सम्बोधित किया है-

अन्यरअन्धानुकरण करयो ना अन्यर काच्छे होइत भालो गुणानुकरण करयो।

परीक्षा रहित होकर अन्य का अन्धानुकरण मत करो। दूसरों में जो अच्छे गुण हैं, उन्हें ग्रहण करो। जैसे-एक छोटा बट बीज, सूर्य से सूर्य रश्मि, भूमि से-जल, वातावरण से ऑक्सीजन रूपी आहार ग्रहण करके महान् वृक्ष में परिणत होता है, उसी प्रकार मनुष्य को उत्तम गुणों को ग्रहण करके महान् बनना चाहिये। जो स्वार्थपरक होकर अपनी संकुचित भावना का त्याग नहीं करता है, वह रवीन्द्रनाथ टैगोर की दृष्टि में दण्ड का अधिकारी है। वे कहते हैं-

शास्ति शास्ति तारि ओरे, जो पारेना शास्ति भये होइत बाहिर।
लंघिया अपना बेड़ा मिथ्यार प्राचीर।।

जो दण्ड के भय से अपना मिथ्याभिप्राय का उल्लंघन करके सत्य के प्रांगण में नहीं आता है, वह दण्ड का अधिकारी है। किन्तु जो सत्य की प्राप्ति की इच्छा से अपना मिथ्याभिप्राय का उल्लंघन करता है, वह पूजनीय है। विज्ञान, सत्य की संशोधन दृष्टि से अन्य संकोच मनोभाव का त्याग करता है एवं त्याग

life, with its successes and triumphs, only to give way later to new ideas and a new outlook."

अर्थात् वैज्ञानिक सिद्धान्त उदय को प्राप्त हुआ, उन्नति के शिखर प्रदेश को प्राप्त होकर पुनः अस्तगत हुआ। उनके थोड़े जीवन में जो थोड़ी बहुत सफलता अर्थात् विजय प्राप्त हुई, वह केवल आगे के लिए एक नया अभिप्राय, एक नया दृष्टिकोण प्रदान हुआ।

शाश्वत नियम है कि ''सत्यमेव जयते नानृतम्'' सत्य की ही जय होती है, असत्य की नहीं हो सकती। जैसे अग्नि अपनी है, यह विचारकर अग्नि को वस्त्र से लपेटकर रखने पर वह वस्त्र को जलाकर पहले से ज्यादा भयंकर रूप से प्रकट होती है। उसी प्रकार असत्य भी छिपाने पर छिप नहीं सकता है। इस बात को प्रोफेसर जी.आर. जैन ने लिखा है-

The spirit should not die and the time has come when we should prove by our independent work the truth of our conviction.

अन्ततः प्राचीन महर्षियों के समान प्राणी के अन्तःकरण में निम्नोक्त भावना प्रत्येक समय जागृत होनी चाहिये। **''असतोर्मा सद्गमय, तमसोर्मा ज्योतिर्गमय'' ''मृत्योर्मा अमृत गमयम्''** हे ज्ञानमय भगवान्! मेरे को असत् से सत् की ओर, अन्धकार से ज्योति की ओर तथा मृत्यु से अमृत की ओर ले जाओ।

मनुष्य सत्यान्वेषी है। उसने अनेक ज्वलन्त उदाहरणों से जगत् को अपना आदर्श दिखाया है। जैसे धर्म के नाम पर वेद में हिंसामय यज्ञ था, उसको असत्य मानकर उपनिषद् काल में ज्ञानरुपी यज्ञ शुरू हुआ। भारत एवं विश्व में जो दास प्रथा थी, वह अमानुषिक कार्य था। इसी प्रकार विचार कर उसका समूल विनाश किया गया। जाति परम्परा पर आधारित धर्म के ठेकेदारों का धर्म ठेकेदारत्व नष्ट किया गया। विश्व सृष्टिवाद, विश्व नियन्त्रण कर्त्तावाद, विश्व संहार कर्त्तावाद एवं जीवों को सुख-दुःख, गति-अगति आदि एक विश्व नियन्त्रकशक्ति द्वारा परिचालित होता है, 'उसको नष्ट करके यह सर्व कार्य कारणवादानुसार स्वयं होता है', इस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया गया। इसी प्रकार अनेक सत्यान्वेषी मनुष्य सत्यान्वेषण में अर्हन् हुए हैं। सत्यान्वेषण की दृष्टि में किसी प्रकार का पक्षपात नहीं होता है। उनके शान्त मस्तिष्क में एवं निरपेक्ष भावना में निम्नोक्त नीति रूपी अमृत का संचार होता है-

मेरा वीर जिनेन्द्र में पक्षपात नहीं है एवं कपिलादि में द्वेष नहीं है। किन्तु जिसका वचन युक्तियुक्त तर्क संगत, परस्पर अविरोध, यह लोक परलोक हितकारी है, उन्हीं का वचन ग्रहण करने योग्य है, अन्य का नहीं।

प्रत्येक वस्तु अनेक धर्मात्मक है। अनेक धर्म का कथन एक समय में एक वाक्य के द्वारा नहीं हो सकता है। जिस समय में एक धर्म का कथन किया जाता है, उसी समय में अन्य धर्म गौण हो जाते हैं अर्थात् उनका कथन नहीं किया जा सकता। केवल कथन नहीं होने के कारण शेष धर्मों का लोप नहीं होता है। उस समय में अन्य धर्म का कथन करने में असमर्थ एवं कदाचित् अनावश्यक होने पर भी उन्हीं धर्मों का लोप नहीं होता है। इस कथन शैली को स्याद्वाद कहा जाता है। स्याद्वाद का अन्य पर्यायवाची शब्द सापेक्षवाद, कथञ्चिद्वाद, आपेक्षयुक्त निश्चयवाद कहा जाता है। यह स्याद्वाद, सन्देहवाद, अनिश्चितवाद, कदाचिद्वाद नहीं है। यह स्याद्वाद को समझने वालों के लिए जितना सरल है, उतना ही न समझने वालों के लिए कठिन है। इस युग के महान् तार्किक शंकराचार्य के लिए भी यह सन्देहवाद रूप में दृष्टिगोचर हुआ था। वर्तमान सापेक्षवाद के अविष्कारकर्ता महामनीषी दार्शनिक वैज्ञानिक आइन्स्टाइन का सापेक्षवाद लगभग इसी के समान है। वर्तमान युग में भी सापेक्षवाद जानने वाले सम्पूर्ण पृथ्वी में केवल 10-12 व्यक्ति हैं। इससे पता चलता है कि सापेक्षवाद कितना कठिन है। सापेक्षवाद की अपेक्षा प्रत्येक वस्तु सपडिवक्खा है अर्थात् प्रतिपक्ष में भी प्रतिपक्ष, अनेकान्त में भी सम्यक् एकान्त है। जैसे कि तार्किक चूडामणि आचार्य श्री समन्तभद्र ने कहा है-

अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः।
अनेकान्तः प्रमाणात्ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात्।। (स्वयंभू स्तोत्र)

प्रमाण और नय से सिद्ध होने वाला अनेकान्त भी (न केवल सम्यक् एकान्त) अनेकान्त स्वरूप है अर्थात् किसी अपेक्षा से अनेकान्त है तथा किसी अपेक्षा से एकान्त है। हे भगवान्! आपके मत से प्रमाण की अपेक्षा से जो सर्वधर्मों को एक साथ जानने वाला है, वह अनेकान्त, अनेक धर्म स्वरूप है। किसी विशेष नय की मुख्यता से वह अनेकान्त, एकान्त स्वरूप है अर्थात् एक स्वभाव को जानने वाला है। उदाहरणतः रामचन्द्र माता कौशल्या की अपेक्षा पुत्र हैं तथा वही सीता की अपेक्षा स्वामी है, लक्ष्मण की अपेक्षा बड़ा भाई है। इसी प्रकार अनेक धर्म अन्य धर्म अर्थात् स्वामीपना, भाईपना नहीं हो सकता है। पुत्रपना होना भी इसको सम्यक् एकान्त कहते हैं। इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये।

मनुष्य परीक्षा प्रधानी एवं सत्य संशोधक है। ऐसा होना ही अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु तर्क, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान की सहायता से होने वाला, केवल तर्क से वस्तु -तत्त्व का सम्पूर्ण निर्णय नहीं हो सकता है। सम्पूर्ण वस्तु तत्त्व केवलज्ञान गम्य है। जैसे - पूर्व महार्षियों ने कहा है - (1) **"तर्कोऽप्रतिष्ठः"** (2) **तर्काप्रतिष्ठानात्"** (3) **नेषातर्केण मतिरपनेयम्"।**

केवल तर्क से कुछ नहीं हो सकता है क्योंकि 'स्वभाव अतर्कगोचरः'। स्वभाव तर्क से अगोचर है। इसलिये तत्त्वदर्शी आचार्यों ने कहा है-

"सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धं तु तद् ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः।।" (आलाप पद्धति)

असत्य प्रतिपादन तब हो सकता है जब वक्ता अज्ञानी, रागद्वेषी, प्रमादी, भीरू, प्रतिफलादि की इच्छा रखने वाला हो। किन्तु उपरोक्त दोषों से रहित होने पर मिथ्या प्रतिपादन का कोई कारण नहीं रह जाता है। उपरोक्त दोषों को जीतने वाले जिनेन्द्र हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म है। उस सिद्धान्त का हेतु द्वारा खण्डन नहीं किया जा सकता है। इसलिये उन्हीं के वचनों को आज्ञा सिद्ध मानकर विश्वास करना चाहिये क्योंकि जिनेन्द्र अन्यथावादी नहीं होते।

प्रस्तुत कृति की प्रेरणा एवं आवश्यकता :-

मैं (आचार्य कनकनन्दी) बाल्य विद्यार्थी अवस्था से ही विज्ञान प्रेमी रहा हूँ। वैज्ञानिकों की सनम्र सत्यग्राहिता, प्रगतिशीलता, पुरुषार्थ आदि से प्रेरित हूँ, प्रभावित हूँ तथा विज्ञान के कार्यकारण सिद्धान्त आदि से भी वैज्ञानिक आइन्सटीन के कारण तो विज्ञान तथा वैज्ञानिकों में उपरोक्त गुण और भी विकसित होते जा रहे हैं। इसलिए आज विज्ञान कृत्रिम संकीर्ण प्रयोगशाला से फैलकर व्यक्तिगत जीवन प्रकृति, पर्यावरण, पृथ्वी, सौरमण्डल, आकाशगंगा से लेकर अनेक निहारिका तक फैलता जा रहा है तथा शिक्षा, संस्कार, समाज, राजनीति, कानून और धर्म तक को प्रभावित कर रहा है।

जब से (वर्ष 2000 से) मैं विदेशी वैज्ञानिक चैनलों का अध्ययन कर रहा हूँ,

अहिंसा, पर्यावरण सुरक्षा, विश्वशान्ति, विश्वमैत्री, सहिष्णुता, गुणग्राहकता आदि की शिक्षा उत्तरोत्तर प्राप्त होती जा रही है। इन सब का प्रतिफल है, प्रस्तुत कृति। इतना ही नहीं ''भारतीय तथ्य जो आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से परे (ज्ञान धारा 17) भी तथा और भी अनेक कृतियों का सृजन इन सब का प्रतिफल है।

विदेशी वैज्ञानिक जब पूर्ववर्ती वैज्ञानिकों के अपूर्ण-गलत सिद्धान्तों को संशोधन करते हुए सत्य-तथ्य के माध्यम में आगे विकास करते जा रहें हैं तो हम भारतीयों को उनसे भी अधिक विकास करना चाहिए क्योंकि हमारे प्राचीन धर्म-ज्ञान-विज्ञान के साहित्यों में वर्तमान के ज्ञान-विज्ञान से भी अधिक ज्ञान-विज्ञान है। परन्तु अत्यन्त चिन्ता-चिन्तन का विषय यह है कि भारत के लोग अनावश्यक-गलत-अयोग्य पढ़ाई-क्रिया-काण्ड-फैशन-व्यसन-गप्पेबाजी - निन्दा - चुगली-प्रमाद-आलस्य-ईर्ष्या-द्वेष-दिखावा सिनेमा-टी.वी.- अश्लीलता आदि में समय-शक्ति - बुद्धि - साधन - धन का तो दुरुपयोग करेंगे परन्तु ज्ञानवृद्धि - चारित्र निर्माण - परोपकार - राष्ट्रनिर्माण - पर्यावरण सुरक्षा आदि के लिए आलस्य - प्रमाद - बहानाबाजी करते रहेंगे। इस दृष्टि से पाश्चात्य वैज्ञानिक अत्यन्त श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-आदर्श हैं क्योंकि प्राचीन पाश्चात्य साहित्यों में हमारे प्राचीन साहित्यों के समान ज्ञान-विज्ञान-आचरण नहीं होने पर भी वे स्वप्रबल पुरुषार्थ से सत्य की खोज में सतत प्रयासरत हैं। उनके इन प्रयासों को समर्थन - सहयोग - मार्गदर्शन के साथ-साथ भारतीयों की रूढ़ीवादिता - अकर्मण्यता, संकीर्णता-भ्रष्टाचारिता-अल्पज्ञता-अज्ञानता को दूर करने के लिए मैं सनम्र प्रयासरत हूँ। इसका ही एक छोटा प्रतिफल यह प्रस्तुत कृति है। अखिल विश्व सत्य-समता-समन्वय-सहयोग-सहअस्तित्व के बल पर परम विकास करता हुआ परम ज्ञानानन्द रूपी जीव की शुद्धावस्था को प्राप्त करे, ऐसी पावन भावना के साथ-

आचार्य कनकनंदी

रक्षाबन्धन पर्व एवं स्वतन्त्रता दिवस के मध्य में

सेमारी, 14/8/2011, मध्यान्ह 1.27

विश्ववन्द्य, विश्वविभूति विश्वगुरु भगवान् महावीर का विश्व को पावन सन्देश

सम्प्रेषण कर्त्ता - आचार्य कनकनन्दी

अनन्त आध्यात्मिक वैभव सम्पन्न सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, परम समरसी, अहिंसा की साक्षात् मूर्ति, सर्वजीव हितकारी, विश्वबन्धु, परमउदारवादी, अनेकान्त/सापेक्ष सिद्धान्त के प्रतिपादक, पर्यावरण सुरक्षा के पुरोधा, विश्वशान्ति के उपदेशक भगवान् महावीर के जीवन, व्यक्तित्व, कृतित्व, उपदेश आदि विश्व के लिए सार्वभौम शाश्वतिक दिव्य सन्देश है। उनके देश-काल की सीमा से परे वैश्विक कतिपय दिव्य सन्देश निम्नोक्त हैं-

(1) **अनेकान्त** - प्रत्येक द्रव्य, सत्य, कार्य आदि अनेक/अनन्त पहलुओं से युक्त हैं। अतः उसे जानने के लिए उन समस्त पहलुओं को स्वीकार करना चाहिये अर्थात् अनेकान्त सिद्धान्त के माध्यम से भ.महावीर ने उदारवादी/सापेक्ष दृष्टिकोण को अपनाने के लिए पवित्र सन्देश दिया, इससे संकीर्णता, कट्टरता, हठग्राहिता, समस्या, विषमता आदि दूर होती है। यह भावात्मक अहिंसा है।

(2) **अहिंसा** - क्षुद्र से लेकर प्रत्येक जीव की स्वतन्त्र सत्ता, स्वातंत्र्य को स्वीकार करके उसे सुख-शान्तिमय जीवन जीने देने के साथ-साथ स्वयं को भी मनसा-वचसा-कर्मणा पवित्र रखना चाहिए। इससे जीव हत्या, बलिप्रथा, वधशाला, गृहयुद्ध, युद्ध, महायुद्ध, आक्रमण, क्रूरता, आतंकवाद, तानाशाहीवाद, आत्महत्या, भ्रूण हत्या आदि दूर हो जायेंगे; पर्यावरण सुरक्षा होगी, विश्वमैत्री, विश्वशान्ति होगी।

(3) **अपरिग्रह** - क्रोध, मान, माया, लोभ, कामभाव आदि 14 अन्तरंग परिग्रह तथा धन, धान्य, फैक्टरी, यान-वाहन आदि 10 बहिरंग परिग्रह को गृहस्थ मर्यादित (आवश्यक/अनिवार्य/अपरिहार्य) रखे तथा साधु द्वारा पूर्णतः त्याग करने का ऐसा सन्देश भ.महावीर ने विश्व को दिया। इससे अतिसंग्रह, जमाखोरी, शोषक-शोषित, धनी-गरीब, कालाधन आदि समस्याएँ शान्त होंगी तथा प्रकृति का शोषण नहीं होगा, सम्पूर्ण प्रदूषण दूर होंगे, प्रदूषणों से जायमान ग्लोबल

(4) आध्यात्मिक - जीव केवल भौतिक शरीर नहीं है, भौतिक विकास ही परम शाश्वतिक शान्तिप्रद नहीं है। इससे परे आध्यात्मिक तत्त्व है और आध्यात्मिक विकास ही परम शाश्वतिक शान्तिप्रद है। यह विषय आधुनिक सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान से परे है जिसे विज्ञान को शीघ्रता से स्वेच्छा से स्वीकार करके वैज्ञानिक धर्म/वैज्ञानिक आध्यात्मवाद के रूप में विकसित करना चाहिए। इससे विज्ञान की भौतिकवादी संकीर्णता दूर होगी जिससे विज्ञान का भी सर्वांगीण विकास होगा।

उपर्युक्त सिद्धान्त/अमर/परम सन्देशों को विश्व मानव स्वीकार करेगा तो व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व में शिक्षा, विज्ञान, राजनीति, कानून, धर्म में सकारात्मक परिवर्तन/विकास होगा और सुख-शान्ति का साम्राज्य होगा।

JAINA के द्वारा यह सन्देश विश्व में प्रसारित हो रहा है, ऐसे पवित्र कार्य के लिए JAINA को मेरा मंगलमय शुभाशीर्वाद! ऐसे ही महान् कार्य JAINA द्वारा होते रहें, ऐसी मेरी मंगलकामनाएँ हैं। यह सब हो, ऐसी पवित्र भावना के साथ भ. महावीर को अनन्त बार वन्दन सहित-

आचार्य कनकनन्दी

सेमारी, जि. उदयपुर (राज.)

दि. 17/4/2011 रात्रि प्रायः 11.30

मेरा चार-आयाम सिद्धान्त

भगवान् है मेरा परम-सत्य स्वरूप,
सिद्धान्त है स्याद्वाद-अनेकान्त रूप।
सतत साधना है मेरी स्वस्थ-समता,
उपलब्धि हो मेरी परम शान्ति रूपा।।

भगवान् महावीर का विश्व को दिव्य सन्देश

राग-सुनो सुनो है दुनियाँ वालो... सन्देश कर्ता-आचार्यकनकनन्दी

सुनो सुनो हे दुनियाँ वालों, महावीर का दिव्य सन्देश।
उसका होगा निश्चय विकास, जो अपनायेगा यह सन्देश।।....1

अनेकान्त है दिव्य सन्देश, उदारवादी बने मानव।
सापेक्ष दृष्टि अपनाकर, सापेक्ष कथन करे मानव।।...2

इससे दूर संकीर्णता होगी, कट्टरता भी गायब होगी।
पक्षपात भी दूर होगा, सर्व समस्या शान्त होगी।।...3

अहिंसा से स्व-पर-विश्व रक्षा, पर्यावरण की सुरक्षा होगी।
कषाय भाव मन में न हो, यह अन्तरंग अहिंसा होगी।।...4

इससे तनाव संक्लेश भाव, लड़ाई झगड़ा दूर भी होंगे।
गृह कलह से आतंकवाद, युद्ध महायुद्ध दूर भी होंगे।।...5

तृष्णा की कमी सन्तोष वृत्ति से, अपरिग्रह का होगा विकास।
मर्यादित में गृहस्थ पाले, सम्पूर्ण पाले साधु संन्यास।।...6

प्रकृति शोषण कम भी होगा, यान-वाहन भी कम ही होंगे।
कल-कारखाने भी कम होंगे, अपरिग्रह जब हम पालेंगे।।...7

पर्यावरण की सुरक्षा होगी, प्रदूषणों में कमी आयेगी।
ग्लोबल वार्मिंग विषम वृष्टि, रोग दुर्घटना में कमी आयेगी।।...8

आध्यात्मिकता से अन्तर दृष्टि, समता भाव में होगी प्रवृत्ति।
इससे होगी आत्मिक शान्ति, सत्य सहिष्णुता व सन्तोष वृत्ति।।...9

पवित्रता व सहजवृत्ति, जिससे फैलेगी विश्व में शान्ति।
अन्त में मिलेगी मुक्ति की प्राप्ति, महावीर सम मिलेगी शान्ति।।...10

'कनकनन्दी' भी भावना भाये, विश्व मानव यह अपनाये।
विश्व में सर्वत्र शान्ति प्रसारे, अन्त में आत्मिक शान्ति पाये।।....11

जैना द्वारा यह दिव्य सन्देश, विश्वकल्याणार्थे हो प्रसारा।
मंगल कामना विश्व हेतु है, ब्रह्माण्ड में हो मंगल सारा।।...12

Updated Monks and Scholars Messages of Bhagwaan Mahaveer. (Nirmal Dosi. Jaina Scholars Program Coordinator)

Bhagwaan Mahaveer's Slogan to every living beings is Non-Violence. Being the last Tirthankar of this Avsarpani period. His message will be reverberating in the heart of all living beings in the universe till the end of this world. Interestingly all through in this period and all other periods. In this Bharat Khand and other areas like Maha Videh area the Tirthankara's messages are uniform and it is all about non-violence. Truth, non-stealing celibacy and limitation of the external and internal objects are all part of non violence. The message from Thirthankars are spoken in Samosaran (glorious podium created by Gods) is earth and heaven to Gods who pass on to their disciples living at various places in this universe. The people in different regions give their own name of religion and follow their own ways. The source of knowledge is the same - the Trithankar born at different time in this universe and their pravachana for the benefit all living beings.

Through non-violence, the soul is no more become impure, itself, and elevates itself. There were, are and will be famous people, heroes, mass killers and winner of land and seas, defeating themselves by gaining deep impurities and will never for billions of years again can become humans. Bhagwaan Mahaveer's messages are all about uplifting the soul and obtain gain to higher level of consciousness. It is all about how to succeed in the life we got and to progress in the higher direction.

Our reverend monks and scholars in the following pages have taken time to guide us about Mahaveer's messages and describe how it is beneficial to our life, our family, our scoiety, our earth and our universe. Please understand the deep meanings of the passages and how it can be applied.

Acharya Kanknandi :

The Holy Message of Bhagwan Mahavira

The life, personality, actions, teachings etc. of Bhagwan Mahavira, who was Omniscient endowed with infinite spiritual power, equanimity, equality embodiment of non-violence. beneficiary and friend of all beings, liberal of highest order and propounder of non-absolutist view are universal and eternal messages to the tance of all the aspects. Through this principle of non-absolutism Bhagwan Mahavira taught us to have liberal and relative prespective and thus remove narrow-mindedness, fanatics, dogmatism, inequality etc. in the society. This is emotional non-violence.

2. Non-violence - Recognizing the independent existence and individuality of every being, small or big and their right to happiness, we must maintain purity of our actions, mental, vocal and physical. This will ensure non-killing of animals. elimination of practice of animal sacrifice. slaughtering of animals, civil war, wars, world wars, attacks, cruelty, terrorism, dictatorship, suicides, fetal killings etc. and lead to protection of environment, universal brotherhood and world peace.

3. Non-consumerism (Aparigraha)- Bhagwan Mahavira ordained the house holders to exercise restraint on anger, ego, deceit, greed, promiscuity etc. 14 internal possessions and money, goods, factories, vehicles etc., 10 external possessions and the monks to completely refrain from these possessions. This shall take care of the problems of excessive collection, hoarding, exploitation of nature pullution, dangers of global warming, floods. draughts. melting of glaciers, depletion of ozone layer, storms, earthquakes. tsunami etc. and promote simple living and high thinking.

4. Spirituality - Life is not mere enjoyment of physical body and physical progress only is not the means of permanent peace. Beyond this there lies the spiritual element and spiritual development is the means of permanent and real peace. This subject is beyond the reach of modern science; modern science must extend and accept this reality and help evolve spiritual religion and scientific spiritualism. This shall help science to come out of its narrow approach and enable its overall development.

By accepting these universal and eternal messages of Bhagwan Mahavira the humanity can ensure proper transformation and development of education, science, political status, law and religion for individuals, families, society, nations and the world at large.

This message is being propagated to the world through JAINA, my blessings to them for this holy mission. I wish JAINA continues to render this kind of service to the humanity, Let this effort be successful. I bow with all pious feelings to Bhagwan Mahavira

ब्रह्माण्ड की कहानी

(ब्रह्माण्डीय व्यवस्था/प्रबन्ध) Universe management

तर्ज - सुनो सुनो ऐ दुनियाँ वालो....

आओ बच्चों तुम्हें बताऊँ, ब्रह्माण्ड की सच्ची कहानी।

सर्वज्ञ द्वारा ज्ञात जीवनी, आचार्य द्वारा लिखी कहानी।।टेक।।

विश्व अकृत्रिम शाश्वत जान, अनादि अनिधन द्रव्य प्रमाण।

कर्त्ता धर्त्ता व हर्ता न कोई, उत्पाद व्यय ध्रौव्य सो होई।।

षट्द्रव्यमय लोक प्रमाण, इससे परे है अलोक जान।

तीन सौ तैतालिस घन राजू जान, लोक का घनफल है प्रमाण।।

इससे परे अनन्त आकाश, जिसे कहते हैं अलोकाकाश।

ब्रह्माण्ड व प्रतिब्रह्माण्ड जानो, विज्ञान अपेक्षा परिभाषा मानो।।

जीव पुद्गल धर्म अधर्म, काल व आकाश षट् द्रव्य जानो।

आकाश द्रव्य के मध्य में जानो, पंच द्रव्य का अवस्थान मानो।।

उसे कहते हैं लोकाकाश, उसके बाहरे अलोकाकाश।

लोक के तीन प्रभेद जानो, ऊर्ध्व मध्य और अधो मानो।।

सर्वोच्च ऊर्ध्व में सिद्ध विराजे, उसके नीचे देव विराजे।

मध्य लोक में मानव तिर्यञ्च, उसके ऊपर ज्योतिष मण्डल।।

अधो भाग में नारकी निवास, उसके नीचे निगोद वासे।

धर्म अधर्म व्याप्त लोकाकाश, धर्म सहयोगी गमनागमने।।

अधर्म सहयोगी स्थिति निमित्त, काल सहयोगी परिणमन निमित्त।

लोकाकाश में जीव अनन्त, अनन्त गुणे पुद्गल व्याप्त।।

आकाश द्रव्य अनन्त प्रदेशी, धर्म अधर्म असंख्य प्रदेशी।

जीवों के दो भेद है जानो, संसारी जीव और मुक्त मानो।

कर्म से युक्त संसारी जानो, कर्म रहित मुक्त है मानो।।

संसारी जीव के चार विभाग, नरक तिर्यञ्च देव मानव।

चौरासी लाख योनी भेद, संसारी जीव के भेद प्रभेद।।

कर्मकृत यह भेद प्रभेद, जन्म-मरण व प्रमोद खेद।

जीवों के भी न कोई कर्त्ता धर्ता, रसायन से न बना है आत्मा।।

भावानुसार कर्म सम्बन्ध, जिससे जीवों का होता प्रबन्ध।

प्रशस्त भाव से पुण्य बन्ध, जिससे होता है विकास प्रबन्ध।।

बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल जिनोम, इससे प्रभावित विकास क्रम।

बीजानुसार वृक्ष विकास, कर्मानुसारे क्रम विकास।।

तथापि जीव ना इससे बने, जीव तो चैतन्य भाव से बने।

आत्म विकासार्थे आध्यात्मज्ञान, आत्मनिष्ठा व सदाचरण।।

समता स्वाध्याय पवित्रभाव, ध्यान अनासक्ति करुणाभाव।

निर्मलभाव से कर्म से मुक्ति, सच्चिदानन्दमय मोक्ष की प्राप्ति।।

ऐसी है बच्चों विश्व की कथा, चेतन अचेतन मिश्र की गाथा।

तुम भी हो चिदानन्द स्वरूप, 'कनक' को भाये मोक्ष स्वरूप।।

जैन धर्म में वर्णित महासत्ता एवं अवान्तर सत्ता

(जैन धर्म में वर्णित ब्रह्माण्डीय विज्ञान)

(राग - सत्यं शिवं सुन्दरम्...) अजी रूठकर....

द्रव्य गुण पर्याय हो ओ द्रव्य गुण पर्याय SSS....सत्य ही द्रव्य है। (स्थायी/धत्ता)

एक ही सत्य है, परम सत्ता लोकालोक में सत्ता

सर्वज्ञ देव ने इसे देखा....2

कण कण में है व्यापा....स्वतन्त्र अपनी सत्ता SSS

.....द्रव्य गुण पर्याय। (1)

उत्पाद व्यय वाला, ध्रौव्य सहित वाला, अव्यय अविनाशी वाला SSS

अगुरुलघु सदा सत्तावाला....2

शाश्वत अकृत्रिम वाला....नित्य ही परिणमन हो SSS

.....उत्पाद व्यय ध्रौव्यम् (2)

जीव अजीव वाला, षड्द्रव्य वाला, चेतन अचेतन वाला SS

लोक अलोक में है व्याप्त....2

मध्य में मनुष्य लोक वाला ..... स्वर्ग नरक वाला

.....उर्ध्व में सिद्धशिला... (3)

.....द्रव्य गुण पर्याय हो ओ....

कर्म रहित वाला, सच्चिदानन्द वाला, त्रैलोक्य दर्शक वाला

आत्मरमण विज्ञान ज्योति वाला....2

ज्ञायक स्वरूप आत्मा....

विमुक्त परम आत्मा

चरम ध्येय वाला, वीतराग वाला.....सिद्धों की जाओ शरणम् (4)

.....द्रव्य गुण पर्याय हो ओ ....

अष्टकर्म बन्धनं, विमुक्त चिदानन्दं, निजानन्द शुद्ध स्वभावम्

'कनकनन्दी' का स्वभावम् 2

प्रत्येक जीव का भावम्

अन्तिम स्वशरणम्, स्वयं में स्वरमणम्....सच्चिदानन्द भावम् (5)

जैन धर्म में वर्णित एकीकृत सिद्धान्त (M. Theory)

शाश्वतिक परिणमनशील स्थायित्व द्रव्य (सत्य)

(परिणमनशील सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड) –आचार्य कनकनन्दी

(राग - सत्यं शिवं सुन्दरम्...) "उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तसत्" सूत्र सम्बन्धी कविता

उत्पाद ही व्यय है.... व्यय ही उत्पाद है.... ध्रौव्य उभय है....SSS

जानो SSS द्रव्य को मानो...तीनों मय ही सत्यम् SSS

उत्पाद व्यय ध्रौव्यंS..हो..ओ..उत्पाद व्यय ध्रौव्यं..2..तीनों ही द्रव्य हैं..(स्थायी)

उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त सत्, तीनों ही पृथक् पृथक्

अनेकान्त से सिद्ध है....2 प्रत्येक द्रव्य में व्याप्त....

अगुरुलघु से व्याप्त....उत्पाद व्यय ध्रौव्यम् SSS....2 (1)

वैश्विक सत्य है, सम्पूर्ण द्रव्य में युक्त, आगम युक्ति से युक्त....

सूक्ष्म स्थूल में भी है व्याप्त....2 मूर्ति अमूर्ति सहित....

शुद्ध अशुद्ध संयुक्त...त्रिकाल घटित सत्य...उत्पन्न विगम स्थितमSSS...(2)

संसारी-मुक्त निहितं, जन्म-मरण ध्रुवत्वं....कर्म विनष्ट सिद्धत्वम्...

कटक केयूर काञ्चनम्....2 त्रय में कनक युक्तम्....

हर्ष-विषाद माध्यस्थं...त्रय दृष्टि युक्त ग्राहकम्...भिन्नाभिन्न समन्वितमSSS (3)

सत्य न उत्पाद व्ययं, पर्याय दृष्टि युक्तं, द्रव्य ही शाश्वत सत्यम्....

द्रव्यमय है सर्व लोकम्....2 'कनकनन्दी' में युक्तम्....

सिद्धान्त एकीकृतं....वैश्विक परम सत्यं....लोकालोक व्याप्तम्....

जीव मेरा नाम है !
(जीव की आत्मकथा)

-आचार्य कनकनन्दी

(तर्ज - 1. पूछ मेरा क्या नाम रे.... 2. जीना यहाँ...)

जीव मेरा नाम है चेतन मेरा काम है,
जानना देखना सुख दुःख व मुक्ति /(मोक्ष) मेरा काम है।
मेरे ही दो भेद हैं संसारी व मुक्त हैं;
कर्मबन्ध से मैं संसारी कर्म से रहित मोक्ष है।।...टेक....
संसार/(बन्ध) व मोक्ष का मैं ही कर्त्ता धर्त्ता हूँ,
राग द्वेष से मैं बँधा हूँ मोक्ष का भी कर्त्ता हूँ।
मोह राग द्वेष से मैं ही बाँधु मुझको,
मुक्त करूँ वीतरागता से मेरे द्वारा मुझको.... (1)
अति संक्लेश से मैं ही निगोद में रहा हूँ,
क्रम विकास के द्वारा मानव जन्म मैं पाया हूँ।
इस जन्म के पहिले चौरासी लाख योनी में,
पञ्च परिवर्तन के मध्य में अनन्त भव मैं पाया हूँ.... (2)
गति-आगति किया हूँ राग द्वेष किया हूँ,
मरा और मारा हूँ पञ्च पाप किया हूँ।
व्यसन सेवन किया हूँ भक्ष भक्षक बना हूँ,
रूलाया और रोया हूँ जन्माया और जन्मा हूँ।।....(3)
मानव जन्म अभी मिला वृथा न जायेगा,
पूर्व कृत्य कुकृत्यों को अभी मैं न करूँगा।
पूर्वकृत सब कुछ मेरा ही तो उच्छिष्ट,
उसे फिर कैसे खाऊँ मैं तो जीव विशिष्ट। (श्रेष्ठ)।।...(4)
अभी संसार के वर्द्धन काम न करूँगा,
राग द्वेष मोह को मैं सर्वथा नाशूँगा।
जीव से जिन बनूँगा मोक्ष को पाऊँगा

प्राचीन एवं आधुनिक वैज्ञानिकों का संक्षिप्त परिचय
भौतिक वैज्ञानिक से आध्यात्मिक महावैज्ञानिक तक का स्वरूप व फल

(तर्ज - हे गुरुवर धन्य हो तुम....) -आचार्य कनकनन्दी

हे वैज्ञानिक धन्य हो तुम, कितने शोध करते हो-2
सत्यग्राही बन एकाग्र मन से, सत्य का बोध करते हो।। (टेक) ....
क्रम नियमित साधना द्वारा, सत्य का ज्ञान करते हो।
पक्षपात बिन सत्य तथ्य युत, साक्ष्य प्रमाण से करते हो।।
मिथ्या परम्परा जाति क्षेत्र परे, प्राकृतिक नियम पालते हो।
जहाँ सत्य मिले उसे ही मानते, पूर्वाग्रह सब टालते हो।। हे..... (1)
कर्मभूमि के आदि काल से, तुम्हारा शोध भी जारी है।
कुलंकर से प्रारम्भ होकर, तीर्थंकर महाज्ञानी हैं।।
गणधर ऋषि-मुनि विद्याधरादि, प्राचीन महाविज्ञानी है।
यति वृषभ व धरसेनाचार्य, भूतबली पुष्पदंत सूरी है।। (2).....
वीरसेनाचार्य नेमीचन्द्राचार्य, उमास्वामी अकलंकसूरी है।
बराहमिहिर नागार्जुन तथा, आर्यभट्ट धन्वन्तरी हैं।।
सुश्रुत कणाद वाग्भट महर्षि, महावीराचार्य विज्ञानी है।
सत्यग्राही बन एकाग्र मन से, सत्य का बोध करते हो।। (3) हे....
बोधायन पायथागोरस ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य ज्ञानी है।
श्रीधराचार्य उग्रादित्य, पुनर्वसु हिपोक्रिटिश ज्ञानी है।।

गैलीलियो न्यूटनजगदीश चन्द्र, ग्राहमबेल एडिसन पाश्चर।
क्यूरी दम्पत्ति फैराडे आइन्स्टीन है, फर्डिनान राइट ब्रदर।।
नीलबोर्न स्टीफन हाकिंग कोठारी, अधुना के विज्ञानाचार्य।
करते सत्य-तथ्य के शोधबोध, स्वपर विश्व कल्याणकर।। (5) हे....
आत्मज्ञान युक्त भौतिक ज्ञान से, तेरा होता और अधिक विकास।
भौतिक ज्ञान की संकीर्णता से, तेरा आबद्ध सच्चा विकास।।
इन्द्रिय भौतिक यंत्र से परे, तेरे ज्ञान का नहीं प्रवेश।
इसी कारण जड़ ज्ञान से, घटित होता कभी विनाश।। (6) हे ....
युद्ध महायुद्ध प्रदूषण तथा, ग्लोबल वार्मिंग छेद ओजोन।
लाइफ स्टाइल पाश्चात्यकरण, कलकारखाना यान-वाहन।।
इत्यादि अनर्थ भौतिकता का, आध्यात्मिकता से होता विनाश।
इसलिये हे भौतिक ज्ञानी, आध्यात्मिकता का करो विश्वास (7) हे...
आध्यात्मिक बनो भौतिकज्ञानी, धार्मिक बनो सच्चे विज्ञानी।
इसी से स्वपर विश्व कल्याणी, परम विज्ञानी आध्यात्मज्ञानी।।
आध्यात्म विज्ञान सच्चा विज्ञान, वैज्ञानिक धर्म वैश्विक धर्म।
इसी से होता है सर्व विकास, ''कनकनन्दी'' का आत्मिक धर्म (8) हे...

विश्व का सही विकास धर्म और विज्ञान के सहयोग से

-आचार्य कनकनन्दी

(तर्ज - आओ बच्चों तुम्हें.... हर बाला देवी की प्रतिमा, बच्चा 2 राम है...)

सत्य रूप प्रगटेगा उस दिन, विश्व के सही विकास का
भौतिक तत्त्व के परे विज्ञान भी, आत्मा को सत् मानेगा
मूर्तिक तत्त्व के साथ भी जब, अमूर्तिक तत्त्व को मानेगा
अनादि अनन्त सत्य होता है, जब ऐसा वह मानेगा
तब विज्ञान भी आगे बढ़के, धर्म सहयोगी बनेगा....जिस दिन होगा ...(1)

रूढ़िवाद को त्याग धर्म जब, उदारता को मानेगा
संकीर्णता की सीमा लाँघकर, मिथ्या मत को त्यागेगा
भेद-भाव और अपना-पराया, छोड़ सत्यग्राही होगा
वैज्ञानिक दृष्टि अपनाकर, त्यागी सहिष्णु बनेगा....जिस दिन होगा ...(2)

मिलकर दोनों जब अहिंसा शान्ति से काम लेंगे
आडम्बर व मिथ्यादंभ को, स्वप्रेरणा से त्यागेंगे
शाकाहार व सदाचार से, जीवन जब सादा होगा
आध्यात्मिक शक्ति जागरण से, विश्व विकासशील होगा...जिस दिन होगा ...(3)

शिक्षा कानून व राजनीति में, जब इनका प्रयोग होगा
व्यक्ति परिवार समाज राष्ट्र, विश्व को सहज मान्य होगा
सहअस्तित्व से जीवन जीने, विकास हेतु अवसर होगा
सत्ता सम्पत्ति बुद्धि शक्ति का, दुरुपयोग कभी न होगा....जिस दिन होगा ...(4)

कर्त्तव्य अधिकार के बल पर, 'परस्पर उपग्रहो' होगा
सर्वात्मा में समभाव रखकर, भाव विश्वमैत्री होगा
पवित्र कर्त्तव्य को पूजा मानकर, निष्काम भाव जागेगा
'कनकनन्दी' की भावना है ये, विश्व में सर्वोदय होगा...जिस दिन होगा ...(5)

विज्ञान की उज्ज्वल गाथा

(विज्ञान का वरदान) -आचार्य कनकनन्दी

सुनो सुनो हे! दुनियाँ वालों, विज्ञान की उज्जवल गाथा
जिसे सुनकर तुम्हें ज्ञात होगी विज्ञान की पवित्र आत्मा/(वरद गाथा)...(टेक)
संकीर्णता व रूढ़िवादिता को दूर करती है विज्ञान-यात्रा
सत्य-तथ्य पूर्ण क्रमबद्धता ही विज्ञान की पवित्र-आत्मा...(1)
पन्थ, परम्परा, जाति, राष्ट्र की सीमा से परे है विज्ञान दृष्टि
सर्व जीवों की हितसाधना में प्रगतिशील है विज्ञान सृष्टि...(2)
अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक की खोज में रत है विज्ञान-रुचि
जीव जगत् व ब्रह्माण्ड रहस्य के शोध-बोध में सदा प्रवृत्ति...(3)
रोग निवारण दीर्घ जीवन व सुख साधन रत विज्ञान वृत्ति
दूरसञ्चार व एकीकरण में विज्ञान की होती तीव्र प्रवृत्ति....(4)
अतिवृष्टि अनावृष्टि महामारी समस्या का करे निवारण
भुखमरी भूकम्प बाढ़ आदि समस्या का करे निस्तारण....(5)
यान-वाहन व कल कारखाना यंत्र आदि का दक्ष निर्माता
सुई से लेकर कम्प्यूटर तथा राकेट तक के आप विधाता/(निर्माता)...(6)
मानव मन से उत्पन्न विज्ञान मानव शक्ति का करे विस्तार
जिससे मानव प्रकृति ऊपर कर रहा है राज्य विस्तार...(7)
जल थल नभ राज्यों के राज का कर रहा है सूक्ष्म विचार
उससे प्राप्त राज के बल पर कर रहा है विश्व सञ्चार...(8)
पर्यावरण की सुरक्षा निमित्त विज्ञान का हो रहा विकास
विचार शक्ति के परिज्ञान हेतु विज्ञान भी देता अद्भुत ज्ञान...(10)
इत्यादि बहु उपलब्धियों का प्रदाता बना है आज विज्ञान
जिससे मानव बना है उदार प्रगतिशील व उच्च विचार...(11)
जिससे जन्मे है वैश्विक एकता शान्ति मैत्री के विचार
कार्य कारण व समन्वय दृष्टि स्व-पर-वैश्विक हित विचार...(12)
वैश्विक संस्थान, विश्व धर्म संसद, राष्ट्रों में होता है बन्धुत्व भाव
वैश्विक सम्बन्ध-सहयोग आदि वैज्ञानिकता से उत्पन्न भाव...(13)
इससे भी परे आत्मिक विकास, संस्कृति के लिए हो रहा प्रयास
भौतिकता परे आत्मा की कल्पना विज्ञान के लिये नया प्रयास...(14)
धर्म के बिना विज्ञान अन्धा, पंगु धर्म है विज्ञान बिना
इसी से दोनों का विकास होता, जिससे मानव सुखी भी होता...(15)
'कनकनन्दी' तो प्रयासरत आध्यात्म विज्ञान का हो विकास
वैश्विक ज्ञान का हो विकास, विश्वशान्ति में करे निवास...(16)

सेमारी, दि. 11/6/2011 रात्रि 11.11

विज्ञान के अन्धकार पक्ष

(विज्ञान के दुरुपयोग से विनाश) -आचार्य कनकनन्दी

(राग - यमुना किनारे श्याम...)

विज्ञान का दुरुपयोग किया न करो, विनाश शृंखला आरम्भ किया न करो
सत्य-तथ्य को स्वीकार किया भी करो, यन्त्रों का सदुपयोग किया ही करो
दुरुपयोग अतियोग से हानि होती है, ''अति सर्वत्र वर्जयत्'' नीति होती है...(टेक)

परम सत्य व ब्रह्माण्ड में पहुँच नहीं है, स्वयं को भी सही जानता नहीं है...(1)
विनाशक गाथा नागासाकी भी कहता, हिरोशिमा विध्वंस की लीला बतलाता
विश्वयुद्ध सर्वयुद्ध अन्धकार बताते, विज्ञान की विनाशक शक्ति भी बताते
विज्ञान विशेष ज्ञान नहीं बताता, विज्ञान विपरीत ज्ञान सिद्ध है करता...(2)
अस्त्र-शस्त्र मारणास्त्र अणुबमादि, जीव विनाशक प्रदूषक जो यन्त्रादि
विषाक्त गैस आदि जो विनाशकारी, पर्यावरण ध्वंसी कल कारखाना भारी
तथा ही यान-वाहन या उद्योग, हिंसा प्रदूषणकारी सर्वअयोग्य...(3)
जिससे जीवन चर्या होती कृत्रिम, निष्क्रिय आलस्यपूर्ण भोगवादी जीवन
तन-मन रोगकारी आत्म पतन, फैशन व्यसनमय है निम्न जीवन
ऐसा विज्ञान तथा वैज्ञानिक उपकरण, समस्त अहितकारी विशेषजान...(4)
अतः विज्ञान को धर्ममय होना जरूरी, अहिंसा व आध्यात्ममय पर उपकारी
हिताहित विवेकयुक्त सत्य पुजारी, वैश्विक दृष्टि सम्पन्न विकासकारी
''कनकनन्दी'' भावना भाये हितकारी, आध्यात्म विज्ञान हो सर्वोपकारी/गुणकारी...(5)

सेमारी, दि. 12/6/2011 मध्यान्ह 3.37

विचित्र जीव की अजीब कहानी

तर्ज - (सुनो सुनो हे दुनियाँ वालो...) रचयिता - आचार्य कनकनन्दी

सुनो हो बच्चों! सुनो सुनो बच्चों! विचित्र जीव की अजीब कहानी।
स्वयं को माने सबसे ऊँचा, काम करे हैं सबसे नीचा....।।
स्वयं को मानता है श्रेष्ठ जानवर, खाता है नीच मृत जानवर।
पूँछ रहित माने श्रेष्ठ वानर, वानर से भी है क्रूर आचरण।। सुनो सुनो....
प्राणी जगत् का मुखिया माने, सबको मारे सबको खाये।
भाषा प्रयोगे वाचस्पति सम, कटुवाणी प्रयोगे सव्यसाची सम।। सुनो सुनो....
पशु को माने स्वयं से नीच, उसकी करणी से पशु संकोच।
स्वयं को माने बड़ा मालिक, तिर्यंचो के बिन है नालायक।। सुनो सुनो....
आदर्शों की करता चर्चा, अनादर्शों की करता चर्या
राम की तो करता पूजन, रावण के सम करे आचरण।। सुनो सुनो....
बाहर में तो हंस समान, भाव-काम में बगुला समान।
मानव कार्य करे दानव समान, उसका वर्णन यह सब जान।। सुनो सुनो....
इसी मानव में जन्म लेते हैं, तीर्थंकर बुद्ध ज्ञानी महान्।
तुम भी बच्चों निर्णय करलो, बनोगे क्या तुम नीच या महान्।। सुनो सुनो....
तुमारा लक्ष्य, भाव, काम से, निर्माण होता है भावी जीवन।
''कनकनन्दी'' का भाव सदा है, तुम भी बन जाओ सच्चे महान्।। सुनो सुनो....
स्वयं को माने अधिक धार्मिक, करता है सब अधर्म कृत्य।
धर्म के नाम पे करता है पाप, हिंसा संकीर्णता भेद व भाव।। सुनो सुनो....

पञ्च स्थावरों के महान् योगदान

(पञ्च एकेन्द्रिय जीवों के त्रस जीवों के प्रति उपकार)

(क्षुद्र जीवों का बड़े जीवों के प्रति उपकार)

रचयिता - आचार्य कनकनन्दी

राग - (धरती बाँटी अम्बर बाँटा... 2. जीवन में कुछ करना है तो....)

जीवन यात्रा है प्रारम्भ हुई, पञ्च एकेन्द्रिय स्थान से।
समस्त विश्व व्याप्त इन से, सूक्ष्म-बादर भेद से।। (1)
पृथ्वी वनस्पति जल वायु अग्नि पञ्च है भेद स्थावर।

जिसे खाकर जीवित रहते पृथ्वी (धरती) के त्रस सकल है।। (3)

उससे बनते औषधि, फर्नीचर, मेवा, तेल, गृह, वस्त्र।

पर्यावरण की सुरक्षाकर्त्ती, प्राणवायु दात्री छाया स्थल।। (4)

जल है जीवन (त्रस-स्थावरों) पशु-पक्षी व स्थलचर नभचर।

वनस्पति व मानव जाति या कीट पतंग नक्तचर/(रात्रिचर)।। (5)

पानी पीकर जीवित रहते वनस्पति त्रस जीव है।

खाना बनाना स्नान करना खेती उद्योगे उपकार है।। (6)

वायु बिना जीव जीवित न होते प्राणवायु है उपकारी।

श्वास क्रिया हेतु त्रस स्थावरों के प्राणवायु है सहकारी।। (7)

अग्नि पाककर भोजन बनाकर मानव करते हैं आहार।

औषधि बनाकर रोग भगाकर बनते स्वस्थ तन मन धार।। (8)

दाह संस्कार होता है अग्नि से कल कारखाना उद्योग चले।

यज्ञ होम आरती अग्नि से होते है अग्नि से शीत नशे।। (9)

पंच स्थावर है भले क्षुद्र जीव, बड़े जीवों के उपकारी।

इनके बिना कीट से मानव न जीते ऐसे वे हैं उपकारी।। (10)

मानव भी स्वयं को समृद्ध बनाता, पञ्चस्थावरों के बल से।

श्वास क्रिया व प्यास बुझाना भूख भी दूर करे इनसे।। (11)

वस्त्र मकान गृहोपकरण औषधि भी बनती इन से।

यान वाहन यंत्र कारखाना साहित्य भी बनते इन से।। (12)

इसीलिए हे मानव तुम कृतज्ञ बन जाओ इनके।

इन्हें तुच्छ मान नहीं सताओ कृतघ्न बनके इन के।। (13)

इनके शोषण हनन से आज, विभिन्न हैं प्रदूषण भारी।

विभिन्न रोग प्रकोप होते, प्राकृतिक है विप्लव भारी।। (15)

तुम्हें जीना हो तो इन्हें जीने दो, जो पाना है सो भी दो।

सुख पाना है तो सुख ही दो, दुःख कभी न किसी को दो।। (16)

हे मानव अभी अहंभाव छोड़ो, करो है शुभ समताचार।

'कनकनन्दी' सदा भावना भाये, विश्व में होवे साम्याचार।। (17)

झाड़ोल (स.) दि. 25.5.2011 मध्यान्ह 2.52

प्रकृति का शोषण किया न करो

रचयिता - आचार्य कनकनन्दी

तर्ज - अच्छा सिला दिया.....

प्रकृति का शोषण किया न करो

पर्यावरण प्रदूषण फैलाया न करो।। (टेक)

वृक्ष पशु-पक्षी की हत्या जब होती है

खान की खुदाई से प्रकृति की हत्या है।

मछली की हत्या से प्रकृति रोती है,

यान वाहन फैक्ट्री से प्रदूषण होता है।। (टेक)

इन्हीं कारणों से विविध प्रदूषण होते हैं,

वायु शब्द मृदाजल रेडियेशन होते हैं।

प्रदूषणों से विभिन्न रोग भी होते हैं,

दमा, श्वास, पीलिया, कैंसर होते हैं।

प्राकृतिक असन्तुलन जब भी होता है,

भूकम्प सुनामी ग्लेशियर क्षय होते हैं। (1) प्रकृति...

प्रकृति शोषण की प्रतिक्रिया होती है,

पाप के फल से पतन ही होता है।।

जैसा बोया वैसा पाया प्रकृति की नीति है,

मानव कुकृत्य की प्रतिक्रिया नीति है। (2) प्रकृति.....

प्रकृति माता का स्तनपान तो योग्य है,

प्रकृति माता का शोषण अयोग्य है।

पोषण के अनुसार दोहन योग्य है,

शक्ति के अनुसार वहन योग्य हैं।।

''कनकनन्दी'' की भावना सदा है,

प्रकृति का शोषण न होवे कदा है।। (3) प्रकृति...

सेमारी, 10-4-2011 रात्रि- 12:25

बड़ा ही स्वार्थी है मानव मनुआ

- आचार्य कनकनन्दी

राग : 1. छोटी छोटी गैया.... 2. बड़ा नटखट... 3. गायेंगे गायेंगे हम वन्दे मातरम्..

बड़ा ही /(महान्) स्वार्थी है मानव मनुआ

स्वार्थवश करता है सर्व क्रिया

स्वार्थ के आगे न देखता है भैया, माता-पिता या नैतिक क्रिया

स्वार्थ ही माता पिता बन्धु व भैया, स्वार्थ ही स्वर्ग मोक्ष धार्मिक क्रिया...(स्थायी)..

स्वार्थ से शत्रु का पग भी पड़ता, स्वार्थ से माता का हनन करता

स्वार्थ बिना पिता को न पानी पिलाता, स्वार्थवश पत्नी की आज्ञा पालता

स्वार्थ से अन्याय अत्याचार करता, स्वार्थ को अपना सर्वस्व मानता (1)

इसके हेतु है विदेश भी जाता, विधर्मी पापी की सेवा भी करता (2)

स्वार्थ से प्रभावित धर्म को करता, स्वार्थ से प्रभावित धर्म को तजता

स्वार्थ के लिए न्याय कानून तोड़ता, इसके हेतु मादक वस्तु बेचता

मानव पशु-पक्षी स्व बच्चा बेचता, शील सदाचार स्वदेश बेचता (3)

स्वार्थ से गुरु से भी गद्दारी करता, स्वार्थ से कृतज्ञ व कृतघ्न बनता

स्वार्थ से निन्दा भी मधुर लगती, स्वार्थ बिन हित बातें कड़वी लगती

स्वार्थ के समक्ष ब्रह्माण्ड भी है छोटा, स्वार्थ के बिना परमार्थ लगता खोटा (4)

मानव सम स्वार्थी अन्य प्राणी नहीं है, कीट व पतंग पशु-पक्षी कोई नहीं है

वृक्ष से पशु तक उपकारी होते, इसके बिना मानव जीवित न होते

मानव बिना इनका होता उपकार, फलते-फूलते होते है निहाल (5)

अब तो मानव स्वार्थ त्याग कर, परोपकार व परमार्थ को वर

संकीर्णता से तुम उदार बनो, परोपजीविता और शोषण छोड़ो

आत्मिक वैश्विक भावना धरो, कनकनन्दी का सद् आह्वान सुनो (6)

सेमारी, दि. 11-7-2011, रात्रि 11.19

बड़ा ही उद्दण्ड है मानव मनुआ

(मानव करता है - धर्म, शिक्षा, राजनीति, कानून, धन का दुरुपयोग)

- आचार्य कनकनन्दी

(रागः 1. गायेंगे गायेंगे हम वन्दे मातरम्... 2. छोटी छोटी गैया...

3. बड़ा नटखट है....)

बड़ा ही उद्दण्ड है ये मानव मनुआ, ना करे धर्म की सम्यक् क्रिया

धर्म तो सत्य दया पवित्र हिया, मन को लालसा हिंसा ही भाया

ताम-झाम से आडम्बरों को रचाया, प्रभावित करने का तन्त्र रचाया
पवित्र भावना व समता को खोया, मानवों में भेद-भाव रचाया (1)
दिखावा मात्र से धर्म को पाला, इससे ही स्वर्ग-मोक्ष को माना
विधर्मी को नीचमान अभिमान बढ़ाया, ईर्ष्या-द्वेष युद्ध तक धर्म से रचाया
धर्म रूपी अमृत से वञ्चित रहा, बाह्य रूप को धर्म है माना (2)
सर्वोदय शिक्षा को साक्षर बनाया, डिग्री व नौकरी को शिक्षा रूप माना
फैशन-व्यसन व भ्रष्टाचार पाला, आलस्य प्रमादमय जीवन जीया
''णाणपयासणं'' को नहीं पहिचाना, विद्या से विमुक्ति को विपरीत किया (3)
प्रजापालन रूपी राजनीति भूला, रक्षक के बदले में भक्षक बना
शोषण अत्याचार भोग अपनाया, सुरासुन्दरी समर शिकार किया
धर्म अर्थ काम मूल राजनीति छोड़ा, अर्थ काम मूलक तानाशाही बना (4)
सुवैद्य सम दोषहर न्यायनीति त्यागा, डाकू सम दण्डनीति प्रयोग अपनाया
सत्ता सम्पत्ति से न्याय नेत्रों को बाँधा, जिसकी लाठी उसकी भैंस को माना
सबे सहायक सबल की नीति अपनाया, न्याय के नाम पर अन्याय किया (5)
न्याय से उपार्जित धन का उपयोग, भरण-पोषण दान दया व पुण्य
तथापि लोभी मन करे है विपरीत, शोषण मिलावट चोरी व लूटपाट
फैशन-व्यसन में करे है धन खर्च, अहं ममकार धन के लिए चित्त (6)
''मनएव मनुष्याणां'' बन्ध व मोक्ष है, जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि भाव ही भावी है
मनचंगा तो कठौती में गंगा है, इसे भूलकर मनमानी करे है
मन मंजे बिना तन को ही मांजे है, विपरीत गति से लक्ष्य कहाँ मिले है (7)
लक्ष्य यदि पाना है तो विपरीत तज, विलोम के विलोम से अनुकूल भज
उपलब्धियों का उपयोग करो हे! दुरुपयोग को सर्वथा त्यागो हे!
कनकनन्दी के आह्वान को सुनो हे!, स्व-पर-विश्व का कल्याण ही करो हे! (8)

सेमारी, दि. 11/7/2011, सायं 7.45

अति ही चञ्चल है मानव मनुआ

(मनजयी से विश्वजयी तथा जो मन के दास सो सब के दास)

- आचार्य कनकनन्दी

राग : 1. गायेंगे गायेंगे हम वन्दे मातरम्... 2. छोटी छोटी गैया....
3. अच्छा सिला दिया.... 4. बड़ा नटखट है....

अति ही चञ्चल है मानव मनुआ, बिजली से भी अति है त्वरा हो हो SS
क्षण में स्वर्ग व क्षण में नरक, क्षण में रागी व क्षण में विरागी
क्षण में रूष्ट है क्षण में तुष्ट है, गिरगिट से भी अति निराला....(टेक)
बन्दर, गिलहरी, कबूतर, बाज, जल की तरंग व ध्वनि के वेग
पुष्पक विमान व जेट के यान, सुपर सोनिक से अति वेगवान
बिजली गति या प्रकाश गति, इनसे भी अधिक है मन की गति....(1)
इस गति के पीछे है मन की शक्ति, राग द्वेष से होती विपरीत गति
जिससे होती है ओछी प्रवृत्ति, समता संयम से सद्गति होती
जिससे होती है अच्छी प्रवृत्ति, जिससे मनवा की स्थिरता होती...(2)
मन की चञ्चलता से शान्ति नष्ट होती, स्मरणशक्ति घटती दुश्चिन्ता बढ़ती
अशान्ति, आकुलता, उच्चाटन होती, विक्षुब्धता बढ़ती दिशाभ्रान्ति होती
प्रज्ञाशक्ति घटती निर्णयशक्ति जाती, टेन्शन फोबिया आत्महत्या होती....(3)
समता संयम से चञ्चलता जाती, जिससे स्मरणशक्ति क्षमता बढ़ती
सन्तुष्टि शान्ति व स्थिरता आती, स्वाध्याय चिन्तन से विवेक वृद्धि
आत्मिक शुद्धि से वैराग्य बढ़ता, जिससे आत्मा को मोक्ष भी मिलता...(4)
इसलिए मानव मन वश करो, मनवश से दुःखों को शीघ्र क्षय करो

अतएव सुख-दुःख तुम्हारो उपज है, जैसा बीज बोओगे वैसा ही अनाज है...(5)

मन के वश से जगत् वश है, जो मन के वश सो जगत् दास है

तीर्थेश ऋषि बुद्ध मन के मालिक, जिससे विश्व का बने है मालिक

राजा-महाराजा नर व सुरासुर, मन के दास बन बनते भस्मासुर...(6)

मन के अनुसार मानव न चलो रे,

मनमाना से दुःख को न वरो है

मन को विवेक से स्ववश में करो है,

आध्यात्म साधना से दुःख दूर करो है

इस प्रयास में 'कनकनन्दी' रत है,

मानव करे निज मन को वश है....(7)

सेमारी, दि. 12/7/2011, मध्याह्न 1.52

(जन्म-जरा-मरण तथा अमृत स्वरूप)

- आचार्य कनकनन्दी

राग : सत्यं शिवं सुन्दरम्.....

जन्म ही मरणं, मरण से जन्मं, मध्य में जीर्णम्

जागो...SS स्वयं को जानो, स्व-स्वरूप अमृतम्, SSS

जन्मजरा मरणं... हो ओ... जन्मजरामरणं...2 तीनोंमय ही भ्रमणम्!

...दुःखमय ही है तीनों...

...तीनों से परे अमृतम्...आ आ

जन्म से पहले, जन्म से परे, स्वयं का होता अस्तित्व,

कर्म से तीनों का है जन्म...2 जन्मजरा व मरणम्

शरीर का जन्म, जीर्ण भी शरीरं, मरण भी कर्मजन्य

तीनों ही कर्म के सौजन्य...2 शुद्धात्मा से भिन्न...

तीनों के नाश निमित्तं... आध्यात्म साधना हितम्... हो हो

अन्यथा कारण ऋतम्...2

दर्शनज्ञान चारित्रं... सम्यक्त्व संयुक्तं... तीनों से मिलता मोक्षम्...

सत्यशिवसुन्दर युक्तम्...2.. यह है अमृतरूपम्...

'कनक' का साध्य रूपम्... साधन अन्य स्वरूपं... जन्ममृत्युनाशरूपम्...2

सेमारी, दिनांक- 6-7-2011, मध्याह्न 2:12

- जो ऐसी वाणी बोलता है कि सबके हृदय को आनंदित कर दे, उसके पास दुःखों को बढ़ाने वाली दरिद्रता कभी न आएगी।

  —तिरूवल्लुवर

- जो इंसान तोलकर नहीं बोलता, उसे सख्त बातें सुननी पड़ती हैं।

  —सादी

- घट—घट में वह साँई रमता, कटु वचन मत बोल रे।—

  कबीर

- कठोर वचन बुरा है क्योंकि तन—मन को जला देता है और मृदुल वचन अमृत वर्षा के समान है।

  —कबीर

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृ.सं.
1.	प्रस्तुत कृति का संक्षिप्त परिचय	2
2.	प्राक्कथनम्	3
3.	विश्ववन्द्य, विश्वविभूति विश्वगुरु भगवान् महावीर का विश्व को पावन सन्देश	9
4.	भगवान् महावीर का विश्व को दिव्य संदेश	11
5.	Updated Monks and Scholars Messages of Bhagwan Mahaveer - Nirmal Dosi, Jaina Scholars Program Coordinator - Acharya Kanaknandi :	12
6.	ब्रह्माण्ड की कहानी	14
7.	जैन धर्म में वर्णित महासत्ता एवं अवान्तर सत्ता	15
8.	जैन धर्म में वर्णित एकीकृत सिद्धान्त	17
9.	जीव मेरा नाम है! (जीव की आत्मकथा)	18
10.	प्राचीन एवं आधुनिक वैज्ञानिकों का संक्षिप्त परिचय	19
11.	विश्व का सही विकास धर्म और विज्ञान के सहयोग से	20
12.	विज्ञान की उज्ज्वल गाथा (विज्ञान का वरदान)	22
13.	विज्ञान का अन्धकार पक्ष (विज्ञान के दुरुपयोग से विनाश)	23
14.	विचित्र जीव की अजीब कहानी	24
15.	पञ्च स्थावरों के महान् योगदान	25
16.	प्रकृति का शोषण किया न करो	27
17.	बडा ही स्वार्थी है मानव मनुआ	28
18.	बडा ही उद्दण्ड है मानव मनुआ	29
अध्याय - 1		37-41
21.	सापेक्ष दृष्टि से जीव विज्ञान (धार्मिक एवं वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में)	37
22.	वैज्ञानिक डार्विन का जीव विज्ञानवाद अधिक असत्य	39
23.	आधुनिक वैज्ञानिक एवं कर्म सिद्धान्त तथा आध्यात्मिक दृष्टि से जैन धर्म में वर्णित जीव-विज्ञान (जैन जीव विज्ञान की दृष्टि से वैज्ञानिक जीव विज्ञान की समीक्षा)	41
अध्याय - 2		*47-59*
24.	ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण जीवों के जन्म के भेद	47
25.	अन्यग्रही जीव-देव	51
26.	अन्यग्रही देवों की आयु-आहार-श्वासक्रिया	55
27.	परम तापमान- ताप शून्यता में स्थित जीव-नारकी	59
अध्याय - 3		*63-65*
28.	अनन्त सुख सम्पन्न अभौतिक शुद्ध जीव	63
29	शुद्ध जीवों के क्षेत्र-अष्टम भूमि	65
अध्याय - 4		*70*
30.	ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण जीवों के 6 प्रकार के आहार तथा शरीर-आहार रहित जीव	70
अध्याय - 5		*79-94*
31.	आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से ब्रह्माण्ड एवं जीव	79
32.	ब्रह्माण्ड एवं जीव का विनाश	86
33.	विज्ञान के अनुसार जीवन के तत्त्व	87
34.	ब्रह्माण्ड में मिला जल भण्डार	94
अध्याय - 6		*97*

अध्याय - 7 **113-147**

37. अकृत्रिम शाश्वतिक मौलिक चेतन द्रव्य है जीव 113
38. जीव के नौ विशेष गुण 117
39. अशुद्ध एवं शुद्ध जीव के उपयोग 119
40. तिर्यञ्च गति का स्वरूप 125
41. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च के भेद 144
42. तिर्यञ्चों के 85 वर्ग (जीव समास) 146
43. मनुष्यों के आठ भेद 147

अध्याय - 8 **157-159**

44. जैन कर्म सिद्धान्त एवं जीव विज्ञान 157
45. जीव का अशुद्ध एवं शुद्ध स्वरूप 159

अध्याय - 9 **168-187**

46. जीव विज्ञान की समीक्षा 168
47. जीवों के पुद्गल द्रव्य का उपकार 176
48. जीवों का उपकार 182
49. औरंगाबाद के मेयर (महापौर) व आमदार (विधायक) श्री किशनचन्द जी तनवानी द्वारा आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव संसघ को चातुर्मास करने हेतु विनती - 183
50. त्रय दिवसीय महोत्सव (वर्षायोग-गुरुपूर्णिमा-वीरशासन जयन्ती का महत्व) 184
51. हम ज्ञान, संस्कृति, वैभव के खजाने पर बैठकर भीख मांग रहे हैं! (श्रुत-साहित्य पर्व विशेष) 185
52. फ्लोरिडा वि.वि. अमेरिका से आगत प्रो.डॉ. व्हिटनी बॉमन की

अध्याय - 1

सापेक्ष दृष्टि से जीव-विज्ञान

(धार्मिक एवं वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में)

विश्व अनादि अनन्त-शाश्वतिक है। विश्व के प्रत्येक चेतन (जीव), अचेतन (अजीव), भौतिक-अभौतिक, मूर्तिक-अमूर्तिक द्रव्य भी अनादि-अनन्त शाश्वतिक हैं। इसके साथ-साथ प्रत्येक द्रव्य परिणमनशील है। द्रव्य परिणमन होने के कारण विश्व भी परिणमनशील है। विश्व में (1) जीव द्रव्य (चेतनात्मक अभौतिक द्रव्य) (2) पुद्गल (भौतिक द्रव्य) (3) आकाश द्रव्य (4) काल द्रव्य (5) गति माध्यम धर्म द्रव्य (6) स्थिति माध्यम अधर्म द्रव्य हैं। इनमें से पुद्गल द्रव्य (भौतिक परमाणु से लेकर भौतिक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड) ही मूर्तिक है। क्योंकि इसमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, हलका, भारी आदि गुण एवं अवस्थाएँ उपलब्ध होती हैं। सामान्य मानव से लेकर वैज्ञानिक तक जो इन्द्रियों से लेकर शक्तिशाली यन्त्रों से देखते हैं (आकार - रंग आदि), सुनते हैं, स्पर्श करते हैं, चखते हैं, सूँघते हैं, हलका अनुभव करते हैं, भारी अनुभव करते हैं, वे सब अशुद्ध भौतिक द्रव्य/मॉलिक्यूल/स्कन्ध हैं। सूक्ष्म दर्शक यन्त्रों से देखने योग्य या नहीं दिखने योग्य जीव से लेकर वनस्पति, कीट-पतंग, पशु-पक्षी, मनुष्य, परग्रही जीव, देव, नारकी के शरीर एवं शरीर के सूक्ष्म से लेकर स्थूल अवयव भी भौतिक तत्त्व हैं। विज्ञान में ज्ञात परमाणु, इलेक्ट्रान, प्रोट्रान, न्यूट्रान, प्लाज्मा, लेजर किरण, सूर्य किरण, विद्युत् चुम्बकीय शक्ति, ग्रह, तारा, आकाशगंगा तथा गेलेक्सी के समूह स्वरूप ब्रह्माण्ड, ब्लैक होल, क्वासर-सम्भवतः डार्क मैटर, डार्क एनर्जी आदि सब भौतिक तत्त्व ही हैं। इन सब कारणों से या भौतिक प्रमाण को ही वैज्ञानिक जानते, मानते, स्वीकार करते, विश्वास

ब्रह्माण्ड एवं ब्रह्माण्ड की हर वस्तु, घटना आदि को भौतिक तत्त्व रूप में ही शोध-बोध-खोज-कल्पना-विश्वास करते हैं। यह सब वैज्ञानिकों की प्रामाणिकता, परीक्षा प्राधान्यता के साथ-साथ उसकी संकीर्णता, अज्ञानता, विवशता, रूढ़िवादिता आदि को भी दर्शाते हैं। भले शरीर की दृष्टि से प्रत्येक जीव भौतिक है तथापि चेतन द्रव्य स्वरूप जो वास्तविक जीव द्रव्य है; वह शुद्ध स्वरूप में अभौतिक, अमूर्तिक, शाश्वतिक, अकृत्रिम, अनादिनिधन, अनन्त ज्ञान सुखवीर्य आदि अनन्त गुण सम्पन्न स्वतन्त्र मौलिक द्रव्य हैं।

भले अनन्त अनादि काल से संसार के अनन्तानन्त जीव भौतिक कर्म के संश्लेष बन्ध के कारण व्यवहार से भौतिकमय हो रहे हैं तथापि निश्चय से वे भौतिक स्वरूप नहीं हो जाते हैं। जैसा कि भौतिक तत्त्व के कारण आकाश का वर्ण नीला हो जाने से निश्चय से आकाश न भौतिक स्वरूप हो जाता है न ही आकाश का रंग नीला हो जाता है। इसी प्रकार हर एक जीव में अनन्तानन्त भौतिक कर्म परमाणु संश्लेष रूप से मिले होने से उनके वास्तविक गुणधर्म यथा-ज्ञान, सुख, वीर्य, अमूर्तिकत्व आदि सुप्त-गुप्त-विकृत-क्षीण हो रहे हैं तथापि वे गुण न पूर्णतः नष्ट हुए हैं, न ही भौतिक रूप हो गये हैं। इन भौतिक कर्म से प्रभावित होकर जीवों के जन्म, विकास, सुख-दुःख, रोग, मरणादि होते हैं। इतना ही नहीं जीवों की बुद्धि, भावना, सम्वेदना, इच्छा, क्रोधादि कषाय, तृष्णा, आकांक्षा आदि भी इन कर्मों से प्रभावित है, जायमान भी है। इन सब दृष्टि से विज्ञान द्वारा ज्ञात सम्पूर्ण जीव भौतिकमय है- यह सत्य है तथापि जो आधुनिक विकासवादी जीव विज्ञानी डार्विन से लेकर अद्यतन जीनोम सिद्धान्तवादी जीव विज्ञानी तक सम्पूर्ण जीवों को किसी न किसी रूप से पूर्णतः भौतिकमय ही जानते हैं, मानते हैं, विश्वास करते हैं, यहाँ तक कि कल्पना करते हैं, यह पूर्णतः सत्य नहीं है। संक्षिप्ततः कहें तो वैज्ञानिकों के जीव सम्बन्धी मत आंशिक

वैज्ञानिक डार्विन का जीव विज्ञानवाद अधिक असत्य

(आधुनिक वैज्ञानिक एवं कर्म सिद्धान्त तथा आध्यात्मिक दृष्टि से)

इस सम्बन्धी सविस्तार से वर्णन मैंने (आचार्य कनकनन्दी) मेरी (1) विश्व विज्ञान रहस्य (सन् 1983) (2) ब्रह्माण्ड-आकाश-काल एवं जीव अनन्त पृ.सं. 400 (3) मानव इतिहास एवं मानव विज्ञान, पृ.सं. 400 (4) सूक्ष्म जीव विज्ञान से शुद्ध जीव विज्ञान तक, पृ.सं. 880 आदि में किया है तथा प्रस्तुत कृति में भी आगे किया है तथापि यहाँ कुछ वर्णन दिग्दर्शन रूप में कर रहा हूँ।

डार्विन के अनुसार समुद्र में रासायनिक प्रक्रिया के कारण पहले सूक्ष्म जीव उत्पन्न हुए तथा क्रम विकास के द्वारा जलचर, उभयचर, स्थलचर, नभचर, वानर, वन मनुष्य, गुहामानव, प्रस्तर युग के मानव, धातु युग के मानव से लेकर आधुनिक वैज्ञानिक युग के सभ्य मानव का क्रम विकास हुआ। किन्तु अभी के जीवित विदेशी वैज्ञानिक इससे भिन्न तथा विपरीत या चरम परिस्थिति में भी जीवों की उत्पत्ति, स्थिति, समृद्धि सिद्ध कर रहे हैं। उन्होंने सिद्ध किया है कि समुद्र की अत्यन्त गहराई में जहाँ सूर्य किरण प्रवेश नहीं करती, वहाँ भी जीव हैं, समुद्र की ज्वालामुखी में जिसका तापमान 650°C, में भी जीव हैं, एलोस्टोन नेशनल पार्क के 193°C तापमान वाला गरम स्रोत में भी जीव हैं, तेजाब में भी जीव हैं, पृथ्वी के अन्दर मीलों की गहराई में घोर अन्धकार में चट्टानों में भी जीव हैं जो चट्टानों को ही खाकर जीवित रहते हैं।

आधुनिक विज्ञान की खोज से ज्ञात हुआ कि क्रेप जो एक केंकड़ेनुमा कवचधारी (आर्थपोड) समुद्री जीव है, वह 50 करोड़ वर्षों से है। इस प्रजाति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इसका खून नीला है। इस जीव का शोध 80 वर्षों से हो रहा है कि यह जीव इतने वर्षों से कैसे जीवित है; महाप्रलय में भी कैसे नाश नहीं हुआ; डायनासोर से भी पहले से हैं जबकि डायनासोरों का विनाश

के है। वह अपनी रक्षा तेजाबनुमा रसायन स्प्रे करके करता है। इसी प्रकार घड़ियाल 18 करोड़ों वर्षों से तो काक्रोच, ग्रेट व्हाईट शार्क आदि डायनासोर युग के पहले से भी बिना परिवर्तन के वंशवृद्धि कर रहे हैं, जबकि डार्विन के अनुसार पूर्ववर्ती जीव प्रजाति क्रम विकास करता हुआ उत्तरवर्ती जीव प्रजातियों तथा और भी अनेक प्रजातियों में परिवर्तन क्यों नहीं हुआ? अभी भी सूक्ष्मजीव से लेकर जलचर, स्थलचर, उभयचर, वानर, वनमानव, चिम्पांजी आदि लाखों प्रजातियाँ हैं? वे सब यदि परिवर्तित होकर वानर से आधुनिक मानव बन जाते तो उसका अस्तित्व कैसे सम्भव होता? क्योंकि जबकि डार्विन के अनुसार तो पूर्ववर्ती पूर्ण प्रजाति ही परिवर्तित होकर उत्तरवर्ती प्रजाति बनती है। आधुनिक वैज्ञानिकों के मत हैं- ब्रह्माण्ड में और भी लाखों-करोड़ों ग्रहों-उपग्रहों में सामान्य सूक्ष्म जीव से लेकर पृथ्वी के आधुनिक मानव या इससे भी अधिक विकसित मानव या जीव सम्भव हैं। इन्हें वैज्ञानिक परग्रही/एलियन आदि नाम से पुकारते हैं। उनका मत है- केवल मानव ही जीव विकास की चरम प्रजाति नहीं है। उनका यह भी मानना जरूरी नहीं है कि अन्यग्रही पृथ्वी के जीव प्रजातियों के समान ही आकार-प्रकार, गुण-धर्म, भोजन, निवास, वातावरण आदि के समान ही होते हों! सम्भव है, उनकी श्वासक्रिया अलग हो! इसके लिए ऑक्सीजन के परिवर्तन में अन्य मिथेन आदि गैस का प्रयोग करते हों! उनके शरीर के रसायन अलग हों! उनकी आयु अधिक हो! उनके टेक्नालॉजी हमसे भिन्न एवं उन्नत हो!

अभी के वैज्ञानिक, डार्विन केसंघर्षवाद से अधिक सहयोगवाद, सहअस्तित्ववाद को महत्व देते हैं जिसके कारण पर्यावरण सुरक्षा, विलुप्त प्रजातियों की सुरक्षा, पशुक्रूरता निवारण, ईकोफ्रेण्डली कार्यक्रम आदि को अधिक महत्व दिया जा रहा है, उपरोक्त कारणों से तथा और भी अधिक कारणों से आधुनिक अनेक वैज्ञानिक डार्विन के मत को मानते नहीं हैं और यहाँ तक कहते हैं कि ऐसे मत को हम कब तक अन्धानुकरण रूप से ढोते रहेंगे? उनका मत है कि जीव की उत्पत्ति समुद्र में न होकर पृथ्वी के गर्भ में (गर्म स्थान में होना अधिक सम्भव

जैन धर्म में वर्णित जीव-विज्ञान

(जैन जीव विज्ञान की दृष्टि से वैज्ञानिक जीव विज्ञान की समीक्षा)

जैन धर्म के अनुसार ब्रह्माण्ड में अनादि से सूक्ष्म जीव सर्वत्र भरे हुए हैं। ब्रह्माण्ड के सबसे नीचे अनंतानंत नित्य निगोदिया जीव हैं जो सबसे सूक्ष्म एवं सबसे क्षुद्र (छोटा आकार) तथा सबसे निम्न स्तरीय (कम विकसित) जीव हैं। इस अवस्था में जीव अनन्त काल रहता है अर्थात् इस पर्याय में ही जन्म लेता है और मरकर इस अवस्था में जीव अनन्तकाल रहता है। अर्थात् इस पर्याय में ही जन्म लेता है और मरकर इस अवस्था में पुनः पुनः अनन्तबार जन्म-मरण करता है। भाव के परिवर्तन होने पर उनमें से कुछ जीव द्वीन्द्रिय आदि जीवों में जन्म लेकर योग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-पुरुषार्थ के कारण विकास करते हुए पशु-पक्षी-नारकी-देव-मनुष्य बनकर शुद्ध बनकर मुक्त होकर इस 84 लाख योनि स्वरूप संसार परिभ्रमण से परे हो जाते हैं। जो जीव मुक्त नहीं हो पाते हैं वे पुनः निगोदिया में जन्म लेते हैं। इन्हें इतर निगोदिया कहते हैं। नित्यनिगोदिया से विकास करता हुआ जीव जब तक मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाता है तब तक वह भाव-भाग्य पुरुषार्थ के अनुसार विभिन्न जीव प्रजातियों में संख्यात, असंख्यात, अनन्तबार जन्म-मरण को प्राप्त करता रहता है। कुछ जीव चरम उष्ण प्रदेश या उष्णयोनि में, तो कुछ जीव चरमशीत प्रदेश या शीत योनि में जन्म लेते हैं। उदाहरणतः - अग्निकायिक जीव उष्ण योनि के हैं तथा कुछ नारकी उष्ण क्षेत्र में रहते हैं तो कुछ शीत प्रदेश में रहते हैं। नारकी जीव विभिन्न यन्त्रणाओं को सहन करते हुए भी दीर्घ जीवन जीते हैं; उनका अकाल मरण भी नहीं होता, वे अत्यन्त दुर्गन्धित विषाक्त मिट्टी खाकर निर्वाह करते हैं। उनका शरीर छिन्द-भिन्द होने पर, जल जाने पर भी वे पुनः जीवित हो उठते हैं। वे जीवन भर लड़ाई-झगड़ा-कलह करते रहते हैं। उनकी सन्तान उत्पन्न नहीं होती वे सब नपुंसक होते हैं। उनका जन्म उपपाद से होता है।

भोगभूमि के युग में वातावरण समशीतोष्ण रहता है, वर्षा दुष्काल से रहित

शान्त-भद्र-सुन्दर बलशाली तथा विशाल शरीर के धारी होते हैं, भोजन कम मात्रा में करते हैं, मलमूत्र से रहित होते हैं, दीर्घकाल तक जीवित रहते हैं। परग्रही/स्वर्ग के वातावरण भोगभूमि से भी श्रेष्ठ उत्तम होता है। स्वर्ग के देव बाहर से भोजन-पानी ग्रहण नहीं करते हैं, दीर्घकाल के अन्तराल में भूख लगने पर उनके कंठ से स्वयमेव अमृत झरता है जिससे वे तृप्त हो जाते हैं। कुछ प्रजाति के देव-देवियाँ सम्भोग करते हैं तथापि उनकी सन्तान नहीं होती है किन्तु उनका जन्म उपपाद में होता है। जन्म लेने के कुछ समय में ही नवयौवनावस्था को प्राप्त करते हैं जिस अवस्था में वे दीर्घकाल तक जीवित रहकर मरते हैं।

एकेन्द्रिय सूक्ष्म निगोदिया से लेकर पशु-पक्षी, देव-नारकी मानव प्रजाति के जीवों में से कुछ स्व-स्वभाव-भाग्य-पुरुषार्थ-क्षेत्र-काल के अनुसार उच्च प्रजातियों में जन्म लेकर पुनः नीच प्रजातियों में भी जन्म लेते रहते हैं तो कुछ विकास करते हुए शुद्ध जीव बन जाते हैं तथापि सम्पूर्ण प्रजातियों के सभी जीवों में यह सब प्रक्रिया नहीं होती है। यथा-यह जीव अनादिकाल से लेकर अनन्तकाल तक तो निगोद में रहता है। वहाँ से निकलकर पृथ्वीकाय आदि में जन्म लेता है। अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र में जो अनन्त-जीवों को स्थान देता है, उसे निगोद कहते हैं। निगोदिया जीवों को साधारण जीव भी कहते हैं, क्योंकि एक निगोदिया शरीर में बसने वाले अनन्त जीवों का आहार, श्वासोच्छ्वास वगैरह साधारण होता है अर्थात् उन सब जीवों का एक शरीर होता है, एक साथ सब आहार ग्रहण करते हैं, एक साथ सब श्वास लेते हैं और एक साथ ही मरते और जन्म लेते हैं। निगोद के दो भेद हैं - नित्यनिगोद और चतुर्गति निगोद। जो जीव अनादिकाल से निगोद में पड़े हुए हैं, वे नित्यनिगोदिया कहे जाते हैं और जो त्रस पर्याय प्राप्त करके निगोद में जाते हैं, उन्हें चतुर्गति निगोदिया कहते हैं। नित्य निगोद में तो जीव अनादिकाल से अनन्त काल तक रहता है। गोम्मट्टसार में कहा है- ऐसे अनन्त जीव हैं जिन्होंने त्रस पर्याय प्राप्ति नहीं की। उनके भावकर्म बहुत निबिड होते हैं, इसलिए वे निगोद को नहीं छोड़ते। नित्य निगोद से निकलने के विषय में दो मत पाये जाते हैं। एक मत के अनुसार तो नित्य

के कुछ शिथिल होते ही निकल आता है। स्वामी कार्त्तिकेय का मत भी यही जान पड़ता है। अतः वे कहते हैं कि प्रथम तो जीव का अनन्त काल निगोद में बीतता है, वहाँ से निकलकर वह पृथ्वीकाय वगैरह में जन्म लेता है। अतः अज्ञानी का अज्ञानी ही बना रहता है।

त्रस पर्याय की दुर्लभता- वहाँ भी असंख्य काल तक बादर और सूक्ष्म काय में परिभ्रमण करता है। फिर चिन्तामणि रत्न की तरह दुर्लभ त्रस पर्याय को बड़ी कठिनता से प्राप्त करता है। निगोद से पृथ्वीकाय वगैरह में जन्म लेने पर भी त्रस पर्याय आसानी से नहीं मिलती। असंख्यात काल तक बादर, सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों में ही भटकता है। फिर बड़ी कठिनाई से त्रस पर्याय मिलती है।

त्रस में पञ्चेन्द्रिय दुर्लभ- एकेन्द्रिय पर्याय से निकलकर विकलेन्द्रियों में जन्म लेता है। वहाँ भी अनेक पूर्वकोटि काल तक रहता है। वहाँ से निकलकर जिस किसी तरह पंचेन्द्रिय होता है। एकेन्द्रिय से दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय होकर पंचेन्द्रिय होना दुर्लभ है। यदि विकलेन्द्रिय से पुनः एकेन्द्रिय पर्याय में चला गया तो फिर बहुतकाल तक वहाँ से निकलना कठिन है। अतः त्रस होकर भी पञ्चेन्द्रिय होना दुर्लभ है।

संज्ञी पंचेन्द्रिय दुर्लभ- विकलत्रय से निकलकर पञ्चेन्द्रिय भी होता है तो मन रहित असैनी होता है। अतः अपने आपको और पर को नहीं जानता। और जो कदाचित् मन सहित सैनी भी होता है तो रौद्र परिणामी तिर्यञ्च होता है। यदि पञ्चेन्द्रिय पर्याय भी प्राप्त कर लेता है तो असंज्ञी होने के कारण बातचीत, उपदेश वगैरह नहीं समझ सकता। अतः न तो स्वयं अपने को जानता है और न अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, आगम धर्म आदि को ही जानता है। कदाचित् जिस किसी तरह संज्ञी पञ्चेन्द्रिय भी होता है तो बिलाव, चूहा, भेडिया, गृद्ध, सर्प, नेवला, व्याघ्र, सिंह, मगर आदि क्रूर तिर्यंच हो जाता है। अतः सदा पाप रूप परिणाम रहते हैं।

संज्ञी से नारकी - सो तीव्र लेश्या से मरकर वह क्रूर तिर्यञ्च दुःखदायी

प्रकार की होती है। उसमें से पत्थर की लकीर के समान क्रोध, स्तम्भ की तरह कभी न मानने वाला मान, बाँस की जड़ की तरह माया और लाख के रंग की तरह कभी न मिटने वाला लोभ अति अशुभ लेश्याएँ ही होती हैं। इन अशुभ लेश्याओं से मरकर वह क्रूर तिर्यंच रत्नप्रभा आदि नरकों में जन्म लेता है। यहाँ भूख, प्यास, शीत, उष्ण के कष्ट के साथ ही साथ, छेदना, भेदना, चीरना, फाड़ने आदि का कष्ट भोगता है; क्योंकि नारकी जीव परस्पर में एक दूसरे को अनेक प्रकार से कष्ट देते हैं। कोल्हू में पेलना, भाड़ में भूँजना, पकाना, शूलों पर फेंक देना, तलवार के धार के समान नुकीले पत्ते वाले वृक्षों के नीचे डाल देना, सुई की नोक के समान नुकीली घास वाली जमीन पर डालकर खींचना, वैतरणी नदी में डालना तथा अपनी विक्रिया से निर्मित अस्त्र शस्त्रों से परस्पर में मारना आदि के द्वारा बड़ा कष्ट पाते हैं। इसके सिवा तीसरे नरक तक असुर कुमार जाति के देव भी कष्ट पहुँचाते हैं। इस तरह नरक में जाकर वह जीव बड़ा कष्ट भोगता है।

नरक से पुनः तिर्यंच - नरक से निकलकर फिर भी तिर्यञ्च गति में जन्म लेता है और पापपूर्वक वहाँ भी अत्यन्त दुःख सहता है। रत्नप्रभा आदि भूमि से निकलकर यह जीव फिर भी तिर्यंच गति में जन्म लेता है अर्थात् तिर्यंच गति से ही नरक में गया था और नरक से निकलकर भी तिर्यंच ही होता है। तिर्यंच गति में भूख, प्यास, शीत, उष्ण, भारवहन, छेदन, भेदन, ताड़न, मारन आदि का महादुःख सहना पड़ता है।

मनुष्य की दुर्लभता - जैसे चौराहे पर गिरे हुए रत्न का हाथ आना दुर्लभ है, वैसे ही मनुष्य भव भी अत्यन्त दुर्लभ है। तिर्यञ्च पर्याय से निकलकर और अत्यन्त दुलर्भ मनुष्य भव को पाकर भी यह मिथ्यादृष्टि म्लेच्छ होकर पाप का उपार्जन करता है। मनुष्य भव पाकर भी यदि मिथ्यादृष्टि हुआ और म्लेच्छ खण्डों में जन्म लिया तो पाप ही करता है।

आर्यत्वादि की दुर्लभता - यदि कदाचित् आर्यखण्ड में जन्म लेता है तो उत्तम कुल पाना दुर्लभ है। कदाचित् उत्तम कुल भी मिला तो धन हीन दरिद्र होता है।

आदि उत्तम पुरुष जिस भूमि में जन्म लेते हैं वह भूमि आर्यखण्ड कही जाती है। यदि मनुष्य भव पाकर वह जीव आर्यखण्ड का मनुष्य हुआ, महाव्रत की प्राप्ति के योग्य अथवा मोक्ष साधन के योग्य उत्तम क्षत्रिय आदि का कुल नहीं पाया तो भी मनुष्य भव पाना व्यर्थ हुआ। तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का प्रशस्त कुल पाकर भी यदि धन-धान्य से रहित दरिद्री हुआ तो भी जीवन कष्ट में ही बीतता है। धन सम्पन्न भी हुआ तो इन्द्रियों की पूर्णता का पाना दुर्लभ है। कदाचित् इन्द्रियाँ भी पूर्ण हुई और शरीर रोगी हुआ तो भी सब व्यर्थ है। कदाचित् धनाढ्य भी हुआ तो हाथ पैर से ठीक होना, अर्थात् अपंग, अन्धा वगैरह न होना कठिन है। कदाचित् शरीर अविकल हुआ और आँख, नाक, कान वगैरह भी ठीक हुए तो निरोग शरीर मिलना दुर्लभ है क्योंकि मनुष्य शरीर ज्वर, भगंदर, कुष्ट, जलोदर, प्लीहा, सन्निपात आदि व्याधियों का घर है।

शीलादि की दुर्लभता- कदाचित् निरोग भी हुआ तो लम्बी आयु नहीं पाता अर्थात् जल्द ही मर जाता है अथवा कदाचित् लम्बी आयु भी पायी तो उत्तम स्वभाव रूपशील को नहीं पाता है।

साधु संगति सम्यक्त्व की दुर्लभता- कदाचित् उत्तम स्वरूप शील को पाता भी है तो रत्नत्रय के साधक साधु जनों की संगति का लाभ नहीं मिलता। यदि किसी प्रकार साधु संगति का लाभ भी हो जाता है तो तत्त्वार्थश्रद्धान रूप सम्यक्त्व का पाना अति दुर्लभ है।

चारित्र, सामर्थता की दुर्लभता - दैववश कदाचित् सम्यक्त्व को प्राप्त भी करले तो चारित्र ग्रहण नहीं करता और कदाचित् दैवयोग से चारित्र ग्रहण भी करले तो उसे पालने में असमर्थ होता है।

तीव्र कषाय से रत्नत्रय नष्ट से दुर्गति - कदाचित् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय को प्राप्त करके भी यदि यह जीव अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ तीव्र कषाय को करता है तो रत्नत्रय को नष्ट करके दुर्गतियों में गमन करता है अर्थात् मरकर या तो नरक में चला जाता है, या

मनुष्यत्व की दुर्लभता - अतः जैसे समुद्र में गिरा हुआ रत्न पाना दुर्लभ है वैसा ही मनुष्य जन्म पाना दुर्लभ है। ऐसा निश्चय करके तुम मिथ्यात्व और कषायों को छोड़ दो।

देव में चरित्र की दुर्लभता - यदि कदाचित् यह जीव मर कर देव भी होता है और वहाँ किसी तरह सम्यक्त्व को भी प्राप्त कर लेता है तो तप और चारित्र को नहीं पाल सकता। और तो क्या, देशसंयम और शील का लेश भी नहीं होता। कदाचित् मनुष्य पर्याय में इस जीव ने राग सहित संयम का अथवा देश संयम का पालन किया, अथवा अकाम निर्जरा और खोटा तप किया और मरकर पुण्ययोग से देव हुआ तथा देव होकर क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धलब्धि, देशनालब्धि, प्रयोगलब्धि और करणलब्धि के मिल जाने से सम्यग्दर्शन भी प्राप्त कर लिया किन्तु बारह प्रकार का तप और पाँच प्रकार का चरित्र तो वहाँ किसी भी तरह प्राप्त नहीं हो सकता। और तो क्या, श्रावक के व्रत तथा शील का लेश भी पाल सकना वहाँ शक्य नहीं है। क्योंकि देवगति में संयम संभव नहीं है।

मनुष्य गति में विशेष - मनुष्य गति में ही तप होता है। मनुष्य गति में ही समस्त महाव्रत होते हैं। मनुष्य गति में ही ध्यान होता है और मनुष्यगति में ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश- ये छः बाह्य तप और प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान- ये छः अभ्यन्तर तप मनुष्यगति में ही होते हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह-इन समस्त पापों का पूर्ण त्याग रूप महाव्रत मनुष्य ही धारण कर सकते हैं। मनुष्यगति में ही उत्कृष्ट धर्मध्यान और शुक्लध्यान होते हैं तथा समस्त कर्मबन्धन से मुक्ति भी मनुष्य गति में ही मिलती है।

विषयासक्त मनुष्य मूढ़ - पूर्वोक्त प्रकार से दुर्लभ मनुष्य पर्याय को प्राप्त करके जो पाँचों इन्द्रियों के विषय में रमते हैं, वे मूढ़ दिव्य रत्न को पाकर उसे भस्म के लिये जलाकर राख कर डालते हैं।

दुर्लभ रत्नत्रय आदरणीय - इस तरह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्

अध्याय - II

ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण जीवों के जन्म के भेद

सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्मः। (31) (स्वतन्त्रता के सूत्र)

Birth if of 3 kinds - सम्मूर्च्छन - Spontaneous generation, गर्भ - Uterine Birth, उपपाद Instantaneous rise.

सम्मूर्च्छन, गर्भ और उपपाद - ये (तीन) जन्म हैं।

1. **सम्मूर्च्छन जन्म** - तीनों लोकों में ऊपर, नीचे और तिरछे, देह का चारों ओर से मूर्च्छन अर्थात् ग्रहण होना सम्मूर्च्छन है। इसका अभिप्राय है, चारों ओर से पुद्गलों-भौतिक तत्त्वों का ग्रहण कर अवयवों की रचना होना। एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीवों का जन्म सम्मूर्च्छन ही होता है।

2. **गर्भ जन्म** - स्त्री के उदर में शुक्र और शोणित के परस्पर गरण अर्थात् मिश्रण को गर्भ जन्म कहते हैं।

3. **उपपाद जन्म** - प्राप्त होकर जिसमें हलन-चलन करता है, उसे उपपाद कहते हैं। उपपाद यह देव और नारकियों के उत्पत्ति स्थान विशेष की संज्ञा है। संसारी जीवों के ये तीनों जन्म के भेद हैं, जो शुभ और अशुभ परिणामों के निमित्त से अनेक प्रकार के कर्म बँधते हैं, उनके फल हैं।

योनियों के भेद

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः। (32)

Living matter, cold, covered with their opposities, and the combination of each (pair) (are) their nuclei or birth places. योनि nucleus, the material environment in which the incarnating soul finds lodgment, is of 9 kinds : - (1) सचित्त of living matter. (2) अचित्त of matter only with no life. (3) सचित्ताचित्त of living and dead matter. (4) शीत

संवृत्त विवृत्त Partly exposed and partly covered.

सचित्त, शीत और संवृत्त तथा इनकी प्रतिपक्षभूत अचित्त, उष्ण और विवृत्त तथा मिश्र अर्थात् सचित्ताचित्त, शीतोष्ण और संवृत्त विवृत्त ये उसकी अर्थात् जन्म की योनियाँ हैं।

संसारी जीव के योनिभूत स्थान या आधार को 'योनि' कहते हैं। चित्त सहित योनी को सचित्त योनि कहते हैं। आत्मा के चैतन्य रूप परिणाम को चित्त कहते हैं। शीतल स्पर्श युक्त योनि को शीत योनि कहते हैं। भले प्रकार ढकी योनि को संवृत्त योनि कहते हैं। संवृत्त का अर्थ है जो देखने में न आये। उभयरूप योनि को मिश्र कहते हैं अर्थात् सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, संवृत्त विवृत्त योनि कहते हैं।

योनि और जन्म में आधार आधेय दृष्टि से भेद है। ये सचित्त आदिक योनियाँ आधार हैं और जन्म के भेद आधेय हैं। क्योंकि सचित्त आदि योनिरूप आधार में सम्मूर्च्छन आदि जन्म के द्वारा आत्मा, शरीर, आहार और इन्द्रियों के योग्य पुद्गलों का ग्रहण करता है। देव और नारकियों की अचित्त-योनि होती है क्योंकि उनके उपपाद देश के पुद्गल प्रचय रूप योनि अचित्त है। गर्भजों की मिश्र योनि होती है, क्योंकि उनकी माता के उदर में शुक्र और शोणित अचित्त होते हैं जिनका सचित्त माता की आत्मा से मिश्रण है, इसलिये वह मिश्र योनि है। सम्मूर्च्छनों की तीन प्रकार की योनियाँ होती हैं। किन्हीं की सचित्त योनि होती है, किन्हीं की अचित्त योनि होती है और किन्हीं की मिश्र योनि होती है। साधारण शरीर जीवों की सचित्त योनि होती है क्योंकि ये एक-दूसरे के आश्रय से रहते हैं। इनसे अतिरिक्त शेष सम्मूर्च्छन जीवों के अचित्त और मिश्र दोनों प्रकार की योनियाँ होती हैं। देव और नारकियों की शीत और उष्ण दोनों प्रकार की योनियां होती हैं, क्योंकि इनके कुछ उपपाद स्थान शीत हैं और कुछ उष्ण। तेजस्कायिक जीवों की उष्णयोनि होती है। इनसे अतिरिक्त जीवों की योनियाँ तीन प्रकार की होती है। किन्हीं की शीत योनियाँ होती हैं, किन्हीं की

है, यह बात आगम से जाननी चाहिये। कहा भी है-

"णिच्चिदरधादु सत्त य तरु वियलिंदिएसु छच्चेव।
सुरणिरयतिरिय चउरो चोद्दस मणुए सदसहस्सा।।"

नित्य निगोद, इतरनिगोद, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों की सात-सात लाख योनियाँ हैं। वृक्षों की दस लाख योनियाँ है। विकलेन्द्रियों की मिलाकर छः लाख योनियाँ हैं। देव, नारकी और तिर्यञ्चों की चार-चार लाख योनियाँ है तथा मनुष्यों की चौदह लाख योनियाँ है।

गर्भ जन्म किसके होता है?

जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः। (33)

Uterine birth is of 3 kinds. जरायुज Umbilical birth in a yolk, sack, flesh envelope, like a human child. अण्डज Incubatory birth from a shell like an egg.पोत Unumbilical, Birth without any sack or shell, like a cub of a lion or a kitten.

जरायुज, अण्डज और पोत जीवों का गर्भ जन्म होता है।

(1) **जरायुज** - जाल के समान प्राणियों के परिआवरण को जरायु कहते हैं। गर्भाशय में प्राणी के ऊपर जो मांस और रक्त का जाल के समान आवरण होता है, उसे जरायु कहते हैं। मनुष्य, गाय, भैंस आदि के जन्म जरायुज हैं। जरायुज प्राणी आधुनिक विज्ञान के अनुसार और जैनधर्म के अनुसार उन्नतशील जीव होते हैं। विशेषतः जीव स्थलचर होते हैं।

(2) **अण्डज** - शुक्र और शोणित से परिवेष्ठित नख के ऊपरी भाग के समान कठिन और गोलाकार अण्डा होता है। जो नख की छाल के समान कठोर हो, पिता के वीर्य और माता के रक्त से परिवेष्ठित हो तथा श्वेतवर्ण तथा गोलाकार हो, उसका नाम अण्डा है। इस अण्डे में जन्म लेने वाले को अण्डज कहते हैं। चील, कबूतर, तोता, मैना (सारिका) आदि अण्डज प्राणी हैं। यह प्राणी

(3) **पोतज** - सम्पूर्ण अवयव तथा परिस्पन्द सामर्थ्य से उपलक्षित पोत हैं। जो गर्भाशय से निकलते ही चलने फिरने के सामर्थ्य से युक्त हैं-सम्पूर्ण अवयव वाला है और जिसके ऊपर कोई आवरण नहीं हैं, वह पोत कहलाता है। जरा में उत्पन्न होने वाला जरायुज, अण्डे में उत्पन्न होने वाला अण्डज और आवरण रहित पोत है।

उपपाद जन्म किसके होता है?

देवनारकाणामुपपादः। (34)

उपपाद i.e. birth by instantaneous rise is peculiar to hellish and celerstial beings. देव और नारकियों का उपपाद जन्म होता है।

सम्मूर्च्छन जन्म किसके होता है?

शोषाणां सम्मूर्च्छनम्। (35)

All the rest i.e., except those born by embroyonic birth and instsaneous rise are सम्मूर्च्छन born by spontaneous generation. शेष सब जीवों का सम्मूर्च्छन जन्म होता है। गर्भ जन्म जरायुज, अण्डज और पोत जीवों का ही होता है, अथवा जरायुज, अण्डज और पोत जीवों के गर्भ जन्म ही होता है। देव और नारकियों के उपपाद जन्म ही होता है। सम्मूर्च्छन जन्म शेष जीवों के ही होता है या शेष जीवों के सम्मूर्च्छन जन्म ही होता है।

एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक तिर्यञ्चों का नियम से सम्मूर्च्छन जन्म ही होता है। अन्य जीवों के गर्भ और सम्मूर्च्छन दोनों होता है। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों के भी सम्मूर्च्छन जन्म होता है। चारों तरफ से पुद्गल का इकट्ठा होकर शरीर बनने को सम्मूर्च्छन कहते हैं। सम्मूर्च्छन जन्म अन्यत्र स्थानों में होता है। सम्मूर्च्छन जन्म के सचित्त, अचित्त, मिश्र तीनों तरह की योनियाँ होती हैं। सम्मूर्च्छन जन्म में शीत, उष्ण और मिश्र तीनों योनियाँ होती है। पञ्चेन्द्रिय सम्मूर्च्छन जीवों की विकलत्रयों की तरह विवृत्त योनि ही होती है। पञ्चेन्द्रिय सम्मूर्च्छन तिर्यञ्च कर्मभूमियाँ ही होते हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च गर्भज तथा सम्मूर्च्छन

शीत ऋतु में सेम की लता एवं पत्ते में शाम तक कीड़े नहीं होते हैं परन्तु सुबह होने तक सैकड़ों कीड़े लता एवं पत्ते में हो जाते हैं। यह सब जीव कहाँ से आये? यह सब उसी वातावरण के कारण वहाँ उत्पन्न होते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि उस वातावरण से जीव की उत्पत्ति हुई है परन्तु उस वातावरण में विग्रह गति से अन्य स्थान से आकर जीव जन्म लेते हैं। डार्विन आदि वैज्ञानिक लोग जो रासायनिक प्रक्रिया से जीव की सृष्टि मानते हैं, वह सिद्धान्त शरीर की अपेक्षा एवं जन्म की अपेक्षा आंशिक सत्य होते हुए भी अविद्यमान जीव की उत्पत्ति मानना मिथ्या है। क्योंकि रासायनिक तत्त्व भौतिक है और शरीर भी भौतिक है इसलिये शरीर की संरचना रासायनिक द्रव्य व परिवर्तन से सम्भव है परन्तु जीव (आत्मा) अभौतिक, अमूर्तिक, चैतन्ययुक्त होने के कारण इसकी उत्पत्ति भौतिक द्रव्य से नहीं हो सकती।

अन्यग्रही जीव-देव

दीव्वंति जदो णिच्चं गुणेहिं अट्ठेहिं दिव्वभावेहिं।
भासंत दिव्वकाया, तम्हा ते वण्णिया देवा।। (151)(गो.जी.)(पृ.210-212)

जो दिव्य भाव युक्त आठ गुणों से निरन्तर क्रीड़ा करते हैं और जिनका शरीर प्रकाशमान व दिव्य है, वे देव कहे गये हैं। देवों की संख्या असंख्यात हैं।

विशेषार्थ - जो अणिमा आदि आठ ऋद्धियों की प्राप्ति के बल से क्रीड़ा करते हैं, वे देव हैं। देवों की गति देवगति है। अथवा जो अणिमादि ऋद्धियों से युक्त 'देव' इस प्रकार के शब्द, ज्ञान और व्यवहार में कारणभूत पर्याय का उत्पादक है, ऐसे देवगति नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुई पर्याय को देवगति कहते हैं। यहाँ कार्य में कारण के उपचार से यह लक्षण किया गया है।

जो देव पर्याय के कारण अणिमा आदि आठ गुणों (ऋद्धियों) के द्वारा क्रीड़ा करते हैं, तीनों लोक (उर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक) में परिवार सहित बिना रुकावट के विहार करते हैं, पंचपरमेष्ठी की भक्ति करते हैं, सदा संतोषित के

देवों में दुःख - इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंशदादि महाऋद्धिधारी देवों की विक्रिया आदि ऋद्धियों को तथा सम्पदा (विभूति) को देखकर मानसिक दुःख होता है। इन्द्र सामानिक, त्रायस्त्रिंशत् आदि महाऋद्धि वाले देवों को पाँच इन्द्रियों के विषय सुख की तृष्णा से तथा प्रिय देवाङ्गना आदि के वियोग से दुःख होता है। जिन जीवों का सुख पाँच इन्द्रियों के स्पर्श आदि विषयों के अधीन है, उनकी तृप्ति कैसे हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती। तृप्ति न होने से भोगों की तृष्णा निरन्तर बनी रहती है जिसके कारण वे सदा दुःखी रहते हैं। यद्यपि देवों को शारीरिक दुःख प्रायः नहीं होता है, क्योंकि उनके सुवैक्रियक शरीर है, किन्तु उनको मानसिक दुःख होता है। शारीरिक दुःख से मानसिक दुःख अति प्रचुर होता है। जिसको मानसिक दुःख या चिन्ता होती है, उसको विषय भोग सुखदायक सामग्री भी दुःखदायक लगती है। देवों का सुख देवियों के नवशरीर, विक्रिया आदि मनोहर विषयों के अधीन है, वह विषय जनित सुख भी कालान्तर में द्रव्यान्तर के सम्बन्ध से दुःख का कारण बन जाता है, क्योंकि देवियों की लेश्या, आयु व बल देवों से भिन्न प्रकार का होता है। इसलिये वे देवांगनाएँ कालान्तर में दुःखदायक बन जाती हैं। अन्य सुखदायक इष्ट सामग्री का परिणमन भी इच्छानुसार न होने से वह इष्टसामग्री भी दुःख का कारण हो जाती है।

एवं सुट्ठु असारे संसारे दुक्ख-सायरे घोरे।
किं कत्थवि अत्थि सुहं वियारमाणं सुणिच्छियदो।। (62)

यदि परमार्थ से विचारा जावे तो अत्यन्त साररहित दुःख के सागररूप संसार में किसको कहाँ सुख हो सकता है अर्थात् इस असार संसार में जब देव भी दुःखी हैं तो अन्य किसी को सुख कैसे हो सकता है? तात्पर्य यह है कि सभी प्राणी दुःखी हैं।

देवों के भेद - देव चार निकाय वाले हैं। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक। जिनका स्वभाव भवनों में निवास करना है, वे भवनवासी है। असुर भवनवासी देव हैं। इनकी वेश-भूषा, शस्त्र, यान-वाहन और क्रीड़ा आदि कुमारों के समान हैं इसलिए सब भवनवासियों में कुमार शब्द रूढ़ है। रत्नप्रभा पृथ्वी के पंक बहुलभाग में असुरों के भवन हैं और खरभाग में शेष नौ प्रकार के भवन हैं। जिनका नाना प्रकार के देशों में निवास है, वे व्यन्तर देव हैं। वे आठ प्रकार के हैं- किन्नर, किम्पुरुष महोरग गन्धर्व, यक्ष, राक्षस भूत और पिशाच। रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग में सात प्रकार के व्यन्तरों के तथा पंकबहुल भाग में राक्षसों के आवास हैं। ज्योतिर्मय होने के कारण इनकी ज्योतिषी संज्ञा है। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक-ये पाँच प्रकार ज्योतिषी देवों के हैं।

भूमिभाग से 790 योजन ऊपर जाकर नौ सौ योजन तक ज्योतिष देवों से व्याप्त नभ प्रदेश 110 योजन मोटा और घनोदधि वातवलय पर्यन्त असंख्यात द्वीप-समुद्र तक विस्तृत लम्बाई वाला है। जो विशेषतः अपने में रहने वाले जीवों को पुण्यात्मा मानते हैं, वे विमान हैं और जो उन विमानों में होते हैं, वे वैमानिक हैं। कल्पोपन्न और कल्पातीत के भेद से वे दो प्रकार के हैं। कल्पोपन्न में 16 स्वर्ग है - सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत। इन 16 स्वर्गों में 12 इन्द्र होते हैं क्योंकि मध्य के आठ स्वर्गों में चार इन्द्र होते हैं। इनके ऊपर नौ ग्रेवेयक, नव अनुदिश और विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, सर्वार्थसिद्धि-ये पाँच अनुत्तर विमान हैं। इन सबकी कल्पातीत संज्ञा है क्योंकि इनमें सब अहमिन्द्र होते हैं।

देवगति में एक जीव के रहने का काल जघन्य से 10 हजार वर्ष है, क्योंकि तिर्यंच या मनुष्यों से निकलकर जघन्य आयु वाले देवों में उत्पन्न होकर वहाँ से च्युत होने वाले जीव के 10 हजार वर्ष मात्र काल देवगति में पाया जाता है। अधिक से अधिक तैंतीस सागरोपम काल तक जीव देवगति में रहता है, क्योंकि तैंतीस सागर की देवायु बाँधकर सर्वार्थसिद्धि विमान में उत्पन्न होकर तैंतीस सागरोपम काल तक वहाँ रहकर निकले हुए जीव के उक्त काल पाया जाता है।

देवों की उत्पत्ति, वैभव आदि

सुहसयणग्गे देवा जायंते दिणयरोव्व पुव्वणगे।

अंतोमहुत्त पुण्णा सुगंधिसुहफास सुचि देहा।। (550)(त्रि.सा.471)

जिस प्रकार पूर्वांचल पर सूर्य का उदय होता है, उसी प्रकार देव सुख रूप शय्या पर जन्म लेकर अर्न्तमुहुर्त में छह पर्याप्तियों को पूर्णकर, सुगन्धित, सुख रूप स्पर्श से युक्त एवं पवित्र शरीर को धारण कर लेते हैं।

आणंदतूरजयथुदिरवेण जम्मं बिबुज्झ सं पत्तं।

दट्ठूण सपरिवारं गय जम्मं ओहिणा णव्वा।। (551)

धम्मं पसंसिदूण ण्हादूण दहे भिसेयलंकारं।

लद्धा जिणाभिसेयं पूजं कुव्वंति सद्दिट्ठी।। (552)

सुरबोहियावि मिच्छा पच्छा जिणपूजणं पकुव्वंति।

सुह सायर मज्झगया देवा ण विंदति गयकालं।। (553)

इनके जन्म को जानकर अन्य देव आनंद रूप बाजों के, 'जय-जय' के एवं अनेक स्तुतियों के शब्द करते हैं। उन शब्दों को सुनकर प्राप्त हुए वैभव और अपने परिवार को देखकर तथा अवधिज्ञान से पूर्वजन्म को ज्ञात कर धर्म की प्रशंसा करते हुए सर्व प्रथम सरोवर में स्नान करते हैं फिर अभिषेक और अलंकारों को प्राप्त होकर सम्यग्दृष्टि जीव तो स्वयं जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक पूजन करते हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि देव अन्य देवों द्वारा सम्बोधित किए जाने के पश्चात् जिन पूजन करते हैं। सुखसागर के मध्य डूबे हुए ये सभी देव अपने व्यतीत हुए काल को नहीं जानते।

विविहतवरयणभूसा णाणसुची सीलवत्थसोम्मंगा।

जे तेसिमेव वस्सा सुरलच्छी सिद्धिलच्छी य।। (555)

मोहलक्ष्मी एवं सुरलक्ष्मी उन्हीं जीवों के वश में होती है, जिनके अङ्ग निरन्तर

अन्यग्रही देवों की आयु-आहार-श्वासक्रिया

अन्यग्रही देवों की शरीर की रचना भिन्न होती है तथा आयु दीर्घ होती है। पृथ्वी ग्रह पर जिस प्रकार मनुष्य, पशु-पक्षी, भोजन, पानी, श्वास लेते हैं, वैसे ही ब्रह्माण्ड के हर जीव नहीं लेते हैं। स्वर्ग के देव मानव आदि के जैसे बाहर से भोजन पानी ग्रहण नहीं करते हैं। दीर्घ काल के बाद भूख लगने पर उनके कंठ में अमृत झरता है और वे तृप्त हो जाते हैं। जिनकी आयु जितनी दीर्घ होती है वे उतने ही अधिक अन्तराल में आहार एवं श्वास लेते हैं। कुछ उदाहरण निम्नोक्त हैं-

असुरादिचदुसु सेसे भौम्मे सायर तिपल्लामाउस्सं।

दलहीणकमं जेट्ठ दसवाससहस्समवरं तु।।240।। (त्रिलोकसार पृ.220)

असुरकुमारादि चार कुलों के इन्द्रों की, शेष भवनवासियों की और व्यन्तरदेवों की उत्कृष्टआयु क्रम से एक सागर, तीन पल्य तथा आधा आधा पल्य कम है तथा जघन्यायु दस हजार वर्ष है।

असुरचउक्के सेसे उदही पल्लत्तियं दलूणकमं।

उत्तरइंदाणहियं सरिसं इंदादिपंचण्हं।।241।।

असुरकुमारादि चार की और शेष भवनवासी देवों की आयु ऊपर एक सागर तीन पल्य तथा आधा-आधा पल्य हीन कही है, वह दक्षिणेन्द्रों की है। उत्तरेन्द्रों की आयु उनसे कुछ अधिक होती है तथा इन्द्रादिक पाँचों (इन्द्र, प्रतीन्द्र, लोकपाल, त्रायस्त्रिंशत और सामानिक की आयु सदृश ही होती है।।)

विशेषार्थ :- असुरकुमारादि देवों की उत्कृष्ट आयु :-

1. चमरेन्द्र (दक्षिणेन्द्र) एक सागर की उत्कृष्टायु है।

1. असुरकुमार :-

3. भूतानन्द (दक्षिणेन्द्र) तीन पल्य उत्कृष्टायु है।

2. नागकुमार :-

4. धरणानन्द (उत्तरेन्द्र) तीन पल्य से कुछ अधिक।

5. वेणु (दक्षिणेन्द्र) अढाई पल्य।

3. सुपर्णकुमार :-

6. वेणुधारी (उत्तरेन्द्र) अढाई पल्य से कुछ अधिक।

7. पूर्ण (दक्षिणेन्द्र) दो पल्य

4. दीपकुमार

8. दो पल्य से कुछ अधिक

शेष बारह इन्द्रों में से प्रत्येक दक्षिणेन्द्रों की उत्कृष्ठ आयु (1.5) डेढ़ पल्य तथा प्रत्येक उत्तरेन्द्र की कुछ अधिक डेढ़ पल्योपम प्रमाण है।

इन्द्र, प्रतीन्द्र, लोकपाल, त्रायस्त्रिंश और सामानिक - इन पाँच देवों की आयु सदृश ही होती है। व्यन्तरों की उत्कृष्टायु एक पल्य की तथा उपर्युक्त सभी देवों की जघन्यायु दश हजार वर्ष की होती है।

अड्ठाइज्जतिपल्लं चमरदुगे णगगरुडसेसाणं।

देवीणमड्ढमं पुण पुव्वावस्साण कोडितयं।।243।।

चरमेन्द्र की तीन देवियों की आयु अढ़ाई (2.5 पल्य, वैरोचन इन्द्र की देवियों की तीन पल्य, नागकुमार की देवियों की आयु पल्य के आठवें (1/8) भाग, गरुडेंन्द्र की देवियों की आयु तीन पूर्व कोटि की तथा शेष इन्द्रों की देवाङ्गनाओं की आयु तीन करोड़ (30000000) वर्ष प्रमाण होती है।

असुरे तित्तिसु सासाहारा पक्खं समासहस्सं तु।

समुहुत्तदिणाणद्धं तेरस बारस दलूणड्ढं।।248।।

असुरकुमारों में एवं आगे शेष तीन-तीन कुलों में आहार एवं श्वासोच्छ्वास

विशेषार्थ :- असुरकुमार देव 1000 वर्ष में आहार ग्रहण करते हैं और 1 पक्ष में श्वासोच्छ्वास लेते हैं। नागकुमार, सुपर्णकुमार और द्वीपकुमार 12.5 दिन में आहार ग्रहण करते हैं तथा 12.5 मुहूर्त में उच्छवास लेते हैं। उदधिकुमार, स्तनितकुमार और विद्युतकुमार-12 दिन में आहार ग्रहण करते हैं एवं 12 मुहूर्त में श्वासोच्छ्वास लेते हैं तथा दिक्कुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार देव 7.5 दिन में आहार ग्रहण करते हैं और 7.5 मुहूर्त में श्वासोच्छवास लेते हैं।

जिन व्यन्तरदेवों की आयु पल्य प्रमाण है, वे पाँच दिन के अन्तर से आहार लेते हैं और पाँच मुहूर्त बाद उच्छ्वास लेते हैं तथा जिन व्यन्तरदेवों की आयु मात्र दस हजार वर्ष है, उनका आहार दो दिन बाद और श्वासोच्छ्वास सात पाणापाण (श्वासोच्छ्वास) पश्चात् होता है।

पक्खं वाससहस्सं सगसगसायरसलाहि संगुणियं।

उस्सासाहाराणं कमेण माणं विमाणेसु।।544।।

अपनी-अपनी आयु प्रमाण सागर शलाकाओं से संगुणित पक्ष एवं हजार वर्ष अपने-अपने विमानों में क्रम से उच्छ्वास और आहार का प्रमाण होता है।

विशेषार्थ :- ''सोहम्म वरं पल्लं' गाथा 532 में देवों की जितने-जितने सागर की उत्कृष्टायु का प्रमाण कहा है, उन सागर शलाकाओं में पक्ष अर्थात् 15 दिन का और वर्ष सहस्र हजार वर्ष (1000) का गुणा करने पर अपने-अपने विमानों में उच्छ्वास और आहार का प्रमाण होता है।

स्वर्गों की उत्कृष्टायु श्वासोच्छ्वास और आहार का प्रमाण

क्रमाङ्क	नाम	उत्कृष्टायु	श्वासोच्छ्वास	आहारेच्छा
1.	सौधर्मैशान	2 सागर	2 पक्ष बाद	2000 वर्ष बाद
2.	सानत्कुमार-मा.	7 सागर	7 पक्ष बाद	7000 वर्ष बाद
3.	ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	10 सागर	10 पक्ष बाद	10000 वर्ष बाद
4.	लान्तव-कापिष्ठ	14 सागर	14 पक्ष बाद	14000 वर्ष बाद

7.	आनत-प्राणत	20 सागर	20 पक्ष बाद	20000 वर्ष बाद
8.	आरण-अच्युत	22 सागर	22 पक्ष बाद	22000 वर्ष बाद
9.	सुदर्शन	23 सागर	23 पक्ष बाद	23000 वर्ष बाद
10.	अमोघ	24 सागर	24 पक्ष बाद	24000 वर्ष बाद
11.	सुप्रबुद्ध	25 सागर	25 पक्ष बाद	25000 वर्ष बाद
12.	यशोधर	26 सागर	26 पक्ष बाद	26000 वर्ष बाद
13.	सुभद्र	27 सागर	27 पक्ष बाद	27000 वर्ष बाद
14.	सुविशाल	28 सागर	28 पक्ष बाद	28000 वर्ष बाद
15.	सुमनस	29 सागर	29 पक्ष बाद	29000 वर्ष बाद
16.	सौमनस	30 सागर	30 पक्ष बाद	30000 वर्ष बाद
17.	प्रीतिङ्कर	31 सागर	31 पक्ष बाद	31000 वर्ष बाद
18.	आदित्य	32 सागर	32 पक्ष बाद	32000 वर्ष बाद
19.	अर्चि	32 सागर	32 पक्ष बाद	32000 वर्ष बाद
20.	अर्चिमाली	32 सागर	32 पक्ष बाद	32000 वर्ष बाद
21.	वैरोचन	32 सागर	32 पक्ष बाद	32 वर्ष बाद
22.	प्रभास	32 सागर	32 पक्ष बाद	32 वर्ष बाद
23.	अर्चिप्रभ	32 सागर	32 पक्ष बाद	32 वर्ष बाद
24.	अर्चिमध्य	32 सागर	32 पक्ष बाद	32 वर्ष बाद
25.	अर्चिरावर्त	32 सागर	32 पक्ष बाद	32 वर्ष बाद
26.	अर्चिर्विशिष्ट	32 सागर	32 पक्ष बाद	32 वर्ष बाद
27.	विजय	33 सागर	33 पक्ष बाद	33 वर्ष बाद
28.	वैजयन्त	33 सागर	33 पक्ष बाद	33 वर्ष बाद
29.	जयन्त	33 सागर	33 पक्ष बाद	33 वर्ष बाद
30.	अपराजित	33 सागर	33 पक्ष बाद	33 वर्ष बाद
31.	सर्वार्थसिद्ध	33 सागर	33 पक्ष बाद	33 वर्ष बाद

परम तापमान-ताप शून्यता में स्थित जीव - नारकी

ण रमंति जदो णिच्चं दव्वे खेत्ते य काल भावे य। ति.पण्ण.
अण्णोण्णेहि य णिच्चं तम्हा ते णारिया भणिदा।। (वि.वि. रहस्य)

स्वस्थानवर्ती द्रव्य में, क्षेत्र में, काल में और भाव में जो जीव रमते नहीं हैं, जो परम्परा में भी रमते नहीं हैं अर्थात् प्रीति को प्राप्त नहीं होते हैं, वे नारक या नारकी कहे जाते हैं। जो जीवों को शीत, ऊष्ण वेदनाओं से शब्दाकुलित कर दे, वह नरक है अथवा पापी जीवों को अत्यन्त दुःखों को प्राप्त कराने वाला नरक है। जब नारकी जीव उत्पन्न होते हैं, उस समय उस नवीन नारकी को देखकर, पुराने नारकी उसको धमकाते हुए उसकी ओर ऐसे दौड़ते हैं, जैसे भूख से ग्रस्त व्याघ्र, मृग के बच्चे को देखकर उसके ऊपर झपटता है। जिस प्रकार कुत्ते के झुंड एक दूसरे को दारुण दुःख देते हैं, उसी प्रकार नारकी नित्य ही एक दूसरे को पीड़ा देते हैं। वे नारकी जीव चक्र, बाण, शूल, तूमर, मुद्गर, भाला, तलवारादि शस्त्र, वन एवं पर्वत की आग तथा भेड़िया, व्याघ्र, सिंह, कुत्ता आदि पशुओं के अनुरूप में सदैव अपने-अपने शरीर की विक्रिया करते हैं। स्वयं के शरीर को दूसरों को कष्ट देने के लिए इसी रूप में परिणमन करते हैं। इनकी अपृथक् विक्रिया होने के कारण देवता के समान अन्य शरीर नहीं बना पाते हैं। स्वयं मूल शरीर से ही तलवार, सिंह, अग्नि आदि रूप में परिणमन कर जाते हैं। वज्रमय विकट मुख वाले व्याघ्र एवं सिंहादिक, पीछे भागने वाले अन्य नारकी को कहीं भी क्रोध से खा डालते हैं, कहीं पर हजार कोल्हू यंत्रों से नारकियों को पेला (पेरा) जाता है, कहीं पर टुकड़े-टुकड़े किये जाते हैं, कहीं पर उत्तप्त तैल की कड़ाही में भूने जाते हैं, कहीं पर अग्नि में जलाये जाते हैं, कहीं पर करोंत से काटे जाते हैं, कहीं पर भालों से भेदे जाते हैं। जो जीव अग्नि से भयभीत होकर शीतलता की इच्छा से वेतरणी नदी में प्रवेश करते हैं, वे वहाँ पर भयंकर

करते हैं। किन्तु वहाँ पर भी सहस्र ज्वालाओं वाली महान् अग्नि द्वारा उनका शरीर जल उठता है। उस ज्वाला को शांत करने के लिये शीतल छाया जानकर वे असिपत्र-वन में प्रवेश करते हैं, वहाँ पर विचित्र प्रकार के गुच्छे, पत्र एवं फलों के पुञ्ज, पवन से ताड़ित होकर उन नारकियों के ऊपर, अदर्शनीय वज्र-दण्ड के समान गिरते हैं। इतना ही नहीं, उस वन में चक्र बाण, कनक, तोमर, मुद्गर, तलवार, मूसल आदि अनेक तीक्ष्ण अस्त्र उनके ऊपर गिरते हैं। वहाँ से भयभीत होकर वे नारकी जब आत्म रक्षा के लिये बाहर निकलते हैं, तब बाहर में गिद्ध, गरुड, काकादि वज्रमुख वाले तथा तीक्ष्ण दाँतों वाले पक्षी उनके शरीर को नोंच-नोंच कर खाते हैं। अन्य नारकी उन नारकियों के अंग-उपांग की हड्डियों को प्रचण्ड घात से चूर्ण करके उत्पन्न हुए विस्तृत घावों में, क्षार पदार्थ को डालकर उसकी ज्वाला में और अधिक वृद्धि करते हैं। वे नारकी करुणापूर्ण विलाप करते हैं और चरण युगल में लगते हैं, रक्षा करने के लिये प्रार्थना करते हैं, तथापि अन्य नारकी उस प्रकार खिन्न अवस्था में ही उन्हें खण्ड-खण्ड करके उत्तप्त ज्वालावाले भयंकर चूल्हे में डालते हैं। जो पूर्व भव में स्त्री में आसक्त थे, उन नारकियों को अन्य नारकी अतिशय तपी हुई लौहमयस्त्री से दृढ़ता से संयोग कराते हैं। उस समय वे नारकी कहते हैं कि तुम्हें स्त्री बहुत अच्छी लगती है, इसलिये पर स्त्री का अच्छी तरह भोग करो। यदि वे वहाँ से भय एवं पीड़ा से दूर भागते हैं तो अन्य नारकी उसको उस लौहमय स्त्री के साथ जबरदस्ती संयोग कराते हैं एवं उसको धधकती हुई अग्नि में फेंकते हैं। जो पूर्व-भव में मांस भक्षी थे, उनके शरीर के मांस को काटकर अन्य नारकी रक्त रंजित मांस पिण्ड को उनके मुख में डालते हैं और कहते हैं कि तुमको मांस बहुत प्रिय है, इसलिये इसे खाओ। मधु और मद्य का सेवन करने वाले प्राणियों के मुख में अत्यन्त तपे हुए द्रवित लौह डालते हैं जिससे उनके अवयव समूह भी पिघल जाते हैं। इसी प्रकार जिसने पूर्व भव में जिस प्रकार पाप किये थे, उसके अनुरूप ही उसे वहाँ फल भी प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार तलवार के प्रहार से भिन्न हुए कुएँ का जल फिर से मिल जाता है, तिल भोगने के लिए बाध्य करता है। वहाँ पर उनके द्वारा पूर्वोपार्जित पाप कर्म उन पर किसी प्रकार की दया नहीं करता है। प्रथम नरक से लेकर तीसरे नरक तक के जीव केवल परस्पर ही नहीं, बल्कि असुर कुमार देवों द्वारा प्रेरित होकर भी लड़ते हैं।

वहाँ पर मात्र परस्पर लड़ने से ही दुःख उत्पन्न नहीं होता है किन्तु क्षेत्रजन्य दुःख भी प्राप्त होता है। वहाँ पर केवल भूमि के स्पर्श से सहस्राधिक बिच्छू के डसने से भी अधिक दुःख है। उष्ण स्पर्श वाली पृथ्वी में सुमेरु के समान लोह पिण्ड डालने पर एक क्षण में पिघल जाता है एवं शीत स्पर्शवाली पृथ्वी में डालने पर एक क्षण में शीत के कारण खण्ड-खण्ड हो जाता है। इस प्रकार नरकों में शीतोष्ण दुःख ही ऊहातीत है। उष्णजन्य दुःखों के वर्णन के लिए आचार्यों ने एक उदाहरण दिया है-

''एक तृषित पथिक अति उष्ण वैशाख मास के दोपहर में मरुभूमि में गमन करता है। ऊपर तीक्ष्ण सूर्य किरणें तथा नीचे उतप्त बालू है। वहाँ की वायु भी अति उष्ण है। विश्राम के लिए कहीं भी वृक्ष की छाया नहीं है। वह व्यक्ति क्लान्त-श्रान्त से एक स्थान पर बैठा है, जहाँ चारों दिशा में प्रचण्ड अग्नि जल रही है। वहाँ पर विलाप करने पर भी उसका विलाप कोई नहीं सुनता है।'' इस प्रकार जो व्यक्ति दुःखी है, उससे अनन्त गुणा दुःख नारकियों को है। यदि किसी नारकी को इस व्यक्ति के स्थान पर रखा जाये तो उसको इतनी सुख, शान्ति एवं आराम प्राप्त होगा कि उसकी दशा क्षण में ही गाढी निद्रा आ जाएगी। इससे पाठक नरक के दुःख के बारे में सहज अनुमान लगा सकते हैं।

वहाँ असहाय वेदना के तीव्र उदय से इतनी क्षुधा होती है कि जिस की शान्ति तीन लोकों के खाद्य पदार्थ से भी नहीं हो सकती है। पापात्मा नारकी जीव जब आहार का अन्वेषण करता है, तो उसे आहार का एक दाना भी नहीं मिलता है। तीव्र भूख की वेदना से इतना दुःख होता कि वहाँ के स्थित अत्यन्त तीखी, कड़वी, दुर्गन्ध एवं विषाक्त थोड़ी सी मिट्टी को चिरकाल में अत्यन्त कष्ट से खाने लगता है। नरक में बकरी, हाथी, भैंस, घोड़ा, गधा, ऊँट, बिल्ली और मेढ़े

एवं तीखी है कि अत्यन्त तीखे एक कचरे से अनन्त गुणी तीखी एवं कड़वी है, जो कि रत्नप्रभा से लेकर अन्तिम पृथ्वी पर्यन्त सडी, अशुभ, ग्लानिकर असंख्यात-असंख्यात गुणी होती है। धर्मा पृथ्वी में जो आहार है उसकी गंध से यहाँ पर एक कोश के भीतर स्थित जीव मर सकते हैं। इसके आगे शेष द्वितीयादि पृथ्वियों में इसकी घातक शक्ति आधा कोश और भी बढ़ती जाएगी। जैसे धर्मा में एक कोश, वंशा में डेढ़ कोश, मेघा में दो कोश, अञ्जना में ढ़ाई कोश, अरिष्टा में तीन कोश, मघवा में साड़े तीन कोश एवं माघवी में चार कोश परिमाण है। वहाँ इतनी प्यास लगती है कि सागरों का जल पीने पर भी उसकी प्यास शान्त नहीं हो सकती है, किन्तु वहाँ पर एक बिन्दु भी जल प्राप्त नहीं होता है। जल के परिवर्तन में उन्हें उबला हुआ कांसे का अथवा लोहे का द्रव मिलता है, जिसको पीकर उसका मुख जल जाता है एवं शरीर विदीर्ण हो जाता है। वहाँ पर केवल इतना ही दुःख नहीं है। उन नारकिओं के उदर, नेत्र, मस्तक, भंगदर, गालित कुष्ट, राजयक्ष्मा आदि रोगों से भी, अत्यंत तीव्र वेदना उत्पन्न होती है। इस प्रकार नारकी भव स्थिति के चरम समय पर्यंत यथावसर क्षेत्र जनित, मानसिक, शारीरिक और असुरकुमार कृत दुःख भोगते हैं, किन्तु इतना विशेष है कि जब तीर्थंकर का जन्म होता है उस समय क्षण मात्र के लिए शान्ति मिलती है। यह तीर्थंकर के पुण्यातिशय पुण्य के कारण है। तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले नारकी की आयु 6 मास शेष रहने पर देव उनका उपसर्ग दूर कर देते हैं। यह भावी तीर्थंकरों के पुण्य के कारण होता है। इसी प्रकार तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले देवों की छह मास आयु शेष रहने पर माला नहीं मुरझाती है। अपनी अनपवर्त्यायु के पूर्ण होते ही नारकियों का सम्पूर्ण शरीर उसी प्रकार विलय को प्राप्त हो जाता है, जिस प्रकार पवन से ताड़ित मेघ विलय को प्राप्त हो जाता है,

नारकियों का शरीर वैक्रियक होने पर भी जिस प्रकार के श्लेष्म, मूत्र, पुरीष, मल, रुधिर, वसा, मेद, पीव, वमन, पूती, मांस, केश, अस्थि, चर्म और अति अशुभ सामग्री युक्त वैक्रियक शरीर होता है। किन्तु इनकी मूंछ, दाढ़ी नहीं होती है। नरक में नारकी जीव मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यक दृष्टि, सम्यक मिथ्यादृष्टि

अध्याय - III

अनन्त सुख सम्पन्न अभौतिक शुद्धजीव

दृश्य या अदृश्य, सूक्ष्म से स्थूल (निगोदिया, बैक्टीरिया, वायरस से लेकर मनुष्य, हाथी, व्हेल, डायनासोर) जीव जो सामान्य लोगों से लेकर आधुनिक वैज्ञानिक जानते हैं, मानते हैं, कल्पना करते हैं, उससे भी परे हैं शुद्ध जीव। शुद्ध जीव शरीर, इन्द्रियाँ, मस्तिष्क, सेल्स, जिनोम (DNA, RNA) से रहित पूर्णतः परमशुद्ध, अभौतिक (अमूर्तिक) अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्तवीर्य, ऊर्ध्वगति आदि अनन्त गुण सम्पन्न होते हैं। जब अशुद्ध संसारी जीव स्वकर्म एवं पुरुषार्थ से क्रम विकास करता हुआ श्रेष्ठ मानव अवस्था को प्राप्त करके आध्यात्मिक साधना से आन्तरिक-आध्यात्मिक क्रम विकास करता हुआ समस्त भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म (अशुद्धभाव-भौतिक कर्म-शरीर) से मुक्त होता है तब वह शुद्ध जीव हो जाता है। तब वह संसार के समस्त बन्धन एवं भौतिक नियम से परे हो जाता है। अनन्त शक्ति (प्रतिबन्ध, बाधा) से अप्रभावी होकर एक समय में 14 राजू गति से (संभवतः प्रायः-असंख्यात प्रकाश वर्ष) लोकाग्र (विश्व के अन्त में तथा प्रतिविश्व के प्रारम्भ के पहले) में जाकर अनन्त भविष्य काल स्थिर रहकर स्व-अनन्तसुखादि का अनुभव करते हैं। यथा-

अविग्रहा जीवस्य। (27)

The soul in its pure condition i.e. the liberated soul has (a straight upward) vertical movement. The movement is called (अविग्रह) because it is quite direct and upward, vertical and there is no turning in it.

मुक्त जीव की गति विग्रह रहित होती है।

जीव की स्वाभाविक गति का प्रतिपादन करते हुए आचार्य नेमिचन्द्र जी सिद्धान्त चक्रवर्ती ने द्रव्यों के विभिन्न पहलुओं का संक्षिप्त एवं सारगर्भित प्रतिपादक ''द्रव्यसंग्रह'' शास्त्र में उल्लेख करते हैं कि ''विस्ससोड्ढगइ'' अर्थात्

ऊर्ध्वगौरवधर्माणो जीवो जीवा इति जिनोत्तमैः।

अधोगौरवधर्माणः पुद्गला इति चोदितम्।। (32) पृ. 199

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी जिनेन्द्र भगवान् ने जीव को ऊर्ध्व गौरव (ऊर्ध्वगुरुत्व) धर्म वाला बताया है और पुद्गल को अधोगौरव (अधोगुरुत्व) धर्म वाला प्रतिपादित किया है।

पयदिट्ठिदि अणुभागप्पदेस बंधेहिं सव्वदो मुक्को।

उड्ढं गच्छादि सेसा विदिसा वज्जं गदिं जंति।।

प्रकृति बन्ध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बन्ध, प्रदेश बन्ध से सम्पूर्ण रूप से मुक्त होने के बाद परिशुद्ध स्वतन्त्र शुद्धात्मा तिर्यक् आदि गतियों को छोड़कर ऊर्ध्वगमन करता है।

जाइजरामरण भया, संजोगविजोग दुक्खसण्णाओ।

रोगादिगा य जिस्से ण संति सा होदि सिद्धगई।। (152) गो. जीव पृ. 212

जहाँ जन्म, जरा, मरण, भय, संयोग, वियोग, दुःख, संज्ञा और रोगादिक नहीं होते वह सिद्ध गति है।

कर्म के वश से भव-भव में अपने शरीर पर्याय की उत्पत्ति होना जन्म है। इस प्रकार उत्पन्न हुई शरीर-पर्याय का वयरूप हानि के द्वारा शीर्ण होना वृद्धता है। अपनी आयु का क्षय हो जाने के कारण इस शरीर पर्याय का व प्राणों का त्याग सो मरण है। अनर्थ की आशंका के कारण अपकारक पदार्थों से भाग जाने की इच्छा सो भय है। क्लेश के कारणभूत अनिष्ट द्रव्यों का संगम सो संयोग है। सुख के कारणभूत इष्ट द्रव्यों का नाश सो वियोग है। इनसे उत्पन्न हुआ आत्मा का निग्रह सो दुःख है। शेष तीन आहार, मैथुन व परिग्रह की वांछा सो संज्ञा है। रोग, मानभंग, वध, बन्धन आदि की वेदना जिस गति में नहीं हैं और न उत्पन्न होती है, वह सिद्धगति है। क्योंकि इनकी उत्पत्ति के कारणभूत कर्मों का क्षय हो गया है। अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख वीर्यादि अपने स्व-गुणों की उपलब्धि रत्नत्रय से परिणत होकर शुक्लध्यान विशेष से उत्पन्न हुए संवर निर्जरा के द्वारा समस्त कर्मों का क्षय करके अपनी मुक्तावस्था प्राप्त कर ली है और स्वाभाविक ऊर्ध्वगमन के द्वारा लोक का अग्रभाग प्राप्त कर लिया है, ऐसी सिद्ध परमेष्ठी पर्यायरूप सिद्धगति होती है।

आत्मस्वरूप की प्राप्ति अर्थात् अपने सम्पूर्ण गुणों से आत्मस्वरूप में स्थित होना सिद्धि है। ऐसे सिद्धि स्वरूप की गति सिद्धगति है। सिद्ध, निष्ठित, निष्पन्न, कृतकृत्य और सिद्धसाध्य ये एकार्थवाची नाम है। जिन्होंने समस्त कर्मों का निराकरण कर दिया है, बाह्य पदार्थों की अपेक्षा रहित-अनन्त अनुपम-स्वाभाविक और प्रतिपक्ष रहित ऐसे सुख को जिन्होंने प्राप्त कर लिया है, जो निर्लेप हैं, अचल स्वरूप को प्राप्त हैं, सम्पूर्ण अवगुणों से रहित हैं एवं सर्व गुणों से सहित है उन्हें सिद्ध कहते हैं जो कि जीव की शुद्ध अवस्था है।

शुद्ध जीवों के क्षेत्र-अष्टम भूमि

तिहुवणमुद्धारूढा ईसिपभारा धरट्ठमी रुंदा।

विग्घा इगिसगरज्जू अडजोयणपमिदबाहल्ला।। (556) त्रिलोकसार

तीन लोक के मस्तक पर आरूढ ईषत्प्राग्भार नाम वाली आठवीं पृथ्वी है, इसकी चौडाई और लम्बाई क्रम से एक एवं सात राजू तथा बाहुल्य आठ योजन प्रमाण है। सर्वार्थसिद्धि इन्द्रक विमान के धवजादण्ड से बारह योजन ऊपर जाकर अर्थात् तीन लोक के मस्तक पर आरूढ ईषत्प्राग्भार संज्ञावाली अष्टम पृथ्वी है। इसकी चौड़ाई एक राजू, लम्बाई (उत्तर-दक्षिण) सात राजू एवं मोटाई आठ योजन प्रमाण है।

-सिद्धक्षेत्र का स्वरुप-

तम्मज्झे रूप्पमयं छत्तायारं मणुस्समहिवासं।

सिद्धक्खेत्तं मज्झडवेहं कमहीण बेहुलियं।। (557)

इस आठवीं पृथ्वी के ठीक मध्य में रजतमय छत्राकार और मनुष्य क्षेत्र के व्यास प्रमाण सिद्ध क्षेत्र है। जिसकी मध्य की मोटाई आठ योजन है और अन्यत्र क्रम-क्रम से हीन होती हुई अन्त में ऊँचे (सीधे) रखे हुए कटोरे के सदृश थोडी (मोटाई) रह गई है। इस सिद्ध क्षेत्र के ऊपरवर्ती तनुवातवलय में सम्यक्त्वादि आठ गुणों से युक्त और अनन्त सुख से तृप्त सिद्ध परमेष्ठी स्थित हैं।

जिस प्रकार पृथ्वी पर शिला होती हैं, उसी प्रकार आठवीं पृथ्वी के ठीक मध्य भाग में चाँदी सदृश (श्वेत) वर्ण वाली छात्राकार शिला है। इसी को सिद्ध क्षेत्र कहते हैं। इस सिद्ध क्षेत्र का व्यास मनुष्य क्षेत्र सदृश अर्थात् 4500000 योजन (18000000000 मील) प्रमाण है। उसका बाहुल्य मध्य में अष्ट योजन (32000 मील) है, अन्यत्र सर्वत्र क्रम-क्रम हीन होता हुआ अन्त में बिल्कुल कम (एक प्रदेश प्रमाण) रह गया है। यह सीधे रखे हुए कटोरे या धवल छत्र के आकार वाला है। इस सिद्धक्षेत्र के उपरिम तनुवातवलय में सम्यक्त्वादि आठ गुणों से युक्त एवं अनन्त सुख से प्राप्त सिद्ध भगवान स्थित हैं। वह सिद्ध लोक है।

-अनन्त सुख सम्पन्न शुद्ध जीव-

एयं सत्यं सव्वं सत्यं वा सम्ममेत्थ जाणंता।
तिव्वं तुस्संति णरा किण्ण समसत्थतच्चण्हा।। (559)

जब एक शास्त्र या सर्व शास्त्रों को भली प्रकार जान लेने वाले मनुष्य तीव्र सन्तोष को प्राप्त होते हैं, तब समस्त अर्थ एवं तत्त्वों को जानने वाले सिद्ध प्रभु क्या तृप्ति को प्राप्त नहीं होंगे ! अपितु होंगे ही होंगे।

जबकि एक शास्त्र या सर्व शास्त्रों को भली प्रकार जान लेने वाले मनुष्य अत्यन्त सन्तोष को प्राप्त होते हैं, तब साक्षात् समस्त अर्थ एवं तत्त्वों को एक साथ और निरन्तर जानने वाले सिद्ध परमेष्ठी क्या सन्तोष को प्राप्त नहीं होंगे! अवश्य ही होंगे।

-उत्तरोत्तर सुखी जीव-

चक्रवर्ती, भोगभूमि, धरणेन्द्र, देवेन्द्र और अहमिन्द्रों का सुख क्रमशः एक दूसरे से अनन्तगुणा है। इन सबके त्रिकालवर्ती सुखों से सिद्धों का एक क्षण का भी सुख अनन्तगुणा है।

संसार में चक्रवर्ती के सुख से भोगभूमि स्थित जीवों का सुख अनन्तगुणा है। इससे धरणेन्द्र का सुख अनन्तगुणा है। धरणेन्द्र से देवेन्द्र का सुख अनन्तगुणा है, और देवेन्द्र से अहमिन्द्रों का सुख अनन्तगुणा है। इन सब के त्रिकालवर्ती सुख से भी सिद्धों का एक क्षण का सुख अनन्तगुणा है। अर्थात् उनके सुख की तुलना नहीं है।

उपर्युक्त उपदेश मात्र कथन स्वरूप है, कारण कि सिद्ध परमेष्ठी का सुख अतीन्द्रिय, स्वाधीन और निराकुल (अव्याबाध) है तथा संसारी जीवों का सुख इन्द्रियजनित, पराधीन और आकुलतामय है, अतः तीनों लोकों में कोई भी उपमा ऐसी नहीं है जिसके सदृश सिद्ध जीवों का सुख कहा जा सके। उनका सुख वचनागोचर है। जिस प्रकार पित्त विकार से युक्त जिह्वा मधुर स्वाद लेने में असमर्थ होती है उसी प्रकार विकारी छद्मस्थ आत्माएँ सिद्ध भगवन्त के सुख का रसास्वादन लेने और कहने में असमर्थ हैं।

अट्ठविहकम्म वियला, सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा, लोयग्गणिवासिणो सिद्धा।।

जो ज्ञानावरणादि अष्टकर्मों से रहित है, अनन्त सुख रूपी अमृत के अनुभव करने वाले शान्तिमय है, नवीन कर्मबन्ध के कारणभूत मिथ्यादर्शनादि भावकर्म रूपी अञ्जन से रहित है, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, अव्याबाध, अवगाहन, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघु ये आठ मुख्य गुण जिनके प्रगट हो चुके हैं, कृतकृत्य हैं- जिनको कोई कार्य करना बाकी न रहा है, लोक के अग्रभाग में निवास करने वाले हैं, उनको सिद्ध कहते हैं।

वे सिद्ध भगवान् ज्ञानावरण कर्म के क्षय होने से केवलज्ञान से सुशोभित रहते

से अविनाशी सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं, आयुकर्म का विच्छेद होने से अवगाहना को प्राप्त होते हैं, नाम कर्म का उच्छेद होने से सूक्ष्मत्वगुण को प्राप्त होते हैं, गोत्र कर्म का नाशहोने से सदा अगुरुलघुगुण से सहित होते हैं और अन्तराय का नाश होने से अनन्त वीर्य को प्राप्त होते हैं।

संसारविषयातीतं सिद्धानामव्ययं सुखम्।

अव्याबाधमिति प्रोक्तं परमं परमर्षिभिः।।(45) तत्त्वार्थसार

सिद्धों का सुख संसार के विषयों से अतीत, अविनाशी, अव्याबाध तथा परमोत्कृष्ट है ऐसा परमऋषियों ने कहा है। शरीर रहित सिद्धों के सुख किस प्रकार हो सकता है?

यदि कोई यह प्रश्न करे कि शरीर रहित और अष्ट कर्मों को नष्ट करने वाले मुक्त जीव के सुख कैसे हो सकता है तो उसका उत्तर यह है सुनो। इस लोक में विषय, वेदना का अभाव, विपाक और मोक्ष इन चार अर्थों में सुख शब्द कहा जाता है। अग्नि सुख रूप है, वायु सुख रूप है, यहाँ विषय अर्थ में सुख शब्द कहा जाता है। दुःख का अभाव होने पर पुरुष कहता है कि मैं सुखी हूँ यहाँ वेदना के अभाव में सुख शब्द प्रयुक्त हुआ है। पुण्यकर्म के उदय से इन्द्रियों के इष्ट पदार्थों से उत्पन्न हुआ सुख होता है। यहाँ विपाक-कर्मोदय में सुखशब्द का प्रयोग है और कर्मजन्य क्लेश से छुटकारा मिलने से मोक्ष में उत्कृष्ट सुख होता है। यहाँ मोक्ष अर्थ में सुख का प्रयोग है।

मुक्त जीवों का सुख सुषुप्त अवस्था के समान नहीं है।

कोई कहता है कि निर्वाण सुषुप्त अवस्था के तुल्य है परन्तु उनका वैसा कहना अयुक्त है - ठीक नहीं है क्योंकि मुक्त जीव क्रियावान् है जबकि सुषुप्तावस्था में कोई क्रिया नहीं होती तथा मुक्त जीव के सुख की अधिकता है जबकि सुषुप्त अवस्था में सुख का रञ्चमात्र भी अनुभव नहीं होता। सुषुप्तावस्था की उत्पत्ति श्रम, खेद, नशा, बीमारी और काम सेवन से होती है तथा उसमें दर्शनमोहनीय

समस्त संसार में उसके समान अन्य पदार्थ नहीं है जिससे कि मुक्तजीवों के सुख की उपमा दी जा सके, इसलिए वह निरुपम माना गया है। लिङ्ग अर्थात् हेतु से अनुमान में और प्रसिद्धि से उपमान में प्रामाणिकता आती है परन्तु मुक्तजीवों का सुख अलिङ्ग है-हेतु रहित है तथा अप्रसिद्ध है इसलिए वह अनुमान और उपमान प्रमाण का विषय न होकर अनुपम माना गया है।

अर्हन्त भगवान् की आज्ञा से मुक्तिजीवों का सुख माना जाता है।

प्रत्यक्ष तद्भगवतामर्हतां तैः प्रभाषितम्।

गृह्यतेऽस्तीत्यतः प्राज्ञैर्न न छद्मस्थपरीक्षया।। (54)

मुक्त जीवों का वह सुख अर्हन्त भगवान् के प्रत्यक्ष है तथा उन्हीं के द्वारा उसका कथन किया गया है इसलिये 'वह है' इस तरह विद्वज्जनों के द्वारा स्वीकार किया जाता है, अज्ञानी जीवों की परीक्षा से वह स्वीकृत नहीं किया जाता है।

(स्वतंत्रता के सूत्र पृ. 636-640)

- कटु वचन कहने से अच्छा है कि खामोश रहा जाये।
  —अज्ञात
- कड़वी बात भी हँसकर कही जाये तो मीठी हो जाती है।
  —प्रेमचंद
- मनुष्यों के पास धन—दौलत के अंबार हो सकते है लेकिन बुद्धिमान मनुष्य की वाणी तो अनमोल होती है।
  —बाइबिल
- मनुष्य की वाणी से उसके गुण और अवगुण जाने जा सकते है।

अध्याय - IV

ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण जीवों के 6 प्रकार के आहार तथा शरीर-आहार रहित जीव

दृश्यमान परिचित पृथ्वी के वनस्पति से लेकर मनुष्य-पशु-पक्षी के जैसे भोजन है वैसा ही भोजन ब्रह्माण्ड के हर प्रकार के जीवों के नहीं होते हैं। विभिन्न कर्म, शरीर, क्षेत्र, काल, भावादि के कारण उनके भोजन भी विभिन्न होते हैं। सम्पूर्ण कर्म तथा शरीर से रहित शुद्ध जीव तो किसी भी प्रकार के आहार के बिना अक्षय अनन्त काल तक अनन्तज्ञान-सुख-वीर्य आदि अनन्त गुणों के स्वामी होकर जन्म-मरण से रहित होकर शाश्वतिक अमृत स्वरूप रहते हैं। जीवनमुक्त सशरीरी सर्वज्ञ महामानव सामान्य मानव के जैसे भोजन नहीं करते हैं तथापि वे अनेकों वर्ष तक सशरीरी रहते हैं। यथा-

सोक्खं वा पुण दुक्खं केवलणाणिस्स णत्थि देहगदं।

जम्हा अदिंदियत्तं जादं तम्हा दु तं णेयं।। (20)

(सत्यसाम्यसुखामृतम् पृष्ठ-52)

अतीन्द्रियपना होने से ही केवलज्ञानी के शरीर के आधार से उत्पन्न होने वाला भोजनादि का सुख तथा क्षुधा आदि का दुःख नहीं होता है। (पुण) तथा (केवलणाणिस्स) केवलज्ञानी के (देहगदं) देह से होने वाला अर्थात् शरीर के आधार में रहने वाली जिह्वा इन्द्रिय आदि के द्वारा पैदा होने वाला (सोक्खं) सुख (वा दुक्खं) और दुःख अर्थात् असातावेदनीय आदि के उदय से पैदा होने वाला क्षुधा आदि का दुःख (णात्थि) नहीं होता है। (जम्हा) क्योंकि (आदिदियत्तं) अतीन्द्रियपना अर्थात् मोहनीय आदि घातिया कर्मों के अभाव होने पर पाँचों इन्द्रियों के विषय सुख के लिये व्यापार का अभावपना ऐसा अतीन्द्रियपना (जादं) प्रगट हो गया है (तम्हा) इसलिए (तं दु) वह अर्थात् अइन्द्रियपना होने

भाव यह है कि जैसे लोहे के पिंड की संगति को न पाकर अग्नि हथोड़े की चोट नहीं सह सकती है तैसे यह आत्मा भी लोहपिंड के समान इन्द्रियग्रामों का अभाव होने से अर्थात् इन्द्रियजनित ज्ञान के बन्द होने से सांसारिक सुख तथा दुःख का अनुभव नहीं करता है।

यहाँ किसी ने कहा है कि केवलज्ञानी के भोजन है क्योंकि औदारिक शरीर की सत्ता है तथा असाता वेदनीय कर्म के उदय का सद्भाव है, जैसे हम लोगों के भोजन होता है। इसका खंडन करते हैं कि श्री केवली भगवान् के औदारिक शरीर नहीं है किन्तु परम औदारिक शरीर है, जैसे कि कहा है-

अर्थात् दोषरहित केवलज्ञानी के शुद्ध स्फटिक मणि के समान परमतेजस्वी तथा सात धातु से रहित शरीर होता है। और जो यह कहा है कि असातावेदनीय के उदय के सद्भाव से केवली के भूख लगती है और वे भोजन करते हैं सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि धान्य जौ आदि धान्य का बीज, जलादि सहकारी कारण सहित होने पर ही अंकुर आदि कार्य को उत्पन्न करता है तैसे ही असाता वेदनीय कर्म मोहनीय कर्मरूप सहकारी कारण के साथ ही क्षुधा आदि कार्य को उत्पन्न करता है, क्योंकि कहा है ''मोहस्स बलेण घाददे जीव'' वेदनीय कर्म मोह के बल को पाकर जीव को घात करता है। यदि मोहनीय कर्म के अभाव होने पर भी असातवेदनीय कर्म क्षुधा आदि परिषह को उत्पन्न कर दे तो वध, रोग आदि परिषह भी उत्पन्न हो जावे सो ऐसा होता नहीं है क्योंकि कहा है ''भुक्त्युपसर्गाभावात्'' केवली के भोजन व उपसर्ग नहीं होते और भी दोष यह आता है कि यह केवली को क्षुधा की बाधा है, तब क्षुधा के कारण शक्तिक्षीण होने से अनन्तवीर्य नहीं बनेगा। तैसे ही क्षुधा द्वारा जो दुःखी होगा उसके अनन्त सुख भी नहीं हो सकेगा। तथा रसना इन्द्रिय द्वारा ज्ञान में परिणमन करते हुए मतिज्ञानी के केवलज्ञान का होना भी सम्भव न होगा अथवा और भी हेतु है। असातावेदनीय के उदय की अपेक्षा केवली के सातावेदनीय का उदय अनन्तगुणा

होता। तैसे ही और भी बाधक हेतु हैं। जैसे प्रमत्तसंयमी आदि साधुओं के वेद का उदय रहते हुए भी मन्दमोह के उदय से स्त्री-सेवन सम्बन्धी बाधा नहीं होती है तथा नव-ग्रैवेयक आदि के अहमिन्द्रों के वेद का उदय होते हुए भी मन्दमोह के उदय से स्त्री-सेवन सम्बन्धी बाधा नहीं होती है, तैसे ही श्री केवली अरहंत के असातावेदनीय का उदय होते हुए भी सम्पूर्ण स्नेह का अभाव होने से क्षुधा की बाधा नहीं हो सकती है। यदि ऐसा आप कहे कि मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगकेवली पर्यन्त तेरहगुणस्थानवर्ती जीव आहारक होते हैं, ऐसा आहार-मार्गणा के सम्बन्ध में आगम में कहा हुआ है, इस कारण से केवलियों के आहार है, ऐसा मानना चाहिये। सो ठीक नहीं है क्योंकि निम्न गाथा के अनुसार आहार छः प्रकार का होता है।

6 प्रकार के आहार

णोकम्मकम्माहारो कवलाहारो य लेप्पमाहारो।
ओजमणो वि य कमसो आहारो छव्विहो णेयो।।

भाव यह है कि आहार छः प्रकार का होता है। जैसे - (1) नोकर्म का आहार, (2) कर्मों का आहार (3) ग्रासरूप आहार। आहार उन परमाणुओं के ग्रहण को कहते हैं जिनसे शरीर की स्थिति रहे।

(1) आहारक वर्गणा का शरीर में प्रवेश सो (1) नोकर्म का आहार है। जिन परमाणुओं के समूह से देवों का, नारकियों का, मनुष्य या तिर्यंचों का वैक्रियक, औदारिक शरीर और मुनियों का आहारक शरीर बनता है उसको आहारक वर्गणा कहते हैं। (2) कार्माण वर्गणा के ग्रहण को कर्म-आहार कहते हैं इन्हीं वर्गणाओं से कर्मों का सूक्ष्म शरीर बनता है। (3) अन्न पानी आदि पदार्थों को मुख द्वारा चबाकर व मुँह चलाकर खाना पीना सो कवलाहार है। यह साधारण मनुष्यों के व द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के पशुओं के होता हैं। स्पर्श से शरीर पुष्टिकारक पदार्थों का ग्रहण करना सो (4) लेप आहार है। यह पृथ्वी, जल

है। भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषि तथा कल्पवासी इन चार प्रकार के देवों के (6) मानसिक आहार होता है। इनके वैक्रियक दिव्य शरीर होता है जिसमें हाड़, मांस रुधिर नहीं होता है इसलिए इनके कवलाहार नहीं है, यह मांस व अन्न नहीं खाते हैं। देवों के जब कभी भूख की बाधा होती है तो उनके कंठ में से ही अमृतरस झर जाता है इससे ही उनकी भूख की बाधा ही मिट जाती है। नारकियों के कर्मों का भोगना यही आहार है तथा वे नरक की पृथ्वी की मिट्टी खाते हैं परन्तु उनसे उनकी भूख नहीं मिटती है। इन छः प्रकार के आहारों में से ही केवली अरहंत भगवान् के मात्र नोकर्म का आहार है। इस ही अपेक्षा से केवली अरहंतों के आहारकपना जानना चाहिए, कवलाहार की अपेक्षा से नहीं। सूक्ष्म इन्द्रियों के अगोचर रसवाले सुगन्धित अन्य मनुष्यों के लिए असंभव, कवलाहार के बिना भी कुछ कम कोटि पूर्व तक शरीर की स्थिति के कारण, सात धातुओं से रहित परमौदारिक शरीर रुप नोकर्म के आहार के योग्य आहारक वर्गणाओं के पुद्गल लाभान्तराय कर्म के पूर्ण क्षय हो जाने से केवली भगवान् के शरीर में योग शक्ति के आकर्षण से प्रति समय आते हैं यही केवली के आहार हैं। यह बात नव केवललब्धि व्याख्या के अवसर पर कही गई है। इसलिए यह जाना जाता है कि केवली अरहंतों के नोकर्म के आहार की अपेक्षा से ही आहारकपना है। यदि आप कहो कि आहारकपना नोकर्म के आहार की अपेक्षा कहना तथा कवलाहार की अपेक्षा न कहना यह आप की कल्पना है। यदि सिद्धान्त में है तो कैसे मालूम पड़े तो इसका समाधान यह है कि श्री उमास्वामी महाराज कृत तत्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय में यह वाक्य है।

एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः।। (30)

इस सूत्र का भाव रूप अर्थ कहा जाता है। एक शरीर को छोड़कर दूसरे भव में जाने के काल में विग्रह गति के भीतर स्थूल शरीर का अभाव होते हुए नवीन स्थूल शरीर धारण करने के लिए तीन शरीर और छः पर्याप्ति के योग्य पुद्गल पिण्ड का ग्रहण होना नो-कर्म आहार कहा जाता है। ऐसा नोकर्म आहार विग्रह

नोकर्म आहार की अपेक्षा से आहारकपना कहा है। यदि कहोगे कि कवलाहार की अपेक्षा से है तो ग्रास रूप भोजन के काल को छोडकर सदा ही अनाहारकपना ही रहेगा। तब तीन समय अनाहारक हैं ऐसा नियम न रहेगा। यदि कहोगे कि वर्तमान के मनुष्यों की तरह केवलियों के कवलाहार हैं क्योंकि केवली भी मनुष्य है, सो कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा मानोगे तो वर्तमान के मनुष्यों की तरह पूर्व काल के पुरुषों के सर्वज्ञपना नहीं रहेगा। तथा राम, रावण आदि को विशेष सामर्थ्य था सो यह बात नहीं बन सकेगी। और भी समझना चाहिए कि अल्पज्ञानी छद्मस्थ प्रमत्तसयंत नाम छठे गुणस्थानधारी साधु भी जिनके सात धातुरहित परम औदारिक शरीर नहीं है इस वचन से कि ''छट्ठोत्ति पढम सण्णा'' प्रथम आहार की संज्ञा अर्थात् भोजन करने की चाह (इच्छा) छठे गुणस्थान तक ही है यद्यपि वे आहार को लेते हैं तथापि ज्ञान और संयम तथा ध्यान की सिद्धि के लिए लेते हैं, देह के मोह के लिए नहीं लेते हैं। कहा भी है -

कायस्थित्यर्थमाहारः कायो ज्ञानार्थमिष्यते,
ज्ञानं कर्मविनाशाय तन्नाशे परमं सुखं।। (3)
णा बलाउ साहणट्ठं ण सहिरस्स य चयट्ठं तेजट्ठं।
णाणट्ठं संजमट्ठं झाणट्ठं चेव भुंजति।। (4)

भाव यह है कि मुनियों के आहार शरीर की स्थिति के लिए होता है, शरीर को ज्ञान के लिए रखते हैं, आत्मा ज्ञान कर्मनाश करने के लिए सेवन करते हैं क्योंकि कर्मों के नाश से परम सुख होता है। मुनि शरीर के बल, आयु, चेष्टा तथा तेज के लिए भोजन नहीं करते है किन्तु ज्ञान, संयम तथा ध्यान के लिए करते हैं।

उन भगवान् केवली के तो ज्ञान, संयम तथा ध्यान आदि गुण स्वभाव से ही पाये जाते हैं आहार के बल से नहीं। उनको संयमादि के लिए आहार की आवश्यकता तो नहीं है क्योंकि कर्मों के आवरण न होने से संयमादि गुण तो

यदि कहोगे कि उनके अतिशय की विशेषता से प्रगट (दृश्य) रूप से भोजन की भुक्ति नहीं है, गुप्त है, तो परमौदारिक शरीर होने से भुक्ति ही नहीं है ऐसा अतिशय क्यों नहीं होता है। क्योंकि गुप्त भोजन में मायाचार का स्थान होता है दीनता की वृत्ति आती है तथा दूसरे भी पिंड शुद्धि में कहे हुए बहुत से दोष होते हैं जिनको दूसरे ग्रंथ से व तर्कशास्त्र से जानना चाहिए। अध्यात्म ग्रंथ होने से यहाँ अधिक नहीं कहा गया है।

यहाँ यह भावार्थ है कि ऐसा ही वस्तु का स्वरूप जानना चाहिए। इसमें हठ नहीं करना चाहिए। खोटा आग्रह या हठ करने से रागद्वेष की उत्पत्ति होती है जिससे निर्विकार चिदानन्दमई एक स्वभाव रूप परमात्मा की भावना का घात होता है।

समीक्षा :- गुण एवं गुणी अभेद होते हैं। गुण को छोड़कर गुणी नहीं रहता है और गुणी को छोड़कर गुण नहीं होता है। विश्व में केवल जीव ही चैतन्यमय एवं सुख सम्पन्न है उसको छोड़कर और बाकी कोई भी द्रव्य चैतन्यमय एवं सुख रूप नहीं है। शरीर इन्द्रियाँ, भोगोपभोग की सामग्रियाँ आदि जड़मय है अतएव उनमें न ज्ञान हैं, न सुख है, न उनसे ज्ञान और सुख की उपलब्धि हो सकती है परन्तु संसारी जीव मोहनीय कर्म, वीर्यान्तरायकर्म, ज्ञानावरणीय कर्म आदि के उदय से शरीर जनित, इन्द्रियजनित, भोगोपभोगजनित सुख-दुःख को अनुभव करता है परन्तु जब मोहनीय आदि कर्म का अशेषक्षय हो जाता है तब उस जनित सुख-दुःख का अनुभव नहीं करता है।

जयधवला में वीरसेन स्वामी ने केवली के शारीरिक सुख-दुःख, भूख, प्यास आदि नहीं होने का अत्यन्त सूक्ष्म दार्शनिक विवेचन निम्न प्रकार से किया है-

50 - चार अघतिया कर्म विद्यमान हैं, इसलिए वर्तमान जिनके देवत्व का अभाव नहीं हो सकता है, क्योंकि चार अघातिया कर्म देवत्व के घात करने में असमर्थ हैं, इसलिए उनके रहने पर भी देवत्व का विनाश नहीं हो सकता है। (पृ. 61)

संज्ञा नहीं बन सकती थी, इससे प्रतीत होता है कि चार अघातिया कर्म देवत्व के विरोधी नहीं है।

51- नामकर्म और गोत्रकर्म तो अवगुण के कारण हैं नहीं, क्योंकि जिन क्षीण मोह है। इसलिए उनमें नाम और गोत्र के निमित्त से राग और द्वेष संभव नहीं हो सकते हैं। आयु कर्म भी अवगुण का कारण नहीं है। क्योंकि क्षीणमोह जिन भगवान् में वर्तमान क्षेत्र के निमित्त से रागद्वेष नहीं उत्पन्न होता है और आगे होने वाले लोक शिखर पर गमन के प्रति सिद्ध के समान उनके उत्कण्ठा नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि केवली जिन के विद्यमान आयुकर्म अवगुणों का कारण नहीं है। तथा वेदनीय कर्म भी अवगुणों का कारण नहीं है। क्योंकि यद्यपि केवली जिन के वेदनीय कर्म पाया जाता है, फिर भी वह असहाय होने सवे अवगुण उत्पन्न नहीं कर सकता है।

चार घातिया कर्मों की सहायता से ही वेदनीय कर्म दुःख को उत्पन्न कर सकता है, परन्तु केवली जिन के चार घातियाकर्म नहीं है, इसलिए जल और मिट्टी के बिना बीज जिस प्रकार अपना कार्य करने में समर्थ नहीं होता है उसी प्रकार वेदनीय भी घाति चतुष्क के बिना अपना कार्य नहीं कर सकता है।

शंकाः- दुःख को उत्पन्न करने वाली वेदनीय कर्म के दुःख के उत्पन्न कराने में घातिचतुष्क सहायक है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधानः- यदि चार धातियां कर्मों की सहायता के बिना भी वेदनीय कर्म दुःख देने में समर्थ हो तो केवली जिन के रत्नत्रय की निर्बाध प्रवृत्ति नहीं बन सकती है। इससे प्रतीत होता है कि घाति चतुष्क की सहायता से ही वेदनीय अपना कार्य करने में समर्थ होता है।

घातिकर्म के नष्ट हो जाने पर भी वेदनीय कर्म दुःख उत्पन्न करता है यदि ऐसा माना जाय तो केवली जिन को भूख और प्यास की बाधा होनी चाहिए, परन्त ऐसा है नहीं. क्योंकि भूख और प्यास में भोजन विषयक और जल विषयक के लिये भोजन करते हैं, ऐसा कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि केवली जिन पूर्ण रूप से आत्मस्वरूप को प्राप्त कर चुके हैं, इसलिए वे रत्नत्रय अर्थात् ज्ञान, संयम और ध्यान के लिए भोजन करते हैं, यह बात सम्भव नहीं है। आगे इसी का स्पष्टीकरण करते हैं- केवली जिन ज्ञान की प्राप्ति के लिए तो भोजन नहीं करते हैं, क्योंकि उन्होंने केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया है। तथा केवलज्ञान से बड़ा और कोई दूसरा ज्ञान प्राप्त करने योग्य है नहीं, जिससे उस ज्ञान की प्राप्ति के लिए केवली जिन भोजन करें। इससे यह निश्चित हो जाता है कि केवली जिन ज्ञान की प्राप्ति के लिए तो भोजन करते नहीं हैं। संयम के लिए केवली जिन भोजन करते हैं यह भी नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उन्हें यथाख्यात संयम की प्राप्ति हो चुकी है। ध्यान के लिए केवली जिन भोजन करते हैं यह कथन भी युक्ति संगत नहीं है, क्योंकि उन्होंने पूर्णरूप से त्रिभुवन को जान लिया है, इसलिए उनके ध्यान करने योग्य कोई पदार्थ ही नहीं रहा है। अतएव भोजन करने का कोई कारण नहीं रहने से केवली जिन भोजन नहीं करते हैं यह सिद्ध हो जाता है। यदि केवली जिन आहार करते हैं तो संसारी जीवों के समान वे बल, आयु, स्वादिष्ट भोजन, शरीर की वृद्धि, तेज और सुख के लिए ही भोजन करते हैं ऐसा मानना पड़ता है परन्तु ऐसा नहीं हैं, क्योंकि ऐसा मानने पर वे मोहयुक्त हो जायेंगे और इसलिए उनके केवलज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी।

'अष्टावक्र गीता' में ऋषि अष्टाज्ञवक्र ने 'आध्यात्मिक रहस्य' का प्रतिपादन करते हुए राजा जनक को सम्बोधन निम्न प्रकार से किया है-

अन्तस्त्यक्त कषायस्य निर्द्वन्द्वस्य निराशिषः।
यद्वच्छयागतो भोगो न दुःखाय न तुष्टये।। (14) पृष्ठ 48 अ.3

अन्तःकरण के राग-द्वेषादि कषायों को त्यागने वाले और शीत उष्णादि द्वंद्व रहित तथा विषय मात्र की इच्छा से रहित जो ज्ञानी पुरुष हैं उसको देवगति से प्राप्त हुआ भोग न दुःखदायक होता है और न प्रसन्न करने वाला होता है।

बडे आश्चर्य की वार्ता है कि इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता जिस आत्मपद की प्राप्ति की इच्छा करते हुए आत्मपद की प्राप्ति न होने से दीनता को प्राप्त होते हैं, उस सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मपद के विषे स्थित अर्थात् 'तत् त्वम्' पदार्थ के ऐक्यज्ञान से आत्मपद के विषे वर्तमान आत्मज्ञानी विषय भोग से सुख को नहीं प्राप्त होता है और उस विषय सुख के नाश होने पर शोक नहीं करता है।

तज्ञस्य पुण्यपापाभ्यां स्पर्शोह्यन्तर्न जायते।

नह्याकरशस्य धूमेन दृश्यमानापि सङ्गति।। (3)

तत्त्वज्ञानी को अन्तःकरण के धर्म जो पुण्य-पाप उनसे सम्बंध नहीं होता है, वह वेदोक्त विधि निषेध के बन्धन में नहीं होता है क्योंकि जिसको आत्मज्ञान हो जाता है, उस के अन्तःकरण में पाप-पुण्य का संबंध नहीं होता है जिस प्रकार धूम आकाश में जाता हैं, परन्तु उस धूम का आकाश से सम्बंध नहीं होता है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है कि ''ज्ञानग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरन्ते तथा''। अर्थात् ज्ञानरूपी अग्नि सम्पूर्ण कर्मरूपी ईंधन को भस्मसात् करती है।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।

निर्दोष हि समं ब्रम्ह तस्माद् ब्रह्माणि ते स्थिता।। अ.5 श्लो. 19

जिसका मन समत्व में स्थिर हो गया है उन्होंने इस देह में रहते ही संसार को जीत लिया है। ब्रह्म, निष्कलंक और समभावी है इसलिए ये ब्रह्म में ही स्थित होते हैं।

- कोमल उत्तर से क्रोध शांत हो जाता है, कटु वचन से उठता है।

  —बाइबिल

- कटु वचन दूसरे के मर्म स्थान पर चोट करते है और बदले में वह श्राप देता है जो निष्फल नहीं जाता।

अध्याय - V

आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से ब्रह्माण्ड

अत्याधुनिक (String theory M. theory, unified theory) या एकीकृत सिद्धान्त-ब्रह्माण्डीय विज्ञान, जीव विज्ञान के अनुसार शुरू में कुछ भी नहीं था। (Atom) अणु से भी बहुत ही सूक्ष्म कण था जो कि ऊर्जा रूप में था। एक सैकण्ड के खरबों-खरबां भाग में वह फैला। एक सैकण्ड के 10 लाखवाँ समय में भी वह एक अणु के आकार रूप में परिणमन नहीं हुआ था। 13 से 20 अरब वर्ष पूर्व प्रकाश फँसा हुआ था, इसे प्राथमिक अणु कहते हैं। उसमें एक सैकण्ड के (10^{-30}) में महाविस्फोट हुआ। उस समय अभी के ब्रह्माण्ड की गर्मी से अरबों गुणा गर्मी थी। उस समय 10 करोड़ एंटी पार्टिकल में 10 करोड़ 1 पार्टिकल थे, अर्थात् एक पार्टिकल के असन्तुलन के कारण वर्तमान का ब्रह्माण्ड बना। अन्यथा दोनों प्रकार के पार्टिकल समान-अनुपात में होते हैं तो एक दूसरों को नष्ट कर देते और केवल ऊर्जा ही ऊर्जा रूप हो जाते। उस समय की गर्मी हमारे सूर्य की गर्मी से 10 करोड़ गुणा अधिक थी। कण के टक्कर से तरल पदार्थ बना। महाविस्फोट के पहले 3 मिनट में केवल हाइड्रोजन का केन्द्रक था, जिसकी वजह से उसका 10 प्रतिशत भाग हीलियम और कई प्रकार के हल्के तत्त्व बने फिर ब्रह्माण्ड तेजी से फैला और भारी तत्त्वों तथा हीलियम का सृजन हुआ। 3 लाख 80 हजार वर्ष में महाविस्फोट फैलकर हमारे आकाशगंगा के समान बना। महाविस्फोट के 1 से आधा अरब वर्ष बाद तारे बने। 100 अरब निहारिकाओं में से एक निहारिका हमारी आकाशगंगा है जो कि 1 लाख प्रकाश वर्ष विस्तार वाला है। 3 अरब 80 करोड़ वर्ष पूर्व में हमारी पृथ्वी पिघली हुई थी। जीवन विकास का क्रम 4-5 अरब वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ। 2 अरब वर्ष पूर्व ऑक्सीजन बनी। अति सूक्ष्म जीव की उत्पत्ति के बाद ऑक्सीजन बनी जिससे पूर्व के अनेक सूक्ष्म जीव मर गये और कुछ जीव बचे जिससे क्रम विकास प्रक्रिया से व्हेल मछली बनी। 3.5 अरब वर्ष तक जीवों का विकास जल में हुआ। एक कोशिका से बहुकोशिका

50 करोड़ वर्ष पूर्व तक केंब्रियन काल रहा। 45 करोड़ वर्ष पूर्व जमीन पर जीव जल से निकल कर आये। पहले केंकड़े अण्डा देने के लिए जमीन पर आये। 40 करोड़ वर्ष पूर्व जमीन हरी-भरी हुई। 37 करोड़ वर्ष पहले सरीसृप की सृष्टि हुई। 32 करोड़ वर्ष पहले अधिक परिवर्तन हुआ। 24 करोड़ वर्षों से मगरमच्छ है और 7 करोड़ वर्षों से ऐसा ही है और करोड़ों वर्षों तक ऐसा ही रहेगा। 10 करोड़ वर्ष पहले डायनासोर उत्पन्न हुए। 6.5 करोड़ वर्ष पहले उल्कापात से डायनासोरों का नाश हुआ तथा जो बिल आदि में चूहे जैसे छोटे स्तनपाई बच गये और उनसे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ स्तनधारियों का विकास हुआ। 20 करोड़ वर्ष पहले स्तनधारी उत्पन्न हुए। 55 करोड़ वर्ष पहले आधुनिक बड़े जीव उत्पन्न हुए। 32 करोड़ वर्ष पहले पतंग में पंख उत्पन्न हुए। 40-70 लाख वर्ष पूर्व अफ्रीका में बंदर जमीन पर पैर से चलने लगे और क्रम विकास करता हुआ आधुनिक मानव बने। प्रथम मानव की उत्पत्ति 8 लाख वर्ष पूर्व हुई। 5 लाख वर्ष पूर्व अफ्रीका से मानव निकले परन्तु असफल रहे। पुनः 1 लाख वर्ष पूर्व जो मानव अफ्रीका से निकले वे ही पृथ्वी में फैल गये। 40 हजार वर्ष पूर्व से आधुनिक मानव का प्रारम्भ हुआ। 35 हजार वर्ष पूर्व प्रस्थर युग प्रारम्भ हुआ। 30 हजार वर्षों से सांस्कृतिक विकास हुआ। 8-10 हजार वर्ष पूर्व मिस्र, बेबीलोन संस्कृतियों का जन्म हुआ। भारत की संस्कृति 5000 वर्ष प्राचीन है। कुछ वैज्ञानिकों की ब्रह्माण्ड एवं जीव विषयक परिकल्पनाओं को निम्न में विस्तार से प्रस्तुत कर रहे हैं-

ब्रह्माण्ड और जीव सृष्टि

पृथ्वी पर जीवन लहराता है। भौगोलिक संयोगों के अनुसार कहीं वह ज्यादा विकसित है तो कहीं कम किसी जगह पर विपुल प्रमाण में है तो दूसरी जगह में कम प्रमाण में। कुछ भी हो, पृथ्वी की सतह पर ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ एक या दूसरे प्रकार का कोई जीवन चैतन्य न हो। रेती के या बर्फ के कणों में भी मनुष्य से लेकर सूक्ष्म बेक्टेरिया तक की सृष्टि है।

हुआ कि हकीकत कुछ और है। जीवन प्राकट्य के लिये आवश्यक परिस्थितियाँ उत्पन्न होते ही जीव सृष्टि का उद्गम हो सकता है और उसी तरह बुद्धि का आविर्भाव हो सकता है। जीवन और बुद्धि के प्रकटीकरण को अब असाधारण या विरल घटना नहीं माना जाता है।

जीवन प्रकट होने के बाद वह सतत रूप में चालू रहे इसलिये कुछ परिस्थितियों का मौजूद रहना जरूरी है। उदाहरणार्थ किसी गृह पर जीवन प्रकटने वाला हो तो उस गृह को प्रकाश देने वाला तारा दीर्घजीवी होना चाहिये और साथ-साथ उसका शक्ति-निर्गम एक सा होना चाहिये। कुछ बातें और भी जरूरी हैं। ग्रह की कक्षा तारे के आसपास के बस्तीक्षम प्रदेश में होनी चाहिये ताकि ऊर्जा का लाभ ग्रह पा सके। तारे की गर्मी में उपर्युक्त प्रदेश को आवश्यक गर्म करने की ताकत होनी चाहिये। जरूरत से ज्यादा गर्मी या बहुत कम गर्मी जीवन के प्रकटीकरण में काम की नहीं है। एक और बात भी है-ग्रह की कक्षा का स्थिर ढंग का होना जरूरी है।

जीवन और विकास की प्रक्रिया को संभव बनाने वाला तारा दीर्घजीवी होना चाहिये। जीवन की उत्क्रान्ति कितने समय में होती है यह कहना मुश्किल है। पृथ्वी पर जिस प्रकार का जीवन है वैसा जीवन अगर दूसरे ग्रहों पर होने का मान लें तो उसका उत्क्रान्ति समय 1 से 3 अरब साल का हो सकता है। पृथ्वी पर पिछले 3 अरब वर्षों से जीवसृष्टि लहलहा रही है। यह सत्य है कि जैविक उत्क्रान्ति यदृच्छा परिवर्तनों के अधीन है फिर भी पृथ्वी पर जो संभव हो सका है उसे कुछ परिवर्तनों के साथ दूसरे ग्रहों पर होना मान लें तो जीवन की उत्क्रान्ति समय 1 से 3 अरब साल का कल्पित किया जा सकता है। जैविक उत्क्रान्ति की दर सब जगह एक सी नहीं होने की, वह दूसरी बातों पर निर्भर रहेगी। इन बातों में से एक ग्रह का चुम्बकीय क्षेत्र है और दूसरी उसका वातावरण। हमने देखा कि परिवर्तन यदृच्छा प्रक्रिया है और इस कारण उपर्युक्त बातों (कारणों) से हमारी गिनती में बहुत बड़ा फर्क आने की संभावना नहीं है। एक कारण यह भी है कि परिवर्तन की ऊँची दर उत्क्रान्ति को हमेशा वेगवान नहीं बनाती है। हकीकत यह

की संभावना वाले तारे अगर 1 प्रतिशत माने जायें तो एक अरब तारों को जीवन की संभावना वाले तारे मानना पड़ेगा।

मगर यह हुई उष्मा की दृष्टि से बात। जीवन की संभावना के लिये एक और पहलू भी है। वह है ग्रह की अविचल कक्षा। पृथ्वी की कक्षा से हम परिचित हैं। वह अविचल ढंग की कक्षा है। यूरेनस की कक्षा में नेपच्युन के कारण थोड़ा विक्षेप उत्पन्न होता रहता है फिर भी वह अविचल कक्षा है। सूर्य मण्डल के सभी ग्रहों की कक्षायें वैसी नहीं है। वे थोड़ी बहुत पलटती रहती है। फिर भी इस बात का यह अर्थ नहीं है कि सभी युग्म तारों के सभी ग्रहों की कक्षायें अविचल नहीं हैं। निरीक्षणों से जो पता चला है वह यों है- ग्रहों के समष्टिक्षम प्रदेश में ग्रहों की कक्षायें अविचल स्वरूप की हों इस वास्ते युग्म तारे के साथी तारे सूर्य-प्रकार के होने चाहिये और उनके बीच का अन्तर 0.05 आकाशीय ईकाई से कम या 10 आकाशीय ईकाई से ज्यादा होना चाहिए। जिन युग्म तारों के साथी तारों के बीच की दूरी 0.05 आकाशीय ईकाई से 2 आकाशीय ईकाई की है वहाँ जीवन की क्षमता वाले ग्रहों का अस्तित्व नहीं है।

अंतरिक्ष-स्थित बहुत से तारे युग्म तारे या बहुल तारे हैं। हमने अब तक जो चर्चा की उसके संदर्भ में अब यह कह सकते हैं कि इन तारों में से 1 या 2 प्रतिशत तारे ही जीवन की संभावना वाले ग्रहों को धारण करते हैं। अलबत्ता इन ग्रहों को दूरबीन से देख पाना संभव नहीं है। फिर भी आज यह कल्पना जोरों पर है कि जो तारे अकेले से मालुम होते हैं वे शायद ग्रहों वालों तारे हैं।

कार्बन वाले सेन्द्रिय संयोजनों के मिश्रणों को जीवन तत्त्व माना जाता है। ये मिश्रण किस प्रकार उत्पन्न होते हैं यह लम्बे अरसे तक मालुम न हो सका था। आज उन्हें हम जीवन प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न होते देख पाते हैं। फिर भी पुरातन काल में किस प्रकार उत्पन्न हुए होंगे इसकी कोई कल्पना न की जा सकी थी। प्रोफेसर हेरोल्ड ऊरी और उनके शिष्य डॉ. स्टेनली मिलर ने एक प्रयोग हाथ में लिया। उन्होंने कल्पना की कि पृथ्वी के आदिकाल में भी पृथ्वी के वातावरण में मिश्रण में से बिजली जब गुजरी तब अनेक प्रकार के कार्बनिक द्रव्यों की उत्पत्ति हुई जिनमें महत्त्व के एमिनो एसिड भी थे। एमिनो एसिड प्रोटीन बनाने वाले पदार्थ हैं। प्रो. ऊरी के इस प्रयोग ने साबित कर दिखाया कि जिनका विकास सजीव तत्त्वों में हो सकता है वैसे सेन्द्रिय मिश्रण पृथ्वी के आदिकाल में पृथ्वी पर कुदरती रूप में उत्पन्न हुए होंगे।

जीवन और उसके प्रादुर्भाव के बारे में वैज्ञानिकों की परिकल्पना :- जीवन अस्तित्व में कैसे आया होगा, इसका कोई स्पष्ट खयाल हमको (वैज्ञानिकों) नहीं है। साथ-साथ कौनसी शक्ति के मृदु स्फुलिंगों के कारण अक्रिय पदार्थों में से चेतना का स्रोत बहना शुरू हुआ होगा उसका पता लगाना भी मुश्किल है। फिर भी पृथ्वी पर फैले हुए जीवन की परिस्थितियों को दूसरे ग्रहों के जीवन के संदर्भ में विवेचना करना ठीक होगा। पृथ्वी पर का जीवन प्रोटोप्लाझमिक, कार्बन आधारित और श्वास में ऑक्सीजन का उपयोग करने वाला है। ऐसे जीवन के प्राकट्य और सातत्य के लिये निम्नलिखित परिस्थितियों का मौजूद होना अनिवार्य देखा जाता है।

1. जीव सृष्टि के निर्माण के लिये आवश्यक आधारभूत पदार्थ अस्तित्व में होने चाहिये। वे पदार्थ प्रचुर मात्रा में और साथ-साथ आसानी से और तुरन्त प्राप्त हों ऐसा होना चाहिये और वे पदार्थ स्थिरता वाले तथा अनेक प्रकार की संकुलता वाले, यौगिक पदार्थों को उत्पन्न करने की क्षमता वाले, रासायनिक गुणधर्मों वाले होने चाहिये। और उत्पन्न होने वाले पदार्थ आसानी से मूलभूत तत्त्वों में बदल न जायें उस प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति होनी चाहिये।

2. आधारभूत पदार्थ और उसके यौगिक पदार्थों को टिकाने वाला और उनकी रासायनिक प्रक्रियाओं को मदद रूप होने वाला कोई द्रावक होना चाहिये।

3. ऊर्जा प्रकट करने वाली किसी भी प्रकार की रासायनिक प्रक्रिया मौजूद होनी चाहिये। इस प्रक्रिया के द्वारा ऊष्मा, प्रकाश, विद्युत या अन्य किसी प्रकार का विकिरण पैदा होना चाहिये और [illegible]

4. प्रतिक्रियक पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने चाहियें ताकि रासायनिक या नाभिकीय प्रतिक्रियाओं का सातत्य खंडित न हो।

उपर्युक्त बातों के हिसाब से पृथ्वी पर की परिस्थितियाँ सानुकूल हैं। वहाँ आधारभूत पदार्थ कार्बन है, द्रावक पानी है, पैदा होता विकिरण जीव-रासायनिक प्रकार का है और प्रतिक्रियक ऑक्सीजन है।

कार्बन आधारित जीव सृष्टि को वातावरण से ही ऑक्सीजन प्राप्त होना चाहिए ऐसा भी नहीं है (बेक्टेरिया अपने लिए यौगिक पदार्थों में से ऑक्सीजन प्राप्त करता है)। जीवन सातत्य के लिए जीवन की प्रक्रियाओं को चालू रखने को और वेगवान बनाने को प्रक्रिण्वों (Enzymes) की आवश्यकता रहती है। प्रक्रिण्व जटिल प्रकार के उद्दीपक है। वे अपना काम उत्तम प्रकार से करते रहें इसलिये निश्चित तापमान का सातत्य आवश्यक है। तापमान कम होने पर प्रक्रिण्वों की प्रवृत्तियाँ बन्द हो जाती हैं और ज्यादा होने पर प्रक्रिण्वों का नाश हो जाता है। पृथ्वी पर का जीवन 100° से.ग्रे. से -75° से.ग्रे तक की मर्यादा वाला है।

ब्रह्माण्ड के कितने ग्रह जीवन के अनुकूल हैं ?
(ब्रह्माण्ड दर्शन)

आजकल अन्य लोकों में जीवन की संभावना विषयक नवीन विज्ञान 'बहिर्जीव विज्ञान' (Exobiology) विकसित हो रहे हैं। किन्तु जीव निर्माण काफी जटिल प्रक्रम है। अभी पृथ्वी सौरमंडल का एक मात्र भाग्यशाली ग्रह है, जिस पर सभी प्रकार का जीवन है, वृक्ष, पशु और बुद्धिमान मनुष्य पाये जाते हैं। एक तरह से सौरमंडल में पृथ्वी ही आदर्श स्थली है जीवन के लिए। किन्तु क्या अन्य तारे, जिनके ग्रह हैं, उनमें पृथ्वी जैसा जीवन नहीं हो सकता? सचमुच मानव जाति के लिए सबसे अनुठी खोज होगी बाह्य अंतरिक्ष में पृथ्वी जैसी सभ्यता का अस्तित्व।

खगोलविदों का अनुमान है कि ब्रह्माण्ड में 10^{20} तारे हैं और इनमें से अधिकांश के ग्रह हैं, जो उसी तरह चक्कर लगाते हैं जिस तरह सूर्य के चारों हमारी पृथ्वी जैसे हैं और हमारी पृथ्वी जैसा ही जीवन उदय हुआ।

हमें ज्ञान है कि पृथ्वी पर कुछ ऐसे जीव हैं-जीवाणु तथा शैवाल-जो उबलते जल के ताप पर अपनी वृद्धि करते रह सकते हैं। इसी तरह कुछ जीव हिमांक से निम्न ताप पर भी जीवित रह सकते हैं। (अंतरिक्ष की रोचक बातें पृ. 94)

1970 में नासा ने पर ग्रह में जीवों की खोज के लिए यंत्र भेजा है। वाइजर को भी इस उद्देश्य से भेजा गया है जो कि आकशगंगा की परिक्रमा कर रहा है। अभी तक इस यान ने 6 अरब मील से भी अधिक दूरी की यात्रा करली है इसके डिस्क में मानव इतिहास, D.N.A., R.N.A. फिट किया गया है। वैज्ञानिकों के अनुमान से आकाशगंगा में पृथ्वी से भी अधिक बुद्धिमान जीव हैं। ब्रह्माण्ड रूपी जंगल में हमारी पृथ्वी पौधे के समान है। हम इतने विकसित नहीं है कि जो अन्यग्रही हमें ध्यान दें। अन्य ग्रही की आयु हम से अधिक है। हमारे अहंकार से हम दूसरे ग्रही को नहीं समझते हैं। वैज्ञानिकों के पास जो प्रमाण है उससे और ब्रह्माण्डीय गतिविधि से ज्ञात होता है कि अन्य ग्रहों में उच्च जीवन है। 1947 में उड़न तस्तरी धरती में प्रथम बार आई। 200 प्रकाशवर्ष की दूरी से 72 सेकेण्ड तक कुछ सूचनायें आई। जिसे वैज्ञानिक कम्प्यूटर में Woy शब्द पढ़ा गया। 2025 तक अन्यग्रही से संपर्क संभव हो सकेगा। वैज्ञानिक हाकिंग के अनुसार अन्यग्रही हम से श्रेष्ठ होने से उनसे नहीं मिलना चाहिए क्योंकि पृथ्वी में भी दो सभ्यता वालों के मिलने से संघर्ष हुआ है परन्तु अन्य वैज्ञानिक मानते हैं कि श्रेष्ठ व्यक्तियों के मध्य संघर्ष नहीं होता है। 10,000 सभ्यतायें आकाशगंगा में संभव है।

मानव का क्रम विकास

नर वानर 40-70 लाख वर्ष पूर्व दो पैर से चलने लगा। यह अवस्था 10 लाख वर्ष तक रही। हेमो एलट्रेस का विकास उसके बाद हुआ। इसका मस्तिष्क नर वानर से 2 गुना था। यह अवस्था 20 लाख वर्ष तक रही। औजार के माध्यम से भोजन की व्यवस्था के कारण उसके मस्तिष्क में वृद्धि हुई। 20 लाख वर्ष में

10 लाख वर्ष लगा। होमोसोपियन आधुनिक मनुष्य के पूर्वज हैं। इनका मस्तिष्क पूर्व के दोनों पूर्वज के मस्तिष्क के जोड़ से भी अधिक था। वे 2 लाख वर्ष पूर्व तक अफ्रिका में थे। होमोसोपियन से नियण्डर अलग थे और वे 1 से 2 लाख वर्ष पूर्व थे। 60 हजार से एक लाख वर्ष पहले भाषा का विकास हुआ। 40 हजार वर्ष पहले मानव ने चित्र बनाया। अफ्रिका की जनजाति होमोसोपियन के वंशज हैं। 50 लाख वर्ष पूर्व मानव का मस्तिष्क चिंपाजी जितना बड़ा था। मनुष्य जब दो पैर से चलने लगा तब उसका मस्तिष्क बड़ा होता गया। मनुष्य समूह में रहने से उसकी व्यवस्था तथा सुरक्षा के लिए उसे जो विचार एवं कार्य करना पड़ा उसके कारण उसका मस्तिष्क 8 गुना बड़ा हुआ। धर्म, कला, संस्कार, शिक्षा आदि ने मनुष्य को अन्य जीवों से श्रेष्ठ बनाया। 80 लाख वर्ष पहले मनुष्य चिंपाजी से अलग हुआ। भाषा के साथ-साथ मनुष्य ने लिखना सीखा जिससे वह उसने उपार्जित ज्ञान को नई पीढ़ी को हस्तान्तरित किया। इससे मानव विकास में तीव्रता आई। 35 हजार वर्ष पूर्व के पाषाण युग के मानव और आधुनिक मानव के जिन, बुद्धि, क्षमता में समानता होने पर भी उपर्युक्त भाषा, लेखन, ज्ञान, स्मरण, यंत्र आदि के कारण दोनों में बहुत भिन्नता है। चिंपाजी और हमारे जिन में केवल 1% (1/100) भिन्नता है।

ब्रह्माण्ड एवं जीव का विनाश

विज्ञान के अनुसार ब्रह्माण्ड का जन्म-विकास एवं विनाश हमारे जन्म विकास एवं विनाश है। अतः ब्रह्माण्ड के विनाश की वैज्ञानिक अवधारणा भी निम्न में प्रस्तुत है-

1. ब्रह्माण्ड प्रकाश के वेग से फैल रहा है जिससे खरबों वर्ष बाद पृथ्वी, तारे, नीहारिकाएँ आदि फट जायेंगें। इतना ही नहीं अणु तक फट जायेगें। जिससे ब्रह्माण्ड नाश हो जायेगा केवश शान्त, शीतल अन्धकार पूर्ण अन्तरिक्ष ही रह जायेगा। M.theory के अनुसार संभवतः महाविस्फोट 11-16 बार हो गया है। बाद सूर्य अभी से 10 अरब गुना फैल कर बड़ा जो जायेगा। इससे पृथ्वी के सब जीव नाश हो जायेगें।

3. अभी तक 17 हिमयुग के कारण पृथ्वी के जीव नाश हो गये हैं। बर्फ पिघलने से मिथेन गैस निकलती है जिससे वृक्ष नष्ट हो जाते हैं और अन्य जीव भी मर जाते हैं।

4. वृक्ष जलने कार्बनडाइऑक्साइड गैस निकलती है जिससे जीव नष्ट हो जाते हैं।

5. क्षुद्रग्रहों के पृथ्वी से टकराने से भी पृथ्वी के जीवों का विनाश होता है जैसा कि साढ़े छःकरोड़ वर्ष पहले ग्रहीका (उल्का) के टक्कर से डायनासोर विलुप्त हो गये। इस प्रकार की विनाशकारी (7) प्राकृतिक शक्तियाँ हैं। यथा - (1) बाढ़ (2) अकाल (अतिवृष्टि-अनावृष्टि) (3) भूकम्प (4) ज्वालामुखी (5) वनदाह-वनाग्नि (6) बवण्डर (7) वज्रपात। हॉकिंग के अनुसार परमाणु युद्ध, ग्लोबल वार्मिंग और जैव इंजीनियरिंग की तकनीक से तैयार वायरस के फैलने जैसी आपदाओं से जीवन के हमेशा के लिए समूल नष्ट होने का खतरा लगातार बढ़ता जा रहा है। इसके अलावा ऐसी विभीषिकाएँ भी आ सकती हैं जिसकी हम कल्पना तक नहीं कर सकते हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार अभी तक पृथ्वी में 5 बार विनाश हो चुका है। आगामी 6 वाँ विनाश मनुष्य कृत होगा।

विज्ञान के अनुसार जीवन के तत्त्व

लगभग उन सभी रसायनों में जिनसे जीवित वस्तुएँ बनी होती हैं, एक प्रकार का परमाणु पाया जाता है, जिसे ''कार्बन परमाणु'' कहते हैं। और कार्बन परमाणुओं में भी एक विशेष प्रकार का परमाणु होता है जो साधारण कार्बन परमाणु से कुछ भारी होता है, अर्थात् इस प्रकार का कार्बन परमाणु कुछ समय बाद अपने आप विघटित हो जाता है या अलग-अलग हो जाता है और फिर दूसरी किस्म का परमाणु बन जाता है। इस प्रकार के परमाणु को 'कार्बन-14' कहा जाता है और यह एक कभी न बदलने वाली, स्थिर गति से विघटित होता रहता है। अगर ईसा पूर्व 3,600 साल पहले किसी हड्डी के टुकड़े में 10,000

बात यह है कि नियमित कार्बन परमाणु के साथ-साथ कार्बन-14 परमाणु प्राणियों के शरीर में तभी प्रवेश कर पाते हैं जब वे प्राणी जीवितावस्था में रहते हैं। इसलिए वैज्ञानिकों ने इन छोटे-छोटे परमाणुओं की गिनती करने के (ये परमाणु इतने छोटे होते हैं कि इन्हें सबसे शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी की सहायता से भी नहीं देखा जा सकता) और विभिन्न प्रकार के कार्बन परमाणुओं के साथ इनकी तुलना करके यह तय करने के बड़े आश्चर्यजनक तरीके निकाल रखे हैं कि वह प्राणी कब मरा था। शीशे की नलियों के चमकते हुए जालों और तेल रोशनियों तथा परमाणु -गणक मशीनों की खरखराहट और टिक-टिक से भरी बड़ी-बड़ी प्रयोग शालाओं के वैज्ञानिक, हड्डी के एक नन्हें से टुकड़े की परीक्षा करके कह सकते हैं कि यह आदमी 75,000 साल पहले मरा था। (आदमी की कहानी, लेखक-डोनाल्ड बार, अमेरिका की शिक्षा मंत्रालय, वाशिंगटन)

जीवों की उत्पत्ति :- पृथ्वी की कहानी शुरू हुई थी इस शून्य अन्तरिक्ष की भयानक ठंडक में। कई वैज्ञानिकों का यह मत है कि ऐसा कुछ हुआ होगा, या होना चाहिए था; इस समय जहाँ सूर्य और पृथ्वी तथा अन्य ग्रह स्थित हैं वहाँ कभी धूल और गैस का एक विशालकाय काला बादल था। धीरे-धीरे इसके आस-पास के तारों से आने वाले प्रकाश ने आहिस्ता-आहिस्ता धकेलकर इस पदार्थ को इकट्ठा कर दिया फिर गुरुत्वाकर्षण ने इसे दबाकर कड़ा, ज्यादा कड़ा तथा और भी ज्यादा कड़ा कर दिया। इसके केन्द्र में एक ढेर सा बन गया और उसके भीतर के गुरुत्व ने ज्यादा पदार्थ को अपनी ओर खींच लिया। अन्त में गैस का यह ढेर इतना बड़ा बन गया कि इसके केन्द्र के परमाणु इसके परमाणु इसके ऊपर के पदार्थ से बहुत जोर से दबने लगे। इसके परमाणुविक शक्ति का एक बहुत बड़ा विस्फोट शुरू हो गया, जैसे किसी उद्जन बम का लगातार विस्फोट हो रहा है, और इस तरह बहुत जल्दी ही यह ढेर एक बड़ा भारी चमकीला गोला बन गया- अर्थात् सूर्य का जन्म हुआ। इसके आस-पास धूल के बादल का बाकी बचा भाग बराबर नाचता रहा। धीरे-धीरे धूल के छोटे-छोटे

जब सूर्य के बाद तीसरा ग्रह- जिसे हम पृथ्वी कहते हैं- कुछ ठंडा हुआ तो उसके चारों ओर हवा की एक हल्की सी परत छाई हुई थी, लेकिन वह हवा ऐसी नहीं थी जिसमें हम सांस लेते हैं। अगर हम नई जन्मी हुई पृथ्वी की हवा में सांस लेने की कोशिश करते तो हमारा दम घुट जाता और कुछ सेकण्ड में ही प्राण निकल जाते। वह हवा कुछ प्रकार की गैसों से मिलाकर बनी थी। जैसे- हाइड्रोजन, मेथेन, अमोनिया और पानी की भाप। लाखों सालों तक पृथ्वी के चारों ओर बड़े भयानक तूफान मंडराते रहे और वर्षा के बादलों के बीच बड़ी तेज बिजलियाँ कौंधती रही। लाखों सालों सूरज की किरणें पृथ्वी पर पड़ती रही। सूरज की किरणों और बिजली ने गैसों के परमाणुओं को विचित्र प्रकार के अम्लों में बदल दिया। ये अम्ल 'एमिनो अम्ल' कहलाते हैं। इन्हीं अम्लों के आधार पर हमारे शरीर के मांस और रक्त का निर्माण हुआ है। कहीं-कहीं ये एमिनो अम्ल ठीक-ठीक अनुपात में आपस में मिल गए और 'प्रोटीन' के सूक्ष्म कणों का निर्माण हुआ। लेकिन प्रोटीन को हम जीवित पदार्थ नहीं कह सकते। और अन्त में कुछ और अम्ल तैयार हुए जो इनसे भी अधिक आश्चर्यजनक थे। इन्हें 'न्यूकलीक अम्ल' कहते हैं। और जब ये परमाणु समूह या अणु एक विशेष प्रकार से आपस में मिले तो दूसरे अम्ल पदार्थ इनके साथ चिपक गए और उनके पास ही ठीक उसी प्रकार व्यवस्थित हो गए। ये थी पहली जीवित वस्तुएँ।

विकास-वाद :- समस्त जीवित प्राणी उसी बड़े परिवार के सदस्य हैं। इस विचार को 'विकास वाद' कहते हैं। चाहे शेर हो, चाहे जिराफ, कीड़ा, बाज, गौरेया या बर्र सभी आपस में रिश्तेदार हैं। वैज्ञानिकों का मत है कि इन सबकी पहली पूर्वज एक कोशिका थी, जो लगभग 20 खरब साल पहले पृथ्वी के तूफानी सागरों में तैरा करती थी। यह प्रोटीनों का एक बारीक सा गुच्छा था जिसके बीच में आश्चर्यजनक न्यूकलीक अम्लों का समूह मौजूद था और जिसकी शक्ल दाँतेदार थी। कोशिका के इस केन्द्रभाग ने अपने आसपास की प्रोटीन थैली के अम्लों में से विभिन्न रासायनिक दलों के

मूलरूप से अलग हो गया। अपने साथ वह प्रोटीन समूह का एक अंश भी तोड़ता लाया और इस तरह एक नई कोशिका का केन्द्र बन गया। फिर दोनों कोशिकाएँ टूटकर बट गई। इस तरह अब चार कोशिकाएँ हो गईं। फिर आठ हुई, और फिर सोलह हो गई। प्रत्येक न्यूक्लीक अम्ल की पहली दाँतेदार शक्ल की ठीक नकल थी। धीरे-धीरे इन कोशिकाओं में परिवर्तन होने लगा। ये अब विशेषज्ञ बन गई। इनमें से कुछ को एक विशेष प्रकार के रासायनिक द्रव्य अलग करने की योग्यता प्राप्त थी और दूसरी, कुछ दूसरे रासायनिक द्रव्य पैदा करती थी। जब कोई विद्युत् धारा इसमें से कुछ को छू लेती थी तो उनकी शकल बदल जाती थी अन्य कोशिकाओं में प्रकाश की किरणों के स्पर्श से विद्युत् क्रिया उत्पन्न हो जाती थी। और ये विशेषज्ञ कोशिकाएँ अब केवल अपने बल पर अकेली ही नहीं रहती थी ये अब दलों या बस्तियों के रूप में रहती थी और अपने बीच विभिन्न प्रकार के काम बाँट लिया करती थीं। ये बस्तियाँ अपने प्रतिरूप भी तैयार करने लगी। लेकिन यह काम इस तरह नहीं होता था, जैसा कोई फुटबाल टीम-मैदान से अलग हटकर अपने आप को किसी नई टीम के रूप में फिर से संगठित कर ले और पुराने खिलाड़ियों के स्थान पर उसी तरह के नये खिलाड़ियों को नियुक्त कर ले। बल्कि यह काम किसी बस्ती की 'मास्टर प्लान' की तरह होता था जो न्यूक्लिक अम्लों में स्पष्ट रूप से चित्रित होती थी। प्रत्येक कोशिका की अपनी एक कापी यानि उसका प्रतिरूप होता था और यह प्रतिरूप एक नई बस्ती को प्रदान करने के लिए एक विशेष कोशिका में रखा होता था। फिर धीरे-धीरे ये मास्टर प्लान भी बदलने लगीं और कोशिकाओं की बस्तियाँ ज्यादा से ज्यादा पेचीदा होती गई। ऐसी कोशिकाएँ जो प्रकाश के प्रति संवेदनशील थी, अपनी बस्ती के लिए आँखे बनने लगी। जो कोशिकाएँ विद्युत् धारा पहुँचाती थी, वे तंत्रिका बन गई। कुछ रासायनिक कर्म कोशिकाएँ आमाशय का काम करने लगीं और इस तरह प्राणियों का निर्माण हुआ।

विभिन्न प्राणियों का विकास :- किसी प्राणी की रूपरेखा में होती रहती है। उदाहरण के लिए, बाह्य अन्तरिक्ष से आने वाली कुछ ऐसी किरणें हैं जो हमारे अन्दर प्रवेश करती रहती हैं। इन (ब्रह्माण्ड किरणों) के प्रभाव से अम्ल पदार्थ के कुछ अंश अपनी जगह बदलकर इधर-उधर खिसक सकते हैं। इन दुर्घटनाओं में से अधिकांश रूपरेखा की प्रतिलिपि को इतना खराब कर देती हैं कि इसका उपयोग नहीं हो सकता, लेकिन कभी-कभी किसी दुर्घटना से ऐसा परिवर्तन भी हो जाता है जो वास्तव में उपयोगी सिद्ध होता है। इस प्रकार हम जो कुछ हैं वह और कुछ नहीं, बस इस प्रकार के करोड़ों-करोड़ परिवर्तन का एक समूह मात्र है, 500 लाख खरब कोशिकाओं की बस्ती के रूप में।

प्राकृतिक वरण :- इसी को उत्परिवर्तनों का 'प्राकृतिक वरण' कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि प्राणियों की मूल रूप रेखा में धीरे-धीरे बराबर परिवर्तन हो रहा है, ताकि वे उस संसार के योग्य हो सकें जिसमें उन्हें रहना है। उदाहरण के लिए, पेनिसिलीन जैसी कुछ दवाओं में रोगाणुओं को नष्ट करने की बड़ी चमत्कारपूर्ण शक्ति होती थी। इन रोगाणुओं में 'स्टैफिलोकोकस' जैसे भयानक रोगाणु भी थे जो बड़े संक्रामक होते थे। डॉक्टर लोग लगभग प्रत्येक व्यक्ति को लगभग हर बात पर पेनिसिलीन से भरी दुनिया में रहना पड़ता था। और अब कई प्रकार के स्टैफिलोकोकस रोगाणुओं में एक ऐसा उत्परिवर्तन हो गया है जिसके कारण पेनिसिलीन का उन पर कोई असर नहीं हो पाता। ऐसा लगता है कि अन्य प्राणियों की तरह मनुष्य के साथ भी ऐसा ही होता रहा है।

डार्विन ने कहा कि मनुष्य का विकास इसलिए हो सका क्योंकि उसके शक्तिशाली मस्तिष्क ने जीवित बने रहने में उसकी मदद की।

जब सौ साल पहले विकासवाद पर डार्विन की पुस्तकें प्रकाशित हुई तो बहुत से लोगों ने यह कहा कि डार्विन ईश्वर की योजना में विश्वास नहीं करते, बल्कि एक ऐसे संसार में विश्वास करते हैं जिसका संचालन सौभाग्य पूर्ण दुर्घटनाओं और स्वार्थ पूर्ण संघर्षों के द्वारा हो रहा है। लोगों ने कहा कि डार्विन मनुष्य को एक चालाक बन्दर से अधिक और कुछ नहीं मानते हैं लेकिन इन लोगों को

क्यों हुई। अगर ईश्वर ने संसार बनाया है और वही इसे चला रहा है तो विकासवाद ही ईश्वर की योजना है। और यह योजना एक बड़ी शानदार और बड़ी खूबसूरत योजना है। यदि विकासवाद के नियम को मान लिया जाए तो दुर्घटनाएँ भी जीवन की योजना का एक अंग है और सब से निम्नकोटि के प्राणी भी इस बड़े जीवन परिवार के अंग हैं। विकासवाद यह नहीं कहता कि मनुष्य सिर्फ एक ज्यादा चालाक बन्दर है। इस सिद्धान्त का कहना है कि दो खरब साल तक जीवन के विभिन्न रूपों की परीक्षा और उसमें सुधार होता रहा। जीवन रूपों की परीक्षा और उसमें सुधार होता रहा। जीवन रूपों की परीक्षा और उनमें सुधार का यह क्रम उस बड़ी तैयारी के लिए बराबर चलता रहा जो पृथ्वी पर, जीवन के रंगमंच पर उस मानव के आगमन के लिए हो रही थी जिसे हम आज जानते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टि से पृथ्वी पर मानव की उत्पत्ति :- वैज्ञानिक पृथ्वी पर मानव की उत्पत्ति के प्रमाण वे असंख्य जीवाश्म या कंकाल और पाषाण उपकरण हैं जो आज हमें मिट्टी के नीचे की परतों में बिखरे हुए मिल जाते हैं। फिर भी इनके आधार पर निश्चित रूप से यह बता पाना असंभव है कि मनुष्य की उत्पत्ति सर्व प्रथम कब हुई। पुरामानव वैज्ञानिकों ने अपनी शोधों के आधार पर बताया है कि मानव प्रथम स्तनियों (First Primates) का ही वंशज है। उनके अनुसार; आज से लगभग 65 मिलियन वर्ष पूर्व अफ्रीका के घने उष्णकटिबंधीय जंगलों में मानव की उत्पत्ति हुई, क्योंकि इसी क्षेत्र से प्रथम उच्च स्तनियों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इसके पश्चात् निरंतर उद्विकासीय प्रगति करते हुए अनेक विकसित प्रजातियाँ अस्तित्व में आई। उच्च स्तनियों के बाद नरवानरों (Apes) का आगमन हुआ। नरवानरों के पश्चात् के मानव उद्विकास क्रम में पाँच अवस्थाएँ दृष्टिगत होती हैं- आस्ट्रेलोपिथेकस, होमो हैबिलिस, होमो इरेक्टस, नियंडरथल और होमो सैपियंस। लगभग 40 लाख वर्ष पूर्व अफ्रीका में आस्ट्रेलोपिथेकस का उद्भव हुआ। यह पूरी तरह प्रकृति पर निर्भर था और फल-फल खाकर अपना पेट पालता था। तत्पश्चात होमो हैबिलिस या हैंडिमैन का होमो इरेक्टस या सीधा वानर लगभग उद्विकास क्रम में उत्पन्न हुआ, जो सीधे होकर अपने दो पैरों पर चलने-फिरने में सक्षम था। फलतः वह अफ्रीका से बाहर के क्षेत्रों में भी प्रव्रजन करने लगा। मानव उद्विकास की अगली कडी नियंडरथल मानव की थी, जिसने लगभग 1 लाख से 35 हजार वर्ष पूर्व तक अपनी उपस्थिति बनाए रखी। इस अवस्था में मानव सांस्कृतिक रूप से काफी विकास कर चुका था और स्थायीआवास, शिकार की उत्तम प्रणाली, अग्नि का प्रयोग और शवाधान आदि का जानकार हो गया था। लगभग 35 हजार वर्ष पूर्व आधुनिक मानव अर्थात् होमोसौपियंस का आगमन हुआ जो शारीरिक बनावट में अब तक का सबसे विकसित जीव था और बौद्धिक क्षमता में भी काफी सबल था। इसी की अत्यंत विकसित अवस्था होमो सैपियंस है, जो सुसंस्कृत और सुसभ्य जीवन बिताने लगी। धातुओं का प्रयोग, कृषिकार्य व पशुपालन, नगरों का विकास, राजनैतिक व सामाजिक संगठन आदि का भी उसने विकास किया। ग्रिफिथ टेलर मानव का मूल स्थान या उद्गम क्षेत्र (Craddle land) मध्य एशिया को मानते हैं, जहाँ से चारों दिशाओं में उसका क्रमशः प्रव्रजन होता गया, वह एशिया से बाहर निकलता गया। जब कोई नई प्रजाति अस्तित्व में आ गई तो उसने अपनी पूर्व की प्रजाति को बाहर की ओर धकेल दिया। इस प्रकार मध्य एशिया में पाई जाने वाली प्रजाति सबसे अधिक विकसित है, और हम इससे जैसे-जैसे दूर हटते जाएँगे, वहाँ अधिक पुरानी या कम विकसित-प्रजातियाँ दिखाई पड़ेगी। टेलर द्वारा दिए गए उपर्युक्त प्रजातीय वर्गीकरण में प्रजातियाँ जिस क्रम में सजाई गई हैं (बढ़ते हुए शीर्षदशना के अनुसार) वही क्रम मध्य एशिया से क्रमशः दूर बढ़ते जाने पर मिलने वाली प्रजातियों का है अर्थात् मध्य एशिया में मांगलिक प्रजाति मिलती है, जबकि यहाँ से दूर हटने पर क्रमशः अल्पाइन, नार्डक, मेडिटरेरिन, आस्ट्रेलॉयड, नीथो और निग्रटो मिलते जाते हैं। परन्तु इस सिद्धान्त का एक अपवाद नीग्रो और निग्रेटो प्रजातियाँ हैं, जो मध्य एशिया से सबसे दूर स्थित अमेरिका तक पहुँचने में असफल रहा हैं, जिसका कारण संभवतः उनके प्रवजन

ब्रह्माण्ड में मिला जल भण्डार :- (खोज पृथ्वी से 12 अरब प्रकाश वर्ष दूरी पर मिले क्वासर में धरती से 1400 खरब गुना ज्यादा पानी)

अमेरिकी खगोल वैज्ञानिकों ने अंतरिक्ष में अब तक सबसे बड़ा 'जल भंडार' खोजने का दावा किया है। चंद्रमा पर सितम्बर 2009 में पानी खोजने के बाद ये अब तक की सबसे बड़ी खोज है। अंतरिक्ष विज्ञानियों का दावा है कि ये भंडार पृथ्वी पर मौजूद जल से 1400 खरब गुना ज्यादा है और इसका घनत्व हमारे सूर्य से एक लाख गुना अधिक है। अंतरिक्ष में यह स्थान पृथ्वी से 12 अरब प्रकाश वर्ष दूर है।

कैलिफोर्निया के पासाडेनास्थित नासा जेट प्रोपल्शन लेबोरेट्री के वैज्ञानिक मैट ब्रैडफोर्ड ने बताया कि ये जल भण्डार एक विशाल ब्लैक हॉल के आसपास है। इसे क्वासर कहते हैं। इस स्थान पर भी पानी भाप रूप में ही मौजूद है। इस क्वासर का नाम है एपीएम 08279+5255, जिसमें जल भंडारण दिखाई पड़ रहा है।

क्या होता है क्वासर?

ऐसी खगोलीय वस्तु जो रेडियो वेव्स या किसी भी अन्य प्रकार की विद्युत-चुम्बकीय ऊर्जा उत्पादित करती हो। क्वासर आकाशगंगा के केन्द्र में पाए जाने वाले सबसे चमकीले पिंड होते हैं। ये अपने आसपास की वस्तुओं को तेजी से अपने में समा लेते हैं। इससे बड़े पैमाने पर ऊर्जा निकलती है।

खासियत

यह क्वासर हमारे सूर्य से 20 अरब गुना बड़ा है और 1000 खरब सूर्यों के बराबर ऊर्जा पैदा करता है।

किसने खोजा पानी

नासा के जेट प्रोपल्श लेबोरेट्री के प्रमुख शोधकर्ता मैट ब्रेडफोर्ड व उनके साथी

कैसे खोजा

ब्रेडफोर्ड की टीम ने वर्ष 2008 में ही इस क्वासर पर अध्ययन शुरू कर दिया था। वे 'जेड-स्पेक' नामक 33 फीट लंबे टेलिस्कोप से इसे देख रहे थे। ये टेलीस्कोप हवाई स्थित माउना-की पहाड़ी में कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में लगा है। इसके अलावा कम्बाइंड एरे फॉर रिसर्च इन मिलीमीटर वेव एस्ट्रोनॉमी से मदद भी मिल रही थी। इसके अलावा कॉल्टेक फ्रांस की एल्प पहाड़ियों पर स्थित प्लेट्यू डे बुरे इंटरफेरोमीटर से पानी के आंकड़े मिल रहे थे। इस पूरे प्रोजेक्ट को नासा फंडिंग कर रहा था।

क्वासर : वातावरण का असर

1. ब्रैडफोर्ड ने कहा कि इस क्वासर का वातावरण अद्वितीय है जिसमें बहुत बड़ी मात्रा में जल पैदा होता है। यह इसका उदाहरण है कि जल पूरे ब्रह्माण्ड में है।

2. क्वासर के चारों तरफ पानी भाप के रूप में और सैकड़ों प्रकाशवर्ष में फैले हुए हैं। ये क्वासर एक्स-रे और इन्फ्रारेड रेडिएशन के बुलबुलों से घिरा हुआ है जिससे आसपास के गैसों का तापमान 53 डिग्री से. हो गया है। ये गैस पृथ्वी के वातावरण से 300 गुना कम घनत्व का है, लेकिन अपनी आकाशगंगा से 10 से 100 गुना ज्यादा घनत्व रखता है।

जाना मुश्किल है: इसरो

इसरो के वैज्ञानिक एस.सतीश ने बताया कि ये बड़ी उपलब्धि है। हालांकि वर्तमान टेक्नोलॉजी से इतनी दूर जा पाना मुमकिन नहीं है, लेकिन ये शोध इसे प्रमाणित करता है कि ब्रह्माण्ड में अन्य स्थानों पर भी पानी है।

मंगल पर रोबोट भेजने की तैयारी

जीवन होने की संभावना का करेगा विश्लेषण

कैप कैनेवरल नासा अपने स्पेस शटल मिशन के खत्म होने के बाद अब मंगल

मिशन का मुख्य उद्देश्य मंगल ग्रह पर जैविक गुणों का विश्लेषण करना होगा। इससे मंगल ग्रह पर जीवन होने की संभावना का पता लगाया जा सकेगा। क्यूरियोसिटी नामक इस रोबोट में 10 तकनीकी उपकरण भेजे जाएंगे। ये मंगल पर जीवन की संभावना का पता लगाएंगे। दरअसल मंगल में धरती जैसी समानताएँ हैं।

मंगल की कक्षा में घूम रहे स्पेस क्राफ्ट की मदद से वैज्ञानिकों ने मंगल पर 60 जगह चिन्हित की थी जहाँ क्यूरियोसिटी को उतारा जा सकता है। इनमें से इसे गेल क्रेटर के पहाड़ों में उतारने का फैसला किया गया है। इसका कारण यह है कि उस जगह पर क्ले और सल्फेट नमक होने की संभावना है। फ्लोरिडा के कैनेडी स्पेस सेंटर पर अब क्यूरियोसिटी के लांच की तैयारियाँ चल रही है।

अन्यान्य जीव सम्बन्धी खोज के साथ-साथ इस जल सम्बन्धी खोज से एक सहज परिकल्पना का जन्म होता है कि ब्रह्माण्ड में अन्यन्त्र भी जीव होना संभव है। क्योंकि विज्ञान के अनुसार जीवों की उत्पत्ति-स्थिति-समृद्धि के लिएजल की भी आवश्यकता है। हाँ जैन सिद्धान्तानसार हर जीवों के लिए जल की आवश्यकता नहीं है। प्रायः वैज्ञानिकों को जीवों के लिए जल की आवश्यकता या कथंचित कहे तो अनिवार्यता इसलिए अनुभव होता है कि वे अभी तक विश्व की सम्पूर्ण जीव प्रजातियों के गुण-धर्म-स्वभाव को परीक्षण पूर्वक नहीं जान पाये हैं। परन्तु अभी-अभी कुछ वैज्ञानिक इस क्षेत्र में प्रयासरत हैं। उनके मार्गदर्शन एवं सहयोग के लिए भी इस कृति की रचना हुई है।

> ◆ मौन से अच्छा भाषण दूसरा नहीं। फिर भी बोलना पड़े तो जहाँ एक शब्द से काम चलता हो वहाँ दूसरा शब्द न बोलें।
>
> —महात्मा गाँधी

अध्याय - VI

धर्म-दर्शन-विज्ञान की अपेक्षा शाश्वतिक सिद्धान्त

जैन धर्म में तो आत्मा के साथ-साथ अन्य 5 द्रव्यों की शाश्वतिक मान्यता है ही, तो अन्य कुछ धर्म-दर्शन में भी आत्मा की अजर-अमरता को स्वीकार किया गया है। महर्षि कणाद ने भी वैशेषिक दर्शन में आत्मादि विश्व के मूलभूत पदार्थ के साथ-साथ 'नित्य परिमण्डलम्' सूत्र में परमाणु को नित्य/शाश्वतिक एवं परिमण्डलाकार कहा है। आधुनिक भौतिक विज्ञान तो जीव की सिद्धि करने में असमर्थ रहा है परन्तु भौतिक ऊर्जा संरक्षण सिद्धान्त के अनुसार भी विज्ञान अविनाशी/शाश्वतिक सिद्धान्त को मानता है जो कि विज्ञान का एक मौलिक एवं महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। यथा-

द्रव्य का लक्षण - सद्द्रव्य लक्षणम्। (29) (स्वतंत्रता के सूत्र पृ.320)

(The differentia of a substance of Reality is Sat, isness or being.) द्रव्य का लक्षण सत् है।

यह विश्व शाश्वतिक है क्योंकि इस विश्व में स्थित समस्त द्रव्य भी शाश्वतिक है। आधुनिक विज्ञान में भी सिद्ध हो गया है कि शक्ति या मात्रा कभी भी नष्ट नहीं होती है परन्तु परिवर्तन होकर अन्य रूप हो जाती है। विज्ञान में कहा भी है।

Matter and energy neither be created nor destroyed. Each can be completely changed into another form or into one another.

विज्ञान के मूलभूत सिद्धान्त हैं कि किसी नई वस्तु की सृष्टि नहीं होती है एवं कोई वस्तु सम्पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होती, केवल उसके आकार और पर्याय में परिवर्तन होता है

दवियदि गच्छति ताइं ताइं सब्भाव पज्जयाइं जं।

and modifications, and what is not different from satta or substance, that is called Dravya by the all knowing.

उन-उन सद्भावों-पर्यायों को जो द्रवित होता है, प्राप्त होता है, उसे द्रव्य कहते हैं- जो कि सत्ता से अनन्यभूत है।

दव्वं सल्लक्खणयं उप्पादव्ययधुवत्तसंजुत्तं।
गुणं पज्जयासयं वा जं तं भण्णति सव्वण्हू।। (10)

Whatever has substantiality, has the jorus tried of birth, death and permanence, and is the substratum of qualities and modes, is Dravya. So say the all knowing.

जो सत् लक्षण वाला है, जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य संयुक्त है अथवा जो गुण-पर्यायों का आश्रय-आधार है, उसे सर्वज्ञ भगवान् द्रव्य कहते हैं।

प्रवचन सार में भी कुन्दकुन्द देव ने कहा है-

सब्भावो हि सहावो गुणेहिं सगपज्जएहिं चित्तेहिं।
दव्वस्स सव्वकालं उप्पादव्ययधुवत्तेहिं।। (96) प्रवचनसार पृ.227

अनेक प्रकार के गुण तथा अनेक प्रकार की अपनी पर्यायों से और उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से सर्वकाल में द्रव्य का जो अस्तित्व है वह वास्तव में स्वभाव है।

बाइबिल के पूर्वार्द्ध में वर्णित ईश्वर सम्बन्धी धारणा से पुष्टि होती है कि ईश्वर एक है और वह अनादि, अनन्त और सर्वशक्तिमान है। बाइबिल के उत्तरार्द्ध से पता चलता है कि ईसा ने ईश्वर के बारे में एक नया विचार दिया कि एक ही ईश्वर में तीन व्यक्ति है- पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा। तीनों समान रूप से अनादि अनन्त और सर्वशक्तिमान है क्योंकि वे एक ही तत्त्व के अंश है इसीलिए ईसाई धर्म परस्पर प्रेम-भावना पर अधिक बल देता है।

आत्मचेतना के शाश्वतकाल में जीवन और मृत्यु रात्रि की तरह घटित होते रहते हैं। ऋग्वेद (10/16/5) में इसी तत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा गया है-

अर्थात् मृत्यु के उपरान्त जब पञ्चतत्त्व अपने-अपने तत्त्व में मिल जाते हैं, तब जीवात्मा बचा रहता है और यह जीवात्मा ही दूसरी देह धारण करता है।

पश्चिमी तत्त्वज्ञ प्लेटो ने पुनर्जन्म की व्याख्या 'मृत्यु तथा मरण का प्रदीर्घ अभ्यास' (A long study of death and dying) कहकर की है। प्लूटार्क तथा सोलोमन भी पुनर्जन्म पर आस्था रखते थे। पायथागोरस का विचार था कि साधुता का पालन करने पर आत्मा का जन्म उच्चतर लोकों में होता है। दुष्कर्मी आत्माएँ निम्न पशु योनि आदि में आती हैं।

प्रो.एस.सी. नारथ्राप कहते हैं कि आत्मा के अमरत्व का निषेध करने वाले पाश्चात्य जड़वादी भी भौतिक शास्त्रांतर्गत शक्ति तथा अचेतन द्रव्य की अध्यक्षता को मानकर एक तरह से अमरत्व की स्वीकृति ही देते हैं। नारथ्राप के अलावा अन्य आधुनिक वैज्ञानिक भी मृत्यु के बाद भी आत्मा के अस्तित्व को स्वीकारते हैं।

पुलिट्जर पुरस्कार विजेता विलियम सरोपन ने अपनी पुस्तक 'दि ह्युमन कॉमेडी' में लिखा है कि हममें से कदाचित् ही कोई मृत्यु के विषय में सोचता है। यदि सोचता भी है तो यही कि आगे क्या होता है? किसी के लिए मृत्यु ही सबका अवसान है तो कोई स्वर्ग और नरक में विश्वास रखता है। कई व्यक्तियों के अनुसार यह जीवन अनेक बीते हुए जन्मों में से एक है और भविष्य में भी यह क्रम चलता रहेगा। विश्व में ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है, जो अपनी पूरी शक्ति के साथ सदा जीवित रहना चाहते हैं। विज्ञान ने इस रहस्य को काफी हद तक जानने की कोशिश की है।

भौतिकी के वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्सटीन ने स्वीकार किया था। चेतना का यथेष्ट स्वरूप विवेचन भौतिक घटनाओं के रूप में नहीं किया जा सकता। इस महान् वैज्ञानिक ने कहा था कि विज्ञान के स्वयंसिद्ध विधानों को मानव जीवन पर लागू करने का वर्तमान फैशन न केवल पूरी तरह गलत है, अपितु यह ग्लानि योग्य भी है। हालाँकि प्रत्यक्ष को ही प्रमाण जाता है, परन्तु जब मनुष्य भौतिक

पुनर्जन्म का सिद्धान्त हमारे अतीत, वर्तमान और अनागत जन्मों से सम्बन्धित सूक्ष्म विधानों की सांगोपांग व्याख्या करता है। यदि कोई पुनर्जन्म को समझना चाहता है तो उसे ऊर्जा के रूप में चेतना की आधारभूत अवधारणा को उन भौतिक तत्त्वों से भिन्न और उत्कृष्ट स्वीकार करना पड़ेगा, जिनसे भौतिक शरीर का निर्माण होता है। आत्मसत्ता के संकल्प एवं कर्म ही प्रत्येक मनुष्य की प्रगति या पतन के आधार बनते हैं। मनुष्य की अपनी इच्छाशक्ति एवं उसके कर्म ही जीवन प्रवाह के नए-नए मोड़ो का कारण बनते हैं। यह इच्छा ही कर्म का स्वरूप गढ़ती है। कर्मफल एवं संस्कार प्रारब्ध का निर्माण करते हैं और प्रारब्ध पुनर्जन्म के स्वरूप का निर्धारण करते हैं। गीताकार (8/6) इसी तथ्य को व्यक्त करते हुए कहते हैं-

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।

तं तमैवेति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।

अर्थात् हे कुन्तीपुत्र! यह मनुष्य अन्तकाल में जिस-जिस भाव का स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागता है, अन्तकाल में भी प्रायः उसी का स्मरण होता है।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिवाः।

न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्।। (गीता पृ.28)

क्योंकि वास्तव में देखने पर मैं तू या ये राजा किसी काल में नहीं थे अथवा भविष्य में नहीं होंगे, ऐसा कुछ नहीं है।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।।

देहधारी को जैसे इस शरीर में कौमार, यौवन और जरा की प्राप्ति होती है, वैसे ही अन्य देह भी मिलती है। उसमें बुद्धिमान पुरुष को मोह नहीं होता।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।।

ॐ पूर्णमिदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावाशिष्यते।। (उपनिषद्)

सच्चिदानन्द घनस्वरूप वह परब्रह्म सब प्रकार से पूर्ण है, यह पूर्ण है, उस पूर्ण से ही यह पूर्ण उत्पन्न हुआ है, पूर्ण के पूर्ण को निकाल लेने पर पूर्ण ही बचा रहता है।

न जायते म्रियते वा कदाचित्-नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। (20)

यह कभी जन्मता नहीं है, मरता नहीं है। यह था और भविष्य में नहीं होगा, ऐसा भी नहीं है। इसलिए यह अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत है, पुरातन है, शरीर का नाश होने से इसका नाश नहीं होता।

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।

न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते।। (14) गीता पृ.66

जगत् का प्रभु न कर्त्तापन से रचता है, न कर्म रचता है, न कर्म और फल का मेल साधता है। प्रकृति ही सब करती है।

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।

अज्ञानेनावृत्तं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।। (15)

ईश्वर किसी के पाप या पुण्य को नहीं ओढ़ता। अज्ञान द्वारा ज्ञान के ढक जाने से लोग मोह में फँसते हैं।

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।

भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः।। (3) पृ.86

जो सर्वोत्तम अविनाशी है वह ब्रह्म है; प्राणिमात्र में अपनी सत्ता से जो रहता है वह अध्यात्म है और प्राणीमात्र को उत्पन्न करने वाला सृष्टि व्यापार कर्म कहलाता है।

प्रकृति और पुरुष दोनों को अनादि जान। विकार और गुणों को प्रकृति से उत्पन्न हुआ जान।

कार्यकरकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।

पुरुषः सुख दुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।। (120)

कार्य और कारण का हेतु प्रकृति कही जाती है और पुरुष सुख-दुःख के भोग में हेतु कहा जाता है।

विज्ञान की अपेक्षा शाश्वतिक सिद्धान्त के उदाहरण-

जिसे हम कोयले का जलना कहते हैं उसे रसायन विज्ञान की भाषा में निम्नांकित रासायनिक क्रिया द्वारा व्यक्त करते हैं।

$C + O_2$ -----> CO_2 + ऊर्जा

(कार्बन) + (ऑक्सीजन) ---> (कार्बनडाई ऑक्साइड) + ऊर्जा

भौतिक विज्ञान द्वारा इस क्रिया का विश्लेषण करें तो बड़ा विचित्र लगेगा। जरा पता लगायें कि कौन जला? कार्बन (C) में 6 प्रोट्रॉन, 16 न्यूट्रॉन एवं 16 इलेक्ट्रॉन थे। अब कार्बन डाई ऑक्साइड में 22 प्रोट्रॉन, 22 न्यूट्रॉन एवं 22 इलेक्ट्रॉन हैं, अर्थात् जलने के बाद भी प्रोट्रॉन, न्यूट्रॉन एवं इलेक्ट्रॉन की गिनती उतनी ही रही। तो फिर कौन जला?

इसका उत्तर यह है कि स्थूल रूप से यह कहा जा सकता है कि कार्बन जला है किन्तु सूक्ष्म रूप से जाँच करने पर पता चलता है कि केवल विभिन्न इलेक्ट्रॉन, प्रोट्रॉन एवं न्यूट्रॉनों के पड़ोसी बदले हैं।

अनेकान्तवाद की भाषा के बिना इस प्रश्न का समुचित उत्तर सम्भव नहीं होगा। क्योंकि जलना स्पष्ट दिखाई देता है अतः विज्ञान कितना ही विश्वास दिलाए कि सारे के सारे प्रोट्रॉन, न्यूट्रॉन एवं इलेक्ट्रॉन सुरक्षित हैं, एक सामान्य व्यक्ति वैज्ञानिक की बात को नहीं स्वीकारेगा। उसे स्याद्वाद का आश्रय लेकर यह

ऊर्जा का उत्पादन - एक बाँध पर पानी जब उच्च स्तर से नीचे गिरता है तो गुरुत्वाकर्षण के कारण पानी में गति आ जाती है। यह गतिज ऊर्जा (Kinitic Energy) यन्त्रों द्वारा विद्युत ऊर्जा (Electrical Energy) में बदल जाती है।

एक परमाणु बिजलीघर में यूरेनियम के परमाणुओं के टूटने में प्रोट्रॉन एवं न्यूट्रॉन ऊर्जा के उच्च स्तर से निम्न स्तर में आ जाते हैं। इस प्रक्रिया में द्रव्यमान में निहित ऊर्जा का एक अंश ऊष्मा ऊर्जा में बदलता है। यन्त्रों के द्वारा ऊष्मा-ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में बदला जाता है।

अनन्त गुण धर्मात्मक पदार्थ- विश्व में जितने द्रव्य पाये जाते हैं उनमें केवल 1,2 संख्यात, असंख्यात धर्म ही नहीं रहते हैं, अपितु उनमें अनन्त धर्म रहते हैं। द्रव्य-अनन्त धर्म, अनन्त गुण, अनन्त पर्यायों का पिण्ड स्वरूप है। उपरोक्त धर्मादि को छोड़कर किसी भी द्रव्य का अस्तित्व भी नहीं रह सकता है जैसा कि आचार्य ने कहा है-

अनन्तधर्मात्मकमेव तत्त्वमतोऽन्यथा सत्त्वमसूपपादम्।

इति प्रमाणान्यपि ते कुवादि कुरंग संत्रासनसिंहनादाः।।

प्रत्येक पदार्थ में अनन्त धर्म मौजूद हैं। पदार्थों में अनन्त धर्म माने बिना वस्तु की सिद्धि नहीं होती। अतएव आपके प्रमाण कुवादी रूप मृगों को डराने के लिए सिंह की गर्जना के समान हैं। वस्तु में यदि अनन्त धर्म नहीं होंगे तब वस्तु का अस्तित्व ही नहीं होगा।

जं वत्थुं अणेयतं तं चि य कज्जं करेदि णियमेण।

बहु धम्म जुदं अत्थं कज्जकरं दीसदे लोए।।

जो वस्तु अनेकान्तात्मक अर्थात् अनेक धर्म वाली है उसी के नियम से अर्थ क्रियाकारित्व रूप कार्य संसार में दिखाई देता है किन्तु एकान्त धर्मयुक्त द्रव्यों का संसार में अर्थक्रिया कारित्व रूप कार्य संसार में दिखाई देता है।

द्रव्य का लक्षण - सद्द्रव्य लक्षणम् (29)

The differentia of a substance or reality is sat is ness or being. द्रव्य का लक्षण सत् है। (स्वतंत्रता के सूत्र, पृ.32)

यह विश्व शाश्वतिक है क्योंकि इस विश्व में स्थित समस्त द्रव्य भी शाश्वतिक है। आधुनिक विज्ञान में भी सिद्ध हो गया है कि ऊर्जा वा मात्रा कभी भी नष्ट नहीं होती है परन्तु परिवर्तन होकर अन्य रूप हो जाती है। विज्ञान में कहा भी है-

Matter and energy neither be created nor be destroyed, each can be completely changed into another from or into one another.

विज्ञान के मूलभूत सिद्धान्त है कि किसी नई वस्तु की सृष्टि नहीं होती है एवं कोई वस्तु सम्पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होती। केवल उसके आकार और पर्याय में परिवर्तन होता है।

दवियदि गच्छति ताईं ताईं सब्भाव पज्जयाइं जं।
दवियं तं मण्णगंते अणण्ण भूदं तू सुत्तादो।।

What hows or maintains its identity through its several qualities and modifications, and what is not different from satta or substance, that is called Dravya by the all knowing.

उन-उन सद्भाव पर्यायों को जो द्रवित होता है- प्राप्त होता है, उसे द्रव्य कहते हैं- जो कि सत्ता अनन्यभूत है।

दव्वं सल्लक्खणयं उप्पादव्ययं धुवत्तसंजुत्तं।
गुण पज्जयासयं वा जं तं मण्णंति सव्वण्हू।। (10)

Whatever has substantiality has the jorus tried or birth, death and permanence, and is the substratum of qualities and modes, is Dravya, so say the all knowing.

Substance is possessed of attributes and modifications.

द्रव्य, गुण और पर्यायों का एक अखण्ड पिण्ड स्वरूप है। गुण को सामान्य, उत्सर्ग, अन्वय भी कहते हैं, पर्याय को विशेष भेद भी कहते हैं। ऐसे सामान्य और विशेष से सहित द्रव्य होता है। पञ्चास्तिकाय में कहा भी है-

पज्जयविजुदं दव्वं दव्व विजुत्त य पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूविंति।। (12)

पर्यायों से रहित द्रव्य और द्रव्य रहित पर्यायें नहीं होती हैं। दोनों का अनन्यभाव श्रमण प्ररूपित करते हैं।

जिस प्रकार दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि से रहित गोरस नहीं होता है उसी प्रकार पर्यायों से रहित द्रव्य नहीं होता, जिस प्रकार गोरस से रहित दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि नहीं होते, उसी प्रकार द्रव्य से पर्यायें नहीं होती। इसलिए यद्यपि द्रव्य और पर्यायों का आदेशवशात् विवक्षावश कथञ्चित भेद है तथापि वे एक अस्तित्व में नियम (दृढ़ रूप से स्थित) होने के कारण अन्योन्य वृत्ति नहीं छोड़ती, इसलिए वस्तु रूप से उनका अभेद है।

दव्वेण विणा ण गुणा, गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि।
अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा।। (13)

द्रव्य के बिना गुण नहीं होते, गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता, इसलिए द्रव्य और गुणों का अव्यतिरिक्त भाव, अनन्य भाव है।

गुणपर्ययवद्द्रव्यम ।।(27)।।

सूत्रार्थ- गुण- पर्याय वाला द्रव्य है। (आ.प.पृ.72-79)

गुण इदि दव्वविहाणं दव्वविकारो हि पज्जवो भणिदो।
तोहे अणूणं दव्वं अजुरपसिद्धं हवे णिच्चं।।

अर्थ- द्रव्य में भेद करने वाले धर्म को विशेष गुण और द्रव्य के विकार को

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से जुदा होता है वह विशेष गुण है। इस गुण के द्वारा द्रव्य का अस्तित्व सिद्ध होता है। यदि भेदक विशेष गुण न हो तो द्रव्य में सांकर्य हो जाय।

द्रव्यों के सामान्य व विशेष स्वाभावों का कथन -

स्वभावाः कश्यन्तें- अस्तिस्वभावः, नास्तिस्वभावः, नित्य स्वभावः, अनित्यस्वभावः, एकस्वभावः, अनेकस्वभावः, भेदस्वभावः, अभेदस्वभावः, भव्यस्वभावः, अभव्यस्वभावः परमस्वभावः एते द्रव्याणामेकादश सामान्यस्वभावः, चेतन स्वभावः, अचेतन स्वभावः, मूर्तस्वभावः, अमूर्तस्वभावः, एकप्रदेश स्वभावः, अनेकप्रदेश स्वभावः, विभाव स्वभावः, शुद्ध स्वभावः, अशुद्ध स्वभावः, उपचरितस्वभाव एते द्रव्याणां दश विशेषस्वभावः ।।28।।

सूत्रार्थ - स्वभावों का कथन किया जाता है - 1. अस्तिस्वभाव 2. नास्ति स्वभाव 3. नित्य स्वभाव 4. अनित्य स्वभाव 5. एक स्वभाव 6. अनेक स्वभाव 7. भेदस्वभाव 8. अभेद स्वभाव 9. भव्य स्वभाव 10. अभव्य स्वभाव 11. परम स्वभाव - ये ग्यारह द्रव्यों के सामान्य स्वभाव है;

1. चेतन स्वभाव 2. अचेतन स्वभाव 3. मूर्त स्वभाव 4. अमूर्त स्वभाव 5. एक प्रदेश स्वभाव 6. अनेक प्रदेश स्वभाव 7. विभाव स्वभाव 8. शुद्ध स्वभाव 9. अशुद्ध स्वभाव 10. उपचरित स्वभाव - ये देश, द्रव्यों के विशेष स्वभाव है।

विशेषार्थ - द्रव्यों के स्वरुप को स्वभाव कहते है। तत्काल पर्याय को प्राप्त वस्तु भाव कहलाती है। अथवा वर्तमान पर्याय से युक्त द्रव्य को भाव कहते हैं।

प्रश्न - गुणाधिकार कहा जा चुका है फिर स्वभाव अधिकार को पृथक् कहा जा रहा है। इसमें क्या रहस्य है?

उत्तर - जो गुण हैं वह गुणी में ही प्राप्त होते हैं।

प्रश्न - गुण गुणी में किस प्रकार प्राप्त होते हैं?

प्रश्न - स्वभाव गुण और गुणी में किस प्रकार प्राप्त होते हैं?

उत्तर - गुण और गुणी अपनी-अपनी पर्याय से परिणमन करते हैं। जो परिणति अर्थात् पर्याय है वह ही स्वभाव है। गुण और स्वभाव में यह विशेषता है। इसलिए स्वभाव का स्वरूप पृथक् लिखा गया है।

1. जिस द्रव्य का जो स्वभाव है, उस अपने स्वभाव से कभी च्युत नहीं होना अस्ति स्वभाव है, जैसे अग्नि अपने दाह स्वभाव से कभी च्युत नहीं होती।

2. परस्वरुप नहीं होने के कारण 'नास्तिस्वभाव' है। (सूत्र 107)

3. अपनी अपनी नाना पर्यायों में 'यह वही है' इस प्रकार द्रव्य का हमेशा सद्भाव पाया जाना 'नित्यस्वभाव' है। (सूत्र 108)

4. उस द्रव्य का अनेक पर्याय रूप परिणत होने से 'अनित्यस्वभाव' है।

5. सम्पूर्ण स्वभावों का एक आधार होने से 'एक स्वभाव' है।

6. एक ही द्रव्य के अनेक स्वभावों की उपलब्धि होने से 'अनेकस्वभाव' है।

7. गुण गुणी आदि में संज्ञा, सँख्या, लक्षण और प्रयोजन की अपेक्षा भेद होने से भेद स्वभाव है।

8. गुण-गुणी आदि में प्रदेश भेद नहीं होने से अथवा एक स्वभाव होने से 'अभेद स्वभाव' है।

9. भाविकाल में आगे की (भावी) पयार्यों के होने योग्य है अथवा अपने स्वरूप से परिणमन करने योग्य है अतः भव्य स्वभाव है।

10. काल त्रय में भी पीछे की (भूत) पर्यायाकार होने के अयोग्य है अथवा पर-द्रव्य स्वरूपाकार होने के अयोग्य है अतः 'अभव्यस्वभाव' है।

11. पारिणामिक भाव की प्रधानता से 'परमस्वभाव' है।

ये ग्यारह, सामान्य स्वभाव हैं। विशेष दस स्वभावों में से 1. चेतन स्वभाव, 2. अचेतन स्वभाव, 3. मूर्तस्वभाव, 4. अमूर्तस्वभाव - इन चार स्वभावों की

5. अखण्डपने की अपेक्षा 'एक प्रदेश' स्वभाव है।

6. भेदपने की अपेक्षा 'अनेक-प्रदेश' स्वभाव है।

7. स्वभाव से अन्यथा होना 'विभाव' स्वभाव है।

8. कैवल्य अर्थात् शुद्ध भाव को 'शुद्ध' स्वभाव कहते है।

9. शुद्ध स्वभाव से विपरीत 'अशुद्ध' स्वभाव है।

10. स्वभाव का अन्यत्र उपचार करना 'उपचरित' स्वभाव है, जैसे मार्जार (बिलाव) को सिंह कहना। वह उपचरित स्वभाव दो प्रकार का है। 1. कर्मज, 2. स्वाभाविक। जीव के मूर्तत्व और अचेतनत्व उपचरित-कर्मज-स्वभाव है। सिद्धों के सर्वज्ञता और सर्वदर्शिता स्वभाविक- उपचरित स्वभाव है। क्योंकि अनुपचरित नय से जीव के अमूर्त व चेतन स्वभाव हैं और सिद्ध आत्मज्ञ है।

जीव पुद्गलयोरेकविंशतिः ।।29।।

जीव में और पुद्गल में उपर्युक्त इक्कीस इक्कीस (11 सामान्य और 10 विशेष) स्वभाव पाये जाते हैं।

जीव में इक्कीस भाव बतलाये गयें हैं जिससे स्पष्ट हो जाता है कि जीव में अचेतन स्वभाव और मूर्तस्वभाव भी है। इसी प्रकार पुद्गल में भी इक्कीस स्वभाव कहे गये हैं जिससे स्पष्ट है कि पुद्गल में चेतन और अमूर्त स्वभाव भी है।

शंका- छह द्रव्यों में जीव चेतन स्वभाव वाला और शेष पाँच द्रव्य (पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, कालद्रव्य) अचेतन स्वभाव वाले है। यदि जीव में भी अचेतन स्वभाव मान लिया जाएगा तो जीव में और अन्य पाँच द्रव्यों में कोई अन्तर नहीं रहेगा?

समाधान - जीव में अचेतन धर्म दो अपेक्षा से कहा गया है। जीव में अनन्त गुण है। उनमे से चेतन गुण तो चेतन रूप है, अन्य गुण चेतन रूप नहीं है क्योंकि एक गुण में दूसरा गुण नहीं होता हैं। 'द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः।।(5/41)' यह स्पष्ट हो जाता है कि एक गुण अन्य गुणों से रहित होता है। यदि चेतन गुण में अतिरिक्त अन्य गुणों को भी चेतन रूप मान लिया जाए तो संकरदोष आ जायेगा चेतन के अतिरिक्त अन्य गुणों के अभाव का प्रसंग आ जाएगा। इसलिए जीव में चेतनगुण के अतिरिक्त अन्य गुण चेतन रूप नहीं है अर्थात् अचेतन है। श्री अकलंक देव ने स्वरूप सम्बोधन में कहा भी है -

प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः।
ज्ञान दर्शनतरत्तस्माच्चेतना चेतनात्मकः।।3।।

अर्थ :- प्रमेयत्व आदि धर्मों की अपेक्षा आत्मा अचित् है और ज्ञान, दर्शन की अपेक्षा से चिदात्मक है। अतएव आत्मा चेतनात्मक भी है। और अचेतनात्मक भी है।

2. जीव अनादिकाल से कर्मों से बंधा हुआ है। उन कर्मों ने जीव का चेतनगुण घात रखा है। कहा भी है -

का वि अउव्वा दीसदि पुग्गल-दव्वस्स एरिसी सत्ती।
केवल-णाण सहावो विणासिदो जाई जीवस्स।।(211) (स्वा.का.अ.)

अर्थ- पुद्गल द्रव्य की कोई ऐसी अपूर्व शक्ति है, जिससे जीव का केवलज्ञान -स्वभाव भी नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार जितने अंशों में चेतनगुण का घात हो रहा है, उतने अंशों में अचेतनभाव है। जीव के पाँच स्वतत्त्व भावों में से एक औदयिक भाव है, जिसके इक्कीस भेदों में से एक अज्ञान (अचेतन) भी भेद है। कहा भी है-

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदियक-परिणामिकौ च ।।1।। गति कषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्ध लेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकषड्भेदाः ।।6।। (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय 2)

इस प्रकार तत्त्वार्थसूत्र में भी अज्ञान (अचेतन) भी जीव का स्वतत्त्व भाव कहा गया है। क्योंकि जीव का यह अचेतन भाव कर्मों के [illegible]

''जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेणा चेतनस्वभावः'' (आलापद्धति)

इसी प्रकार कर्मबन्ध के कारण जीव मूर्तरूप परिणमन कर रहा है।

स्पर्शरसगंधवर्णसद्भावस्वभावं S मूर्तं। स्पर्शरसगंधवर्णऽभवा,स्वभावममूर्त। अमूर्तः स्वरूपेण जीवः पररूपावेशान्मूर्तोऽपि।

अर्थ - स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण का सद्भाव जिसका स्वभाव है वह अमूर्त है; जीव स्वरूप से अमूर्त है किन्तु पररूप से अनुरक्त होने की अपेक्षा मूर्त भी है।

बंध पडि एयत्तं लक्खणदो हवइ तस्स णाणत्तं।

तम्हा अमुत्तिभावोऽणेयंतो होइ जीवस्स।। (स.सि.2/7)

अर्थ - आत्मा और कर्मबन्ध की अपेक्षा से एक हैं तो भी लक्षण की अपेक्षा वह भिन्न है। इसलिए जीव का अमूर्तिक भाव अनेकान्त रूप है। वह बंध की अपेक्षा से मूर्त है और स्वभाव अपेक्षा से मूर्त नहीं है।

'कम्म सम्बन्धवसेण पोग्गलभावमुवगयजीव दव्वाणं च पच्चक्खेण परिच्छित्तिं कुणइ ओहिणाणं।' (पु.1 पृ.43)

अर्थ - कर्म के सम्बन्ध से पुद्गलभाव (मूर्तभाव) को प्राप्त हुए जीवों को जो प्रत्यक्ष रूप से जानता है उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

जीव में यह मूर्त भाव पौद्गालिक कर्मों के सम्बन्ध से आया है इसलिए जीव में यह मूर्तभाव असद्भूत - व्यवहारनय का विषय है।

'जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारे मूर्तस्वभावः' -अर्थात् असद्भूत- व्यवहार नय से जीव के भी मूर्त स्वभाव है।

पुद्गल में चेतन स्वभाव कहने का कारण यह है कि पौद्गलिक कर्म आत्म परिणामों से अनुरंजित होने के कारण कथंचित् चैतन्य है किन्तु पुद्गल द्रव्य स्वभाव की अपेक्षा अचेतन है। कहा भी है -

'पौरूषेयपरिणामानुरञ्जितत्वात् कर्मणःस्याच्चैतन्यम् पुद्गल द्रव्यादेशाच्च

पुद्गलद्रव्य की दृष्टि से वह अचेतन हैं।

आत्मा पुद्गल द्रव्य से भिन्न दूसरा द्रव्य है। क्योंकि आत्म परिणामों से अनुरंजित होने के कारण पुद्गल में चेतनभाव है अतः यह असद्भूत व्यवहार नय का विषय है। कहा भी है-

'असद्भूतव्यवहारेण कर्म नोकर्मणोरपि चेतनस्वभावः।' (आ.प.160)

अर्थ- असद्भूत व्यवहार से कर्म नोकर्म के भी चेतन स्वभाव है।

'पौरूषेयपरिणामानुरञ्जितत्वात् कर्मणःस्याच्चैतन्यम्।'

अर्थ- पौद्गालिक कर्म पुरूष (जीव) के परिणामों से अनुरंजित होने के कारण कथंचित् चेतन है।

'सह चित्तेनात्मना वर्तते इति सचित्तं जीवशरीरत्वेनावस्थितं पुद्गलद्रव्यं।'

अर्थात्- इस आत्मा के साथ जो पुद्गल पदार्थ रहता है वह सचित्त है। जीव का शरीर बनकर जो पुद्गल रहता है वह सचित्त है।

एइंदियादिदेहा जीवा ववहारदो य जिणदिट्ठा।

हिंसादिसु जइ पापं सव्वत्थवि किं ण ववहारो।। (294)

एकेन्द्रिय आदि का शरीर है, ऐसा जिनेन्द्र ने व्यवहार से कहा है। यदि हिंसा आदि में पाप है तो सर्वत्र व्यवहार का प्रयोग क्यों न हो? अर्थात् व्यवहार सत्य है, उसका सर्वत्र प्रयोग होना चाहिए।

इस प्रकार कर्म, नोकर्म के भी चेतनस्वभाव है किन्तु वह निजस्वभाव नहीं है। जीव से बंध की अपेक्षा उनमें चेतनस्वभाव है जो विजात्यसद्भूत व्यवहार उपनय का विषय है।

परमभावग्राहकेण कर्मनोकर्मणोरचेतन स्वभावः ।।(161)

सूत्रार्थ- परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा कर्म, नोकर्म के अचेतन स्वभाव है।

परमभावग्राहकेण कर्मनोकर्मणोमूर्त्त स्वभावः ।।(163)

है। अतः कर्म, नोकर्म के मूर्तस्वभाव परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय का विषय है।

जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेण मूर्तस्वभावः ।।(164)

सूत्रार्थ- असद्भूतव्यवहार- उपनय की अपेक्षा जीव के भी मूर्तस्वभाव है।

परमभावग्राहकेण पुद्गलं विहाय इतरेषाममूर्त स्वभावः ।।(165)

सूत्रार्थ- परमभाव ग्राहक द्रव्यर्थिकनय की अपेक्षा पुद्गल के अतिरिक्त जीवद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश द्रव्य और काल द्रव्य के अमूर्त स्वभाव है।

पुद्गलस्योपचारादेवास्त्यमूर्तत्वम् ।।(166)

सूत्रार्थ- पुद्गल के भी उचार से अमूर्तस्वभाव है।

विशेषार्थ- यद्यपि अमूर्तत्व पुद्गल का निजस्वभाव नहीं है तथापि जीव के साथ बंध की अपेक्षा स्वभाव को प्राप्त हो जाता है। अतः यह विजाति- असद्भूत व्यवहार उपनय का कथन है।

परमभाव ग्राहकेण कालपुद्गलाणूनामेक प्रदेश स्वभावत्वम् ।।(167)

सूत्रार्थ- परमभावग्राहक द्रव्यर्थिकनय की अपेक्षा कालाणु द्रव्य और पुद्गलपरमाणु के एक प्रदेश स्वभाव है।

विशेषार्थ- पुद्गल परमाणु के द्वारा व्याप्त क्षेत्र को प्रदेश कहते है। अतः पुद्गल परमाणु एक प्रदेश-स्वभावी है। आकाश के प्रत्येक प्रदेश पर एक एक कालाणु है। अतः कालाणु भी एक प्रदेशी है।

लोयायासपदेसे इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू असंखदव्वाणि ।।(22)।।(वृ.द्र.)

अर्थ- जो लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर रत्नों के देर के समान परस्पर भिन्न होकर एक-एक स्थित हैं वे कालाणु असंख्यात द्रव्य हैं। (पृ.171 से 175)

अध्याय - VII

"अकृत्रिम, शाश्वतिक, मौलिक चेतन द्रव्य है जीव"

जीवाश्च।।3।। (राज. II पृ.34-39)

जीव भी द्रव्य है ।।3।।

जो जीवत्व के सम्बन्ध से जीव है, ऐसी कल्पना करते हैं- उनसे मैं पूछता हूँ कि जीवत्व में किसके सम्बन्ध से जीवत्व है यदि जीवत्व में अन्य जीवत्व के सम्बन्ध से प्रत्यय (जीवत्व) मानते हैं तो अनवस्था दोष आता है। यदि इस अनवस्था के भय से "जीवत्व" को स्वतः सिद्ध मानते हैं तो "अर्थान्तर के सम्बन्ध से सर्वत्र प्रत्यय होता है" इस प्रतिज्ञा की हानि होती है। अतः जिस प्रकार जीवत्व स्वतः सिद्ध है वैसे जीव को भी स्वतः सिद्ध मान लेना चाहिए। यदि दीपक के समान जीवत्व में स्वतः जीवत्व मानते हो तो 'जीव' में स्वतः प्रत्यय मानने में अपरितोष (असंतोष) क्यों है अर्थात् जीव में स्वतः प्रत्यय मानने में कोई बाधा नहीं है।

प्रश्न- जीव और जीवत्व ये दो भिन्न पदार्थ है अतः जीवत्व के समान जीव में स्वतः प्रत्यय के अभिधान की सिद्धी नहीं है- (जीव स्वतः सिद्ध नहीं है) क्योंकि पदार्थान्तर का धर्म पदार्थान्तर में आरोपित करना उपयुक्त नहीं है। एक पदार्थ का धर्म पदार्थान्तर में लगायेंगे तो पदार्थों में संकर दोष का प्रसङ्ग आयेगा। पदार्थों में संकर (परस्पर मिलना) है नहीं अतः जीवत्व के सम्बन्ध से जीव प्रत्यय मानने में अनवस्था और प्रतिज्ञा हानि दोष नहीं आते?

उत्तर- जीव और जीवत्व में पदार्थान्तर (भिन्नत्व) नहीं है- क्योंकि इनमें भिन्नत्व की असिद्धि है। यदि जीव और जीवत्व में भिन्नत्व होगा तो धर्म संकर (भिन्न पदार्थ का धर्म भिन्न में) आयेगा। परन्तु "जीव और जीवत्व में पदार्थान्तर(भिन्नत्व)

सूत्र बनाया है। यद्यपि आगे 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तंसत्' इस सूत्रगत द्रव्य लक्षण से ही धर्मादि में द्रव्यता सिद्ध हो जाती है। तथापि यहाँ द्रव्यों की गिनती के नियम के लिए ही ''द्रव्याणि'' इस सूत्र की रचना की है। धर्म-अधर्म, आकाश, पुद्गल और जीव काल के साथ मिलकर छह द्रव्य होते हैं। इनसे अतिरिक्त द्रव्य नहीं है। इस नियम के आरंभ के लिये ''द्रव्याणि'' यह सूत्र है। अथवा इस सूत्र से अन्यवादी द्वारा कल्पित दिशा, आकाश, काल, वायु, मन, पृथ्वी आदि द्रव्यों की संख्या है उनकी भी निवृत्ति हो जाती है।

शंका - अन्य मत द्वारा प्ररूपित नौ द्रव्यों की निवृत्ति कैसे हो जाती है?

उत्तर - कुछ मत दिशा, आकाश, काल, पृथ्वी आदि नव द्रव्य मानते हैं। उनका इन्हीं द्रव्यों में अन्तर्भाव हो जाता है। जैसे - रूप, रस, गन्ध और स्पर्श वाले होने से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और मन का पुद्गल द्रव्य में अन्तभाव हो जाता है।

प्रश्न - वायु और मन में रूपादि का अभाव है अतः वायु और मन का पुद्गल द्रव्य में अन्तर्भाव कैसे होगा?

उत्तर - वायु और मन रूपादिमान् है क्योंकि उनमें रूप अनुमान सिद्ध है जैसे- वायु और रूप वाली है क्योंकि उसमें घटादि के समान स्पर्श पाया जाता है। जो स्पर्श वाला होता है वह रूप वाला भी अवश्य होता है। चक्षु आदि के द्वारा वायु नहीं दिखती है इसलिए वायु में रूप नहीं होता है ऐसा भी नहीं कह सकते - क्योंकि ऐसा मानने पर परमाणु आदि में भी रूप के अभाव का प्रसंग आयेगा - क्योंकि परमाणु भी चक्षु के द्वारा नहीं दीखता है।

द्रव्य मन और भाव मन के भेद से मन दो प्रकार का है। उनमें भाव मन ज्ञान रूप है, वह जीव का गुण होने से आत्मा में गर्भित हो जाता है। द्रव्य मन रूपादि वाला होने से पौद्गलिक है। इसलिये पुद्गल में उसका अन्तर्भाव हो जाता है।

शंका - द्रव्य मन में रूपादि नहीं है क्योंकि दिखते नहीं हैं (अनुपलभ्य हैं)

उत्तर - चक्षु से नहीं दिखने के कारण द्रव्य मन में रूप रसादि गुणों का अभाव रूपादि वाला नहीं मानना संशय हेतु है क्योंकि परमाणु आदि विधर्मियों में भी इसकी वृत्ति है अर्थात् परमाणु चक्षु द्वारा नहीं दिखने पर भी रूपी है।

मन ज्ञानोपयोग का कारण होने से रूपादि वाला है। चक्षु इन्द्रिय की तरह इस अनुमान से मन में रूपादि का सद्भाव सिद्ध होता है। अमूर्तिक शब्द में भी ज्ञानोपयोग का कारणत्व देखा जाता है इसलिए ज्ञानोपयोग का कारणत्व होने से मन को रूपी मानना हेतु व्यभिचारी (अनेकान्तिक) है ऐसा भी कहना उचित नहीं है क्योंकि शब्द के भी पौद्गलिक होने से मूर्त्तिकत्व की सिद्धि है।

प्रश्न - अतीन्द्रियत्व होने पर भी परमाणु आदि का रूपादिमान कार्य देखा जाता है अतः परमाणु आदि में रूपादिमत्त्व अनुमान से जाना जाता है परन्तु परमाणु की तरह वायु और मन का रूपादिमान कार्य नहीं देखा जाता जिससे इनके रूपादिमत्त्व की सिद्धि हो सके?

उत्तर - मन और वायु के भी रूपादि कार्य की उत्पत्ति है; क्योंकि सर्व परमाणुओं को सर्वरूपादिमत्कार्यत्व की प्राप्ति की योग्यता स्वीकार की गई है अतः वायु और मन के पुद्गल परमाणुओं में भी स्कन्ध होने की योग्यता है, अतः वे भी स्कन्ध बनते हैं। पार्थिव और जलीय रूप से परमाणुओं में जातिभेद नहीं है क्योंकि पार्थिव चन्द्रकान्तमणि से जल को और जल से पार्थिव ओला बरफ मोती आदि की जाति संकररूप से उत्पत्ति देखी जाती है। दिशा रूप द्रव्य का भी आकाश में अन्तर्भाव हो जाता है क्योंकि सूर्योदय आदि की अपेक्षा से आकाश प्रदेशों में ही यह पूर्व है; आदि दिग्व्यवहार होता है।

''जीवा'' यह बहुवचन विविधता का ख्यापक (सूचक) है। जीवों की अनन्ता और विविधता का सूचन करने के लिए ''जीवाश्च'' यहाँ बहुवचन का प्रयोग किया है। संसारी और मुक्त जीव विविध प्रकार के हैं। संसारी जीव भी गति, इन्द्रिय आदि चौदह मार्गणा स्थान, मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुणस्थान, सूक्ष्म-बादर आदि जीवस्थान की अपेक्षा विविध प्रकार के हैं। मुक्त जीव भी एक, दो, तीन, संख्यात, असंख्यात और अनंत समय सिद्ध पर्याय के आश्रय से तथा

एक योग करना भी उपयुक्त नहीं है- क्योंकि एक योग करने पर जीव के ही द्रव्य का प्रसंग आता है।

प्रश्न - 'द्रव्याणि जीवाः' ऐसा इकट्ठा एक सूत्र बनना चाहिए क्योंकि 'द्रव्याणि जीवाः' ऐसा सूत्र बना लेने पर 'च' शब्द नहीं होने के कारण लघु सूत्र होता है।

उत्तर - यद्यपि ''द्रव्याणि जीवाः'' ऐसा इकट्ठा एक सूत्र बना लेने पर 'च' शब्द नहीं होने के कारण लघु सूत्र तो होता परन्तु इससे जीवों का ही प्रसंग होता और ऐसा होने पर जीव ही द्रव्य कहे जा सकते, धर्मादि नहीं। अतः अनिष्ट का प्रसंग आता।

द्रव्याणि इस बहुवचन से धर्मादि का ज्ञान हो जाता है ऐसा भी नहीं है - क्योंकि यह तो पूर्व में कह दिया है।

प्रश्न - 'द्रव्याणि जीवाः'' इसमें बहुवचन का प्रयोग होने से धर्म, अधर्म आदि की और जीवों की द्रव्य संज्ञा सिद्ध हो ही जाती?

उत्तर - ऐसा नहीं है - (क्योंकि) उक्त होने से। अर्थात् जिसका कथन पूर्व में कर दिया है। हमने पूर्व में कथन कर दिया है कि ''जीवाः'' यह बहुवचन जीवों की विविधता का सूचक है और 'द्रव्याणि' में जो बहुवचन है वह तो अनेक प्रकार के जीवों के समानाधिकरण्य के लिए न्याय प्राप्त (सार्थक) है अतः 'द्रव्याणि जीवाः' यह इकट्ठा सूत्र करने से धर्मादि में द्रव्यता सिद्ध नहीं होती।

अधिकार से सिद्धि होती है, ऐसा भी नहीं क्योंकि इसके कारण को पूर्व में कह दिया है।

प्रश्न - ''अजीवकायाः धर्माधर्माकाश पुद्गलाः'' इस सूत्र में अजीव का अधिकार होने से 'द्रव्याणि जीवाः' ऐसा इकट्ठा सूत्र कर देने पर भी जीव और अजीव की द्रव्य संज्ञा सिद्ध हो जायेगी।

उत्तर - ऐसा नहीं है - क्योंकि 'द्रव्याणि जीवाः' इसमें द्रव्य शब्द जीव के साथ ही अवबद्ध है अतः यद्यपि 'अजीव कायाः' इस सूत्र से अजीवाधिकार चल रहा

जीव के नौ विशेष गुण

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई।। (2)

जीवः उपयोगमयः अमूर्तिः कर्त्ता स्वदेह परिमाणः।
भोक्ता संसारस्थः सिद्धः सः विस्रसा ऊर्ध्वगतिः।।

Jiva is characterised by upayoga, is formless and an agent, has the same extent as its own body, is the enjoyer of the fruits of karma, exists in samsar, is siddha and has a charateristic upward motion.

जो जीता है, उपयोगमय है, अमूर्त है, कर्त्ता है, निज शरीर के बराबर है, भोक्ता है, संसार में स्थित है, सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है, वह जीव है।

छहों द्रव्यों में से जीव द्रव्य सर्वश्रेष्ठ एवं उपादेय द्रव्य होने के कारण तथा प्रथम गाथा में जीव द्रव्य का प्रथम निर्देश होने से इस दूसरी गाथा में आचार्य श्री ने जीव द्रव्य के नौ विशेष गुणों के नाम निर्देशपूर्वक नौ अधिकारों का संक्षेप में दिग्दर्शन किया है। स्वयं आचार्य श्री ने इसी ग्रंथ में नौ अधिकारों का विशेष वर्णन अग्रिम गाथासूत्र में किया है इसलिए यहाँ केवल सामान्य जानकारी के लिए नौ अधिकारों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से कर रहे हैं:-

1. **जीवः**- जो शुद्ध निश्चय नय से चैतन्य रूप भाव प्राण से जीता है एवं व्यवहार से अशुद्ध जो द्रव्य प्राण एवं भाव प्राण से जीता है उसे जीव कहते हैं।

2. **उपयोगमयः**- शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से सम्पूर्ण निर्मल केवलज्ञान एवं केवल दर्शन रूप उपयोग से रहित है एवं व्यवहार नय से क्षायोशमिक ज्ञान एवं दर्शन से युक्त है जिसे उपयोग मय कहते हैं।

3. **अमूर्तिकः**- संसारी एवं व्यवहार नय से मूर्तिक कर्मों से युक्त होने के कारण

जीव योग एवं उपयोग से कर्मों का आस्रव एवं बंध करता है इसलिए कर्त्ता भी है।

5. स्वदेह परिमाणः- निश्चय नय से जीव, लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेशी होते हुए भी शरीर नाम कर्म के उदय से उत्पन्न संकोच तथा विस्तार के कारण जीव संसारी अवस्था में जिस शरीर को प्राप्त करता है उस शरीर के बराबर हो जाता है।

6. भोक्ताः- शुद्ध निश्चय नय से जीव स्व अनंत सुख को भोगता है तथापि अशुद्ध नय से कर्म परतंत्र जीव, शुभ कर्म से उत्पन्न शुभ एवं अशुभ क्रम से उत्पन्न अशुभ कर्मों को भी भोगता है।

7. संसार में स्थितः- यद्यपि जीव शुद्ध निश्चय नय से संसार से रहित है तथापि अशुद्ध नय से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, और भव रूपी पंचविध संसार में रहता है।

8. सिद्धः- यद्यपि जीव अनादि काल से कर्म से युक्त होने के कारण असिद्ध है तथापि शुद्ध निश्चय नय से कर्म से रहित होने के कारण सिद्ध है।

9. स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वालाः- यद्यपि कर्म परतंत्र जीव संसार में ऊँचा, नीचा, सीधा, तिरछा गमन करता है तथापि निश्चय नय से स्वभाव रूप में इसमें उर्ध्वगमन शक्ति है इसलिए जीव मोक्षगमन के समय ऊर्ध्वगमन ही करता है।

उपर्युक्त गुणों से युक्त प्रत्येक जीव होता है। कुछ दार्शनिक उनमें से कुछ गुण को तो मानते हैं और कुछ गुणों को नहीं मानते जैसे- वैज्ञानिक, चार्वाक आदि भौतिक जड़वादी दार्शनिक चैतन्य से युक्त शाश्वतिक जीव द्रव्य को नहीं मानते हैं। नैयायिक दर्शन में मुक्त जीव को ज्ञान, दर्शन से रहित मानते हैं। भट्ट तथा चार्वाक दर्शन जीव को मूर्तिक ही मानते हैं। सांख्य दार्शनिक आत्मा (पुरुष) को कर्त्ता नहीं मानता है। नैयायिक, मीमांसक और सांख्य दर्शन आत्मा को प्राप्त शरीर प्रमाण न मानकर आत्मा को हृदय कमल में स्थित बट बीज आदि के बराबर मानते हैं। बौद्ध दर्शन क्षणिकवादी होने के कारण इस दर्शन की अपेक्षा जीव स्वपूर्वोपार्जित कर्म का भोक्ता है यह सिद्ध नहीं होता। सदाशिव मत वाले मानते हैं। उपर्युक्त असम्यक् मतों का निरसन करने के लिए इस गाथा में जीव के उपरोक्त गुणों का वर्णन किया गया है।

अशुद्ध एवं शुद्ध जीव के उपयोगः-

अट्ठचदु णाण दंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं।
ववहारा शुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं।।6।। (द्रव्य संग्रह)

अष्टचतुर्ज्ञानदर्शने सामान्यं जीव लक्षणं भणितं।
व्यवहारात् शुद्धनयात् शुद्धं पुनः दर्शन ज्ञानम्।।

According to Vyavahara Naya, the general characteristics of Jiva are said to the eight kinds of Jnana and four kinds of Darshana. But according to Suddha Naya, (the characteristics of Jiva) are Pure Jnana and Darshana.

आठ प्रकार के ज्ञान और चार प्रकार के दर्शन का जो धारक वह जीव है यह व्यवहारनय से सामान्य जीव का लक्षण है और शुद्धनय से शुद्ध जो ज्ञान, दर्शन है वह जीव का लक्षण कहा गया है।

व्यवहार नय से सामान्यतः जीव का लक्षण- 8 ज्ञान एवं 4 दर्शन है। इसका भावार्थ यह है कि किसी विवक्षा के बिना सम्पूर्ण जीव में उपरोक्त ज्ञान में से कोई न कोई ज्ञान अवश्य रहेगा ही। शुद्ध निश्चय नय से जीव का लक्षण शुद्ध दर्शन एवं ज्ञानमय है यह कथन ''शुद्ध सद्भूत'' शब्द से वाच्य कहने योग्य ''अनुपचरित सद्भूत'' व्यवहार नय है और छद्मस्थ ज्ञान, दर्शन की अपेक्षा से तो अशुद्ध सद्भूत शब्द से वाच्य ''उपचरित सद्भूत'' व्यवहार नय है तथा कुमति, कुश्रुत, विभंग इन तीनों में उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है और शुद्ध निश्चय नय से शुद्ध अखंड, केवलज्ञान तथा दर्शन ये दोनों ही जीव के लक्षण हैं।

निश्चय से जीव अमूर्त व्यवहार से जीव मूर्त

वर्णाः रसाः पंच गन्धौ द्वौ स्पर्शाः अष्टौ निश्चयात् जीवे।
नो सन्ति अमूर्तिः ततः व्यवहारात् मूर्तिः बन्धतः।।

According to Nischaya Naya, Jiva is without form; because the five kinds of Colour and Taste, two kinds of smell, and eight kinds of touch are not present in it. But according to Vyavahara Naya (Jiva) has form through the bandage [of karma.]

निश्चय से जीव में पाँच वर्ण, पांच रस, दो गंध और आठ स्पर्श नहीं है इसलिए जीव अमूर्त है और बंध से व्यवहार की अपेक्षा करके जीव मूर्त है। विश्व के छह मौलिक द्रव्य में से केवल पुद्गल द्रव्य ही स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से युक्त होने के कारण मूर्तिक है और अन्य सब द्रव्य अमूर्तिक हैं तथापि जीव व्यवहार नय से मूर्तिक है क्योंकि अनादिकाल से संसारी जीव पौद्गालिक कर्म से युक्त होने के कारण व्यवहार नय से मूर्तिक है। देवसेन आचार्य ने आलापपद्धति में कहा भी है-

जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेण मूर्तस्वभावः।। श्लो.164 ऋ.पृ.173

असद्भूतव्यवहार उपनय की अपेक्षा जीव के भी मूर्त स्वभाव है। यदि एकांततः संसारी जीव को भी अमूर्तिक स्वीकार किया जायेगा तो अमूर्तिक जीव मूर्तिक कर्मों को न आकर्षित/आस्रव कर सकता है न बंध कर सकता है। आस्रव एवं बंध से रहित जीव की संसार अवस्था भी नहीं रह सकती। संसार के बिना मोक्ष भी नहीं हो सकता क्योंकि बंधन पूर्वक मोक्ष होता है। संसार का भी अभाव नहीं मान सकते हैं क्योंकि संसार की उपलब्धि प्रत्यक्ष है क्योंकि संसार के कर्म परतंत्र राग, द्वेष से युक्त जीव पाये जाते हैं। यदि संसारी जीव भी व्यवहार नय से अमूर्तिक है तो फिर सचित्त एकेन्द्रिय आदि जीव के शरीर के छिन्दभिन्द करने पर उस शरीर में स्थित जीव को कष्ट नहीं होता और द्रव्य हिंसा भी नहीं होती। इसलिए धवला आदि सिद्धांत ग्रंथ में कहा गया है कि ''अनादि काल से बंधन में बद्ध रहने के कारण जीव के अमूर्तत्व का अभाव है।''

होता तो उपर्युक्त पौद्गलिक द्रव्यों से भी प्रभावित नहीं होता। इसका स्पष्टीकरण यह है कि क्षुधावेदनीय आदि पौद्गलिक कर्म के उदय से भूख नहीं लगती और योग्य भोजन करने पर भी भूख नहीं मिटती। अमृतचंद्र सूरी ने संसारी जीव को मूर्तिक सिद्ध करते हुए कहा है-

तथा च मूर्तिमानात्मा सुराभिभवदर्शनात्।
नह्यमूर्त्तस्य नभसो मदिरा मदकारिणी।। श्लो.19 तत्वार्थ सार

आत्मा मूर्तिक होने के कारण मदिरा से पागल हो जाता है, किन्तु अमूर्तिक आकाश को मदिरा मदकारिणी नहीं होती है। जैसे पानी का पूर प्रदेश से और स्वाद से निम्ब, चंदनादि वनराजिरूप परिणमित होता हुआ द्रव्यत्व और स्वादुत्वरूप स्वभाव को उपलब्ध नहीं करता, उसी प्रकार आत्मा भी प्रदेश से और भाव से स्वकर्मरूप परिणमित होने से अमूर्तत्व और विकाररहित विशुद्ध स्वभाव को उपलब्ध नहीं करता।

जीवाजीवं दव्वं रूवारूवित्ति होदि पत्तेयं।
संसारत्था रूवा कम्मविमुक्का अरूवगया।। गा. जीवकाण्ड(563)

संसारी जीव रूपी/मूर्तिक है और कर्मरहित सिद्ध जीव अमूर्तिक है।

''कम्मसंबंधवसेण पोग्गलभावमुवगय जीवदव्वाणं।
च पच्चक्खेण परिच्छित्तिं कुणइ ओहिणाणं'' (जयधवल पु.1.पृ.43)-

कर्म के संबंध से पुद्गल भाव को प्राप्त हुए जीवों को जो प्रत्यक्षरूप से जानता है, वह अवधिज्ञान है। धवल पु.13 पृ.333 पर भी इसी प्रकार कहा है।

''अनादिबन्धनबद्धत्वतो मूर्तानां जीवावयवानां
मूर्तेण शरीरेण सम्बन्धं प्रति विरोधासिद्धः।'' धवल पु.1 पृ.292

जीव के प्रदेश अनादिकालीन बन्धन से बद्ध होने के कारण मूर्त हैं अतः उनका मूर्त शरीर के साथ सम्बन्ध होने में कोई विरोध नहीं आता। -(आलाप पद्धति) पृ.147

अवस्था में भी जीव मूर्तिक ही होता परन्तु सिद्ध अवस्था में अमूर्तिक है।

ये सब नय विवक्षा में अनेकांत दृष्टि से ही सिद्ध होता है क्योंकि हर विषय की सिद्धि अनेकांत से होती है एकांत से नहीं। कहा भी है-

बंध पडि एयत्तं लक्खणदो हवदि तस्स भिण्णत्तं।

तम्हा अमुत्ति भावो णेगं तो होदि जीवस्स।।

बंध के प्रति जीव की एकता है और लक्षण से उसकी भिन्नता है, इसलिए जीव के अमूर्त भाव एकांत से नहीं है।

रूवरसंगधफासा सद्दवियप्पा वि णत्थि जीवस्य।

णो संट्ठाणं किरिया तेण अमुत्तो हवे जीवो।। (119 नयचक्र, पृ.71)

जीव में न रूप है, न रस है, न गंध है, न स्पर्श है, न शब्द के विकल्प हैं, न आकार है, न क्रिया है इस कारण से जीव अमूर्तिक है।

जोहु अमुत्तो भणिओ जीव सहावो जिणेहि परमत्थो।

उवयरियसहावादो अचेयणो मुत्तिसंजुत्तो।। (120)

जिनेन्द्र देव ने जो जीव को अमूर्तिक कहा है वह जीव का परमार्थ स्वभाव है। उपचरित स्वभाव से तो मूर्तिक और अचेतन है।

उववादा सुरणिरया, गब्भजसम्मुच्छिमा हु णरतिरिया।

सम्मुच्छिमा मुणुस्साऽपज्जत्ता एयवियलक्खा।।

पंचक्खतिरिक्खाओ गब्भजसम्मुच्छिया तिरिक्खाणं।

भोगभुमा गब्भभवा णरपुण्णा गब्भजा चेव।। (गो.जी) 90-91

Instaneous rise appertains to celestial & hellish Souluterine birth & spontaneous generation to human & Sub-human souls; & one (sensed) & incomplete sensed (sub-human souls) have spontaneous generation (only).

Five-sensed sub-human souls are either of uterine birth or of also are always of uterine birth.

देवगति और नरकगति में उपपाद जन्म ही होता है। मनुष्य तथा तिर्यचों में यथा संभव गर्भज एवं सम्मूर्च्छन दोनों जन्म होत है किन्तु लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य और एकेन्द्रिय, द्विइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय का सम्मूर्च्छन जन्म ही होता है। कर्म भूमि पंचेन्द्रिय तिर्यंच गर्भज एवं सम्मूर्च्छन ही होते ह। तिर्यंचो में जो भोगभूमि तिर्यंच ह, वे गर्भज ही होते है और जो पर्याप्त मनुष्य है वो गर्भज ही होते हैं।

उववादगब्भजेसु य लद्धिअपज्जतगा ण णियमेण।

णरसम्मुच्छिमजीवा लद्धिअपज्जत्तगा चेव।। (गो.जी.) 92

Absolutely- non developable souls, by rule, never have instantaneous rise or uterine birth, while human souls of spontaneous generation are only absolutely non-developable.

COMMENTARY

Human souls of spontaneous generation are born in the armpits, womb & breasts of female in Arya Khanda, excepting those of the prime queen of chakravarti. They are also born indirty places where urine, night-soil & such like things are laid. They are born & they die 18 times in one pulse-beat, which is 3772 nd part of muhurta i.e. 48 minutes.

उपपाद और गर्भ जन्म वालों में नियम से लब्ध्यपर्याप्तक नहीं होते और सम्मूर्च्छन मनुष्य नियम से लब्ध्यपर्याप्तक होते हैं। सम्मूर्छन मनुष्य चक्रवर्ती की पटरानी को छोडकर अन्य कर्म भूमिज आर्य खण्ड की स्त्रियों की योनि, काँख, स्तन, मूल-मूत्रादि में उत्पन्न होते हैं। देव एवं नारकी का अपने-अपने योग्य यथाक्रम पलंग-शैय्या एवं घटादि विकृताकार वाली उत्पत्ति स्थान में उत्पन्न होना, उपपाद जन्म है। जो माता-पिता के रजवीर्य के बिना चारों ओर से पुद्गल को ग्रहण कर और गन्दे स्थान पर, जहाँ कि मूत्र-वीर्यादि पड़ा हुआ है, उत्पन्न होते हैं, वे सम्मूर्च्छन हैं। वे मनुष्यों की आँखों के द्वारा दिखायी नहीं देते। उनका जीवन अत्यन्त छुद्र जीवन है। एक श्वासोच्छवास में 18 बार जन्म और 18 बार मरण करते हैं। वे एक श्वासोच्छवास

विशेषार्थः-

आत्मा जिसके द्वारा शरीर, आहार और इन्द्रियों के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, उसको जन्म कहते हैं। जन्म तीन प्रकार के हैं- (1) सम्मूर्च्छन जन्म (2) गर्भज जन्म (3) उपपाद जन्म। माता-पिता के रजवीर्य के मिश्रण से स्त्री के उदर में जो संतान उत्पन्न होती है उसे गर्भज जन्म कहते हैं। देव और नारकियों का अपने-अपने योग्य यथाक्रम पलंग-शैय्या एवं घटादि विकृताकार वाले उत्पत्ति स्थान से उत्पन्न होना, उपपाद जन्म है। माता-पिता के रज के बिना चारों ओर पुद्गलों को ग्रहण कर अवयवों की रचना कर उत्पन्न होना, सम्मूर्च्छन जन्म कहलाता है।

त्रिषु लोकेषुर्ध्वमधस्तिर्यक् च देहस्य समन्ततो मूर्च्छन सम्मूर्च्छनमवयव प्रकल्पनम्।

In the three worlds- the upper, the lower and the middle, there is spontaneous generation of the body in all directions, that is formation of limbs by the surrounding matter.

तीनों लोकों के ऊपर, नीचे और तिरछे देह के चारों ओर से मूर्च्छन अर्थात् ग्रहण होना सम्मूर्च्छन है। उपयुक्त जल, वायु, ऊष्णता एवं शरीरादि के योग्य पुद्गल परमाणुओं का समवाय जब एक स्थान में होता है, उस समय अन्य स्थान से विग्रह गति से आकर जीव उत्पन्न होता है। इसको सम्मूर्च्छन जन्म कहते हैं। जैसे शीत ऋतु में सेम आदि लता के ऊपर सायंकाल कोई जीव नहीं रहते हैं किन्तु रात्रि में यदि कोहरा आदि हो जाता है, तब उसमें अनेक जीव हो जाते हैं। ये जीव कैसे उत्पन्न हुए हैं? यहाँ तो माता-पिता का संयोग नहीं है। वैज्ञानिक कुल रासायनिक मिश्रण भी नहीं है। यह जीवों की जो उत्पत्ति है, वे सम्मूर्च्छन जीव हैं। उनका सम्मूर्च्छन जन्म होता है। इसी प्रकार मर्यादा रहित दही में, आहार में आटे में, पापड़ में, अचार में जो जीव उत्पन्न होते हैं वे सब सम्मूर्च्छन जीव है। बीज को उपर्युक्त जलवायु मिलने पर जो अंकुर उत्पन्न होता है वह भी लट, पतंगा, खटमल, जोंक, बिच्छू, पटेर, शंख, सीप, तितली आदि सम्मूर्च्छन जीव हैं। इतना ही नहीं, मनुष्य भी सम्मूर्च्छन उत्पन्न होते हैं किंतु उनका आकार एवं आयु अत्यन्त कम है। उनकी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती है। ये इतने सूक्ष्म होते हैं कि इन्द्रियों के द्वारा उनका ग्रहण नहीं हो सकता है। इनका लब्धयपर्याप्तिक जीव कहते हैं। दृश्यमान समस्त मनुष्य पर्याप्तक हैं।

तिर्यंच गति का स्वरुप

तिरयंति कुडिलभावं, सुविउलसण्णाणिगिट्ठिण्णाणा।
अच्चंतपाव बहुला, तहना तेरिच्छिया भणिया। (148) गो.सा.जीव

जो मन-वचन-काय की कुटिलता को प्राप्त हैं, जिनके आहारादि की संज्ञा सुव्यक्त है, जो निकृष्ट अज्ञानी हैं और जिनके अत्यधिक पाप की बहुलता पायी जाती है, वे तिर्यंच कहे गये है।

समस्त जाति के तिर्यंचों में उत्पत्ति का जो कारण है, वह तिर्यंच गति है। अथवा तिर्यंच गति नामकर्म के उदय से प्राप्त तिर्यंच पर्यायों का समूह, वह तिर्यंच गति है। अथवा तिरस्, वक्र, कुटिल ये तीनों शब्द एकार्थवाची है अतः जो कुटिल भाव को प्राप्त होते है वे तिर्यंच हैं। तिर्यंचों की प्रति तिर्यंचगति है।

तिर्यंचों का जो सुख-दुःख है वे उसका अपने मन में सहन कर लेते हैं। वचनों के द्वारा दूसरों को प्रकट नहीं कर सकते या सुख-दुःख में भाग लेने के लिए दूसरों को बुला भी नहीं सकते। सुख में जो वृत्ति होती है, वह काय से नहीं करते। यद्यपि सुशिक्षित तोता-मैना आदि संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में से किसी के मन-वचन-काय की ऋजु प्रवृत्ति होती है तथापि एकेन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच तक व अशिक्षित संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्रायः मन-वचन-काय के कुटिल भावों में प्रर्वत्तते हैं। मनुष्य एकांत क्षेत्र में व नियत काल में भोजन, मैथुन आदि क्रिया करता है, किंतु मनुष्यों के समान, तिर्यंचों के ये क्रियायें गूढ क्षेत्र में नहीं होती, सुविवृत्त स्थान में प्रकट रुप से होती हैं। मनुष्यों के समान तिर्यंचों में गुण-दोष का विवेक,

में सम्यग्दर्शनादि शुभोपयोग का अभाव होने से तीव्र संक्लेश परिणामों की प्रचुरता होने से तिर्यंचों में अत्यंत पाप बहुलता कहना युक्त ही है।

तिर्यंचगति में तिर्यंचजीव द्रव्य प्रमाण से अनंत हैं, काल की अपेक्षा अनंतानंत अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियों से अपहृत नहीं होते हैं।

तिर्यंच पाँच प्रकार के होते हैं- सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त (लब्ध्यपर्याप्त)।

इनमें से सामान्य तिर्यंचों की संख्या का कथन ऊपर कर चुके हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी, पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त असंख्यात हैं।

तिर्यंचगति से तिर्यंचजीव का अंतर कम से कम क्षुद्रभव ग्रहण मात्र काल तक होता है, क्योंकि तिर्यंचगति से निकलकर मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक में उत्पन्न हो, कदलीघात युक्त क्षुद्रभव ग्रहण मात्र काल तक रहकर, पुनः तिर्यंचों में उत्पन्न हुए जीवों के क्षुद्रभव ग्रहण प्रमाण अंतर पाया जाता है। अधिक से अधिक सागरोपमशत पृथकत्व काल तक तिर्यंचगति से अंतर पाया जाता है, क्योंकि तिर्यंचजीव के तिर्यंचों में से निकलकर, शेष गतियों में सागरोपमशत पृथक्त्व काल से ऊपर उठने का भाव है। किंतु पंचेन्द्रिय तिर्यंच चतुष्क काल उत्कृष्ट अंतर असंख्यात पुदगल परिवर्तन प्रमाण अनंतकाल होता है, क्योंकि विवक्षित गति से निकलकर एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय आदि अविवक्षित गतियों में असंख्यात पुद्गल परिवर्तन काल तक परिभ्रमण कर, विवक्षित गति में उत्पन्न होने पर, यह अंतर काल पाया जाता है।

तिर्यंचों में पाँच गुणस्थान होते है- मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत। जिस प्रकार बद्धायुष्क असंयतसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यक्दृष्टि गुणस्थान वाले का तिर्यंच गति के काल के साथ सम्यग्मिथ्यादृष्टि व संयतासंयत का विरोध है। पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के चार भेदों में भी पाँच गुणस्थान होते हैं, किंतु लब्ध्यपर्याप्तकों में एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के अतिरिक्त अन्य गुणस्थान असंभव है।

तिर्यंचनियों के अपर्याप्त काल में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान का अभाव है, क्योंकि तिर्यंचनियों में असंयतसम्यग्दृष्टियों की उत्पत्ति नहीं होती।

तिर्यंचों में चौदह जीव समास होते हैं।

तिर्यंच जीव के चारों संज्ञायें, समस्त इन्द्रियाँ, छहों काय, ग्यारह योग (वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, आहारक और आहारक मिश्र को छोड़कर) तीनों वेद, क्रोधादि चारों कषाय, छह ज्ञान (3 ज्ञान 3 अज्ञान), दो संयम (असंयम, देशसंयम) केवलदर्शन को छोडकर शेष तीन दर्शन, द्रव्य और भाव रुप से छहों लेश्यायें, भव्यत्व-अभव्यत्व और छहों सम्यकत्व होते हैं। ये सब तिर्यंच संज्ञी एवं असंज्ञी, आहारक एक अनाहारक तथा ज्ञान एवं दर्शन रुप दोनों उपयोगों सहित होते हैं।

कितने ही तिर्यंच जीव प्रतिबोध से और कितने ही स्वभाव से भी प्रशमोपशम एवं वेदक सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं। इसके अतिरिक्त बहुत प्रकार के तिर्यंचों में से कितने ही सुख-दुःख को देखकर, कितने ही जाति स्मरण से, कितने ही जिनेन्द्र महिमा के दर्शन से और कितने ही जिनबिम्ब के दर्शन से, प्रथमोपशम एवं वेदक सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं।

मनुष्य गति का स्वरूप

मण्णीत जदो णिच्चं, मणेण णिउणा मणुक्कडा जम्हा।
मण्णुब्भवा य सव्वे, तम्हा ते माणुसा भणिदा।। (149) गो.सा.जी.

जो नित्य ही हेय-उपादेय को जानते हैं, शिल्प आदि अनेक कलाओं में प्रवीण हैं, धारणा आदि दृढ़ उपयोग वाले हैं और मनु (कुलकरों) की संतान हैं, अतः वे मनुष्य हैं, ऐसा कहा गया है।

करते हैं, सूक्ष्म रहस्य को जानते हैं, दूरदर्शी हैं, जिनके चिरकाल तक धारणा बनी रहती है और जो सातिशय उपयोग से विशिष्ट हैं, वे मनुष्य हैं। अथवा जब भोगभूमि का काल समाप्त होने लगा और कर्मभूमि का काल प्रारम्भ होने लगा तब प्रतिक्षुत प्रथम मनु (कुलकर) से लेकर भरतचक्रवर्ती पर्यन्त 16 मनु (कुलकर) युग (चतुर्थकाल) की आदि में हुये जिन्होंने उस समय की कठिनाइयों को दूर करने का उपाय प्रजा को बतलाया और 'जीवन सुखरूप रहे' ऐसा उपदेश दिया, इसलिये वे पिता तुल्य हुये। कर्मभूमि में जो मनुष्य हैं, वे सब उनकी संतान हैं, मनु की संतान होने के कारण उनकी भी मनुष्य संज्ञा है।

मनुष्य मानुषोत्तर पर्वत तक ही पाये जाते हैं, मानुषोत्तर पर्वत से परे मनुष्य नहीं पाये जाते। मनुष्यों का स्थान जंबूद्वीप, धातकीखण्ड और आधा पुष्करवरद्वीप ये ढाई द्वीप तथा लवण समुद्र व कालोदधि ये समुद्र, जिनकी विष्कंभ सूची 4500000 योजन है, वहीं तक है। अर्थात् अन्य तीन गतियों की अपेक्षा मनुष्यों का स्थान सबमें अल्प है अर्थात् असंख्यातवें भाग प्रमाण है। मनुष्य गति से ही जीव मुक्त होकर सिद्ध अवस्था को प्राप्त होता है, अन्य तीन गतियों से मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। सिद्धक्षेत्र का प्रमाण 4500000 योजन है अतः मनुष्य क्षेत्र का प्रमाण भी 4500000 योजन है। मुक्त जीवों की गति एक समय मात्र में मोड़ा रहित होती है। जिस स्थान से जीव मुक्त होता है ऋजुगति से जाकर ठीक उस स्थान से ऊपर सिद्धक्षेत्र में जाकर विराजमान हो जाता है। यदि सिद्धक्षेत्र के नीचे के स्थान के अतिरिक्त अन्य स्थान से मुक्ति हो तो सिद्धक्षेत्र में जाने के लिये उस जीव को मोड़ा लेना पड़ेगा और आर्ष से विरोध आ जायेगा।

शंका - तिर्यंच मोक्ष क्यों नहीं जाते?

समाधान - तिर्यंचों के नीच गोत्र का ही उदय है और जिनके नीच गोत्र का उदय होता है, वे भी संयम धारण नहीं कर सकते।

शंका - क्या सभी मनुष्य मोक्ष जा सकते हैं?

शंका - भोगभूमिज मनुष्यों को वज्रवृषभनारच संहनन भी होता है और तीन शुभ लेश्या भी, फिर उनको मोक्ष क्यों नहीं होता?

समाधान - भोगभूमिज मनुष्यों की आहार पर्याय नियत है। उत्तम भोगभूमिज मनुष्य तीन दिन के पश्चात् आहार करते हैं, मध्यम भोगभूमिज दो दिन के पश्चात् और जघन्य भोगभूमिज एक दिन के अंतराल से आहार करते हैं। वे अपने नियत काल से पूर्व आहार नहीं कर सकते और नियत काल का उल्लघंन भी नहीं कर सकते अर्थात् नियत काल पर भोगभूमिज को आहार अवश्य ग्रहण करना पड़ता है, इसलिये वे संयम धारण नहीं कर सकते। संयम बिना मात्र सम्यकदर्शन व ज्ञान से मुक्ति नहीं हो सकती। श्री कुंदकुंदाचार्य ने भी प्रवचनसार में कहा है - ''सद्दहमाणो अत्थे अंसंजदो वा ण णिव्वदि (237)।।'' पदार्थों का श्रद्धान करने वाला भी यदि असंयत हो तो निर्वाण को प्राप्त नहीं होता। यह जीव श्रद्धान और ज्ञान सहित भी है, परन्तु पौरूष के समान चारित्र के बल से रागद्वेषादि विकल्प रुप असंयम भाव से यदि अपने को नहीं हटाता है तो ज्ञान का श्रद्धान इसका क्या हित कर सकते हैं? अर्थात् ज्ञान और श्रद्धान इस जीव का कुछ भी हित नहीं कर सकते। इसलिये संयम से शून्य ज्ञान व श्रद्धान से सिद्ध अवस्था प्राप्त नहीं होती।

यद्यपि मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त व मनुष्यिनी संख्यात हैं, किन्तु लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य असंख्यात हैं। अतः सामान्य मनुष्य भी असंख्यात हैं, जिनकी संख्या इस प्रकार प्राप्त की जाती है- सूच्यंगुल के प्रथम वर्गमूल को उसके ही तृतीय वर्गमूल से गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो, उसे शलाका रूप से स्थापित कर रूपाधिक मनुष्यों और रूपाधिक मनुष्य अपर्याप्तों द्वारा जगत श्रेणी अपहृत होती है। इसका अभिप्राय यह है कि सूच्यंगुल के प्रथम वर्गमूल को, सूच्यगुंल के तृतीय वर्गमूल से गुणा करने पर जो गुणनफल प्राप्त हो उस गुणनफल से जगत् श्रेणी को भाजित करने पर, जो भागफल प्राप्त होता है, वह सामान्य मनुष्यों की संख्या से एक अधिक है। इसमें से पर्याप्त मनुष्यों व मनुष्यिनियों की संख्या कम कर देने से लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यों की संख्या प्राप्त होती है।

मनुष्य गति में एक जीव के निरंतर रहने का उत्कृष्ट काल 47 पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम प्रमाण है। जो जीव अविक्षित पर्याय से आकर मनुष्य गति में उत्पन्न हुआ और 47 पूर्वकोटि तक कर्मभूमिज मनुष्यों के तीनों वेदों में परिभ्रमण करके दान देकर अथवा दान का अनुमोदन करके, तीन पल्योपम आयुस्थिति वाले भोगभूमिज मनुष्यों में उत्पन्न हुआ, उस जीव के यह उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है।

कम से कम क्षुद्रभव ग्रहण काल तक मनुष्य गति से अंतर होता है, क्योंकि मनुष्य गति से निकलकर तिर्यंच गति में उत्पन्न हो क्षुद्रभव काल तक रहकर पुनः मनुष्य गति में उत्पन्न होने से, क्षुद्रभव काल का जघन्य अंतर पाया जाता है। अधिक से अधिक असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण अनंत काल तक मनुष्य का मनुष्य गति से अंतर होता है, क्योंकि मनुष्य गति से निकलकर एकेन्द्रियादि तिर्यंच गति में आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण पुद्गल परिवर्तन प्रमाण काल तक भ्रमणकर, पुनः मनुष्य गति में उत्पन्न होने वाले जीव के यह उत्कृष्ट अंतर काल पाया जाता है।

मनुष्य-आयुबंध के बिना जीव मनुष्यों में उत्पन्न नहीं हो सकता। अल्पारंभ और अल्पपरिग्रह में संतोषी प्राणी मनुष्य आयु का बंध करता है।

मनुष्य गति ही ऐसी गति है जिसमें चौदह गुणस्थान संभव है, अन्य तीन गतियों में चौदह गुणस्थान संभव नहीं है।

मनुष्य पर्याय सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि देव भी यह चाहता है कि मैं कब मनुष्य होऊँ और संयम धारण कर सिद्ध अवस्था को प्राप्त करूँ, किंतु खेद है कि मनुष्य इस अमूल्य पर्याय को पाकर भी विषय भोगों के लिये देवगति की वाँछा करता है जहाँ सयंम धारण नहीं हो सकता।

तिर्यंचों तथा मनुष्यों के अवान्तर भेद

सामण्णा पंचिंदी, पण्णत्ता जोणिणी अपज्जत्ता।

योनिनी, पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यर्याप्तक, इस प्रकार तिर्यंचों के पाँच भेद हैं। इसी प्रकार मनुष्यों के भी भेद हैं, किन्तु पंचेन्द्रिय भंग नहीं होता।

तिर्यंच गति में एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक जीव होते हैं। सामान्य तिर्यंच में उन जीवों का ग्रहण हो जाता है। एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय तिर्यंच नरकायु, देवायु, देवगति, नरकगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग का बंध नहीं कर सकते, किंतु पंचेन्द्रिय तिर्यंच इन कर्म प्रकृतियों का बंध कर सकते हैं। एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक के तिर्यंचों में एक मिथ्यात्व गुणस्थान होता है, किंतु पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में पाँच गुणस्थान संभव है। गर्भज व सम्मूर्च्छन दोनों प्रकार के होते हैं, किंतु लब्ध्यपर्याप्तक सम्मूर्च्छन जन्म वाले तथा नपुंसकवेदी ही होते हैं। अतः पंचेन्द्रिय तिर्यंचो के भी पर्याप्त व लब्ध्यपर्याप्त ऐसे दो भेद हो गये। पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त में सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न हो सकता है किन्तु योनिनी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं हो सकता, इत्यादि कारणों से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी पृथक् भेद कहा गया है।

मनुष्यों में सभी पंचेन्द्रिय होते हैं, एकेन्द्रिय आदि जीव नहीं होते, अतः मनुष्य में पंचेन्द्रिय रूप पृथक् भेद नहीं कहा गया है। मनुष्यों में चार भेद ही होते हैं- मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य। जिस प्रकार तिर्यंचों में इन भेदों के कारण कहे गये हैं वे ही कारण मनुष्यों के भेदों में भी जानना चाहिये। मनुष्यिनी से प्रयोजन भाव मनुष्यिनी से है। कर्मभूमि में ही वेद वैषम्य है। जो द्रव्य से तो पुरुषवेदी है अर्थात् जिनके शरीर की रचना तो पुरुषों के शरीर के समान है, किन्तु भाव स्त्री जैसे हैं, वे मनुष्यिनीयों में ही ग्रहण किये गये हैं। मनुष्यिनियों के छहों संहनन व चौदह गुणस्थान संभव हैं, किन्तु इनके तीन हीन संहनन व पांच गुणस्थान ही हो सकते हैं, अतएव उनके संयम की उत्पत्ति नहीं हो सकती। भाव स्त्री युक्त मनुष्यगति में चौदह गुणस्थानों का सद्भाव लेने में कोई विरोध नहीं आता।

शंका - बादर कषाय नौवें गुणस्थान के ऊपर भाववेद नहीं पाया जाता है,

क्योंकि यहाँ पर वेद की प्रधानता नहीं है, किंतु गति प्रधान है और वह गति पहले नष्ट नहीं होती।

विशेषण के नष्ट हो जाने पर भी, उपचार से उस विशेषण युक्त संज्ञा को धारण करने वाली मनुष्य गति में चौदह गुणस्थानों का सद्भाव मान लेने में कोई विरोध नहीं आता है।

तिर्यंच गति के जीवों का प्रमाण

संसारीपंचक्खा, तप्पुण्णातिगदिहीणया कमसो।
सामण्णा पंचिंदी, पंचिंदिय पुण्णतेरिक्खा।। (155) गो.
छस्सयजोयण कदिहिदजगपदरं जोणिणीण परिमाणं।
पुण्णूणा पंचक्खा, तिरियअपज्जत्तपरिसंखा।। (156)

संसारी जीवराशि में से तीनों गतियों की जीवराशियों का प्रमाण घटाने पर, सामान्य तिर्यंच के जीवों का प्रमाण प्राप्त होता है। संपूर्ण पंचेन्द्रिय जीवराशि में से तीन गतियों के जीवों का प्रमाण कम कर देने पर, पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों की संख्या प्राप्त होती है। समस्त पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के प्रमाण में से तीन गतियों के पर्याप्त जीवों का प्रमाण घटाने पर पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचों की संख्या प्राप्त हो जाती है। छह सौ योजन के वर्ग से भाजित जगत्प्रतर तिर्यंचनियों का प्रमाण है। पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के प्रमाण में से पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की संख्या घटाने पर उपलब्ध राशि पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंचों का प्रमाण है।

उपर्युक्त कथन को ठीक प्रकार से ग्रहण करने के लिये संसारी जीवों का प्रमाण, पंचेन्द्रिय जीवों का प्रमाण जानना आवश्यक है। सर्व जीवराशि अनंत है और अनंत अनेक प्रकार का है।

णामं ठवणा दवियं सस्सद गणणापदेसियमणंतं।
एगो उभयादेसो वित्थारो सव्व भावो य।। (8)

नाम अनंत, स्थापना अनंत, द्रव्यानंत, शाश्वतानन्त, गणनानंत,

शंका - इन ग्यारह प्रकार के अनंतों में से किस अनंत की अपेक्षा सर्व जीवराशि को अनंत कहा गया है?

समाधान - गणनानन्त की अपेक्षा सर्व जीवराशि को अनंत कहा गया है।

गणनानन्त भी तीन प्रकार का है-परीतानन्त, युक्तानन्त और अनंतानन्त। इन तीन प्रकार के गणनानन्तों में से भी सर्व जीवराशि अनन्तानन्त है, क्योंकि काल की अपेक्षा सर्व जीवराशि अनंतानन्त अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत नहीं होती हैं। वह अनंतानन्त भी तीन प्रकार का है। जघन्य अनंतानन्त, उत्कृष्ट अनंतानन्त भी तीन प्रकार का है। जघन्य अनंतानन्त, उत्कृष्ट अनंतानन्त और मध्यम अनंतानंत।

शंका - इन तीनों अनंतानन्तों में से जीवराशि कौनसा अनंतानन्त है?

समाधान - जीवराशि मध्यम अनंतानन्त है, क्योंकि जहाँ-जहाँ अनंतानन्त कहा जाता है, वहाँ-वहाँ अजघन्यानुत्कृष्ट अर्थात् मध्यम्-अनंतानंत का ग्रहण होता है।

शंका - वह मध्यम अनंतानंत भी अनंतानंत विकल्प रूप है। उनमें से किस विकल्प से प्रयोजन है?

समाधान - जघन्य अनंतानंत से अनंत वर्गस्थान ऊपर जाकर और उत्कृष्ट अनंतानंत से अनंत वर्गस्थान नीचे आकर जो राशि उत्पन्न होती है, वह राशि यहाँ पर अनंतानन्त पद से ग्राह्य है। अथवा जघन्य अंनतानत के तीन बार वर्णित सवर्गित करने पर जो राशि उत्पन्न होती है, उससे अनंतगुणी और छह द्रव्यों के प्रक्षिप्त करने पर जो राशि उत्पन्न होती है, उससे अनंतगुणी हीन मध्यम अनंतानंत राशि से प्रयोजन है।

शंका - तीन बार वर्गित-संवर्गित करने से उत्पन्न हुई यह महाराशि संपूर्ण जीवराशि से अनंतगुणी हीन है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान - जघन्य अनंतानंत के उत्तरोत्तर वर्ग करने पर, जघन्य अनंतानन्त

से उत्पन्न राशि की वर्गशलाका इससे पूर्व ही उत्पन्न हो जाती है (यानी जघन्य अनंतानन्त के अधस्तन वर्गस्थानों से ऊपर कुछ अधिक जघन्य परितानन्तगुणे वर्गस्थान जाकर ही उत्पन्न हो जाती है।) इससे जाना जाता है कि जीवराशि की वर्गशलाका से तीन बार वर्गित-संवर्गित की वर्गशलाकाएँ अनंतगुणी हीन है। अतः राशि भी अनंतगुणी हीन है।

बात यह है कि व्यय होने पर समाप्त होने वाली राशि को अनंतरूप मानने में विरोध आता है। इस प्रकार कथन करने से अर्धपुद्गल परिवर्तन के साथ व्यभिचार दोष भी नहीं आता, क्योंकि अर्धपुद्गल परिवर्तन को उपचार से अनंत माना है।

शंका - जिसमें छह द्रव्य प्रक्षिप्त किये गये हैं, वह राशि कौनसी है?

समाधान - तीन बार वर्गित-संवर्गित राशि में सिद्ध, निगोदजीव, वनस्पतिकायिक, पुद्गल, काल के समय और अलोकाकाश ये छह अनंत राशियाँ मिला देनी चाहिये।

सिद्धणिगोदजीवा वणफ्फदी कालो य पोग्गलाचेय।
सव्वमलोगागासं छप्पेदे-णंत-पक्खेवा।। (312) (ति.प.अ.4)

प्रक्षिप्त करने योग्य इन छह राशियों के मिलाने पर छह द्रव्य प्रक्षिप्त राशि होती है। इस प्रकार तीन बार वर्गित-संवर्गित राशि से अनंतगुणे और छह द्रव्य प्रक्षिप्त राशि से अनंतगुणे हीन इस मध्यम अनंतानंत की कितनी संख्या होती है, तन्मात्र जीवराशि है।

शंका - ''अनंतानंत'' अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के द्वारा जीव अपहृत नहीं होते'' यह कहना उचित नहीं है क्योंकि जीवराशि से काल के समय अनंतगुणे हैं? कहा भी है-

धम्माधम्मागासा तिण्णि वि तुल्लाणि होंति थोवाणि।
[illegible] अणंतगुणा।। (19)

भी स्तोक हैं तथा जीवद्रव्यराशि इससे अनंतगुणी है। उससे पुद्गल अनंतगुणे हैं, उससे काल के समय अनंतगुणे हैं, उससे आकाश के प्रदेश अनंतगुणे हैं।'' इससे जाना जाता है कि जीवराशि भले ही समाप्त हो जाये किन्तु काल के समय समाप्त नहीं हो सकते, क्योंकि जीवराशि से काल के समय अनंतगुणे हैं।

समाधान - यह कोई दोष नहीं, क्योंकि जीवराशि का प्रमाण निकालने में अतीत काल का ही ग्रहण किया है। जिस प्रकार लोक में (धान्य मापने का काष्ठ का माप विशेष) तीन प्रकार से विभक्त है, अनागत, वर्तमान और अतीत। उनमें से जो निष्पन्न नहीं हुआ है, वह अनागत प्रस्थ है। जो बनाया जा रहा है, वह वर्तमान प्रस्थ है और जो निष्पन्न हो चुका है और व्यवहार के योग्य है वह अतीत प्रस्थ है। उनमें से अतीत प्रस्थ के द्वारा संपूर्ण बीज मापे जाते हैं। इस संबंध में एक गाथा इस प्रकार है-

पत्थो तिहविहत्तो अणागदो वट्टमाणतीदो य।
एदेसु अदीदेण दु मिणिज्जदे सव्व बीजं तु।। (20)

प्रस्थ तीन प्रकार का है, इनमें से अतीत प्रस्थ के द्वारा सम्पूर्ण बीज मापे जाते हैं। इसी प्रकार काल भी तीन प्रकार का है- अनागत, वर्तमान और अतीत। उनमें से अतीत काल के द्वारा सम्पूर्ण जीवराशि का प्रमाण जाना जाता है। और कहा भी है-

कालो तिहा विहत्तो अणागदो वट्टमाणतीदो य।
एदेसु अदोदेण दु मिणिज्जदे जीवरासी दु।। (21)

काल तीन प्रकार का है, अनागत काल, वर्तमान काल और अतीत काल। इनमें से अतीत काल के द्वारा संपूर्ण जीवराशि का प्रमाण जाना जाता है। इसलिये जीव का प्रमाण समाप्त नहीं होता है, परंतु अतीत काल के सम्पूर्ण समय समाप्त हो जाते हैं। सोलह राशिगत अल्पबहुत्व से यह जाना जाता है। वह सोलह राशिगत अल्पबहुत्व इस प्रकार है- वर्तमान काल सबसे स्तोक। अभव्य जीवों का

असंख्यात गुणा है। असिद्ध काल से अतीत काल विशेष अधिक है अथवा सिद्धराशि को संख्यात आवली से गुणा करने पर अतीत काल का प्रमाण होता है। अतीत काल से भव्य मिथ्यादृष्टि जीव अनंतगुणे हैं। भव्य मिथ्यादृष्टियों से भव्य जीव विशेष अधिक हैं भव्य जीवों से सामान्य मिथ्यादृष्टि जीव विशेष अधिक है। सामान्य मिथ्यादृष्टियों से संसारी जीव विशेष अधिक हैं। संसारी जीवों से सम्पूर्ण जीव विशेष अधिक हैं, सिद्ध जीवों का जितना प्रमाण है, उतने विशेष अधिक हैं। सम्पूर्ण जीवराशि से पुद्गल द्रव्य अनंतगुणा है। यहाँ सम्पूर्ण जीवराशि से अनंतगुणा गुणकार है। पुद्गल द्रव्य से अनागत काल अनंतगुणा है। यहाँ सम्पूर्ण पुद्गल द्रव्य से अनंतगुणा गुणकार है। अनागत काल से संपूर्ण काल विशेष अधिक है। संपूर्ण काल से अलोकाकाश अनंतगुणा है। यहाँ संपूर्ण काल से अनंतगुणा गुणकार है। अलोकाकाश से सम्पूर्ण आकाश विशेष अधिक है। इस प्रकार इस अल्पबहुत्व से प्रतीत हो जाता है कि अतीत काल से संपूर्ण जीव अनंतगुणे हैं। अतः अतीत काल के सम्पूर्ण समय अपहृत हो जाते हैं, परन्तु जीवराशि अपहृत नहीं होती। मोक्ष को जाने वाले जीवों की अपेक्षा संसारी जीवराशि का व्यय होने पर भी मिथ्यादृष्टि जीवराशि का सर्वथा विच्छेद नहीं होता। यदि अनंतानंत अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियों से संपूर्ण जीवराशि अपहृत हो जावे तो सर्व भव्य जीवों के व्युच्छेद का प्रसंग आता है।

शंका - अतीत काल से अपहृत किस प्रकार किया जाता है?

समाधान - एक ओर अनंतानन्त अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के समयों को स्थापित करके और दूसरी ओर मिथ्यादृष्टि जीवराशि को स्थापित करके, काल के समयों में से एक-एक समय और उसी के साथ मिथ्यादृष्टि जीवराशि के प्रमाण में से एक-एक जीव कम करते रहना चाहिये। इस प्रकार उत्तरोत्तर काल के समय और जीवराशि के प्रमाण को कम करते हुये चले जाने पर अनंतानंत अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के सब समय समाप्त हो जाते हैं, परन्तु मिथ्यादृष्टि जीवराशि का प्रमाण समाप्त नहीं होता।

संसारी जीवराशि में से असंख्यात नारकी, असंख्यात मनुष्य व असंख्यात देव इन तीन गतियों की असंख्यात रूप संख्या को कम कर देने से सामान्य तिर्यंचों का प्रमाण प्राप्त होता है। जो अनंत है तथा संसारी जीवराशि से कुछ कम है। तिर्यंच जीवराशि भी अनंतानंत अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियों से अपहृत नहीं होती।

पंचेन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात हैं। जघन्य असंख्यातसंख्यात भी नहीं है और उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात भी नहीं है किन्तु मध्यम असंख्यातसंख्यात हैं। अर्थात् सूच्यगुंल के असंख्यातवें भाग के वर्ग के जगत्प्रतर को भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो, उतना पंचेन्द्रिय जीवों का प्रमाण है। अथवा सूच्यगुंल को आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर, जो लब्ध हो उसके वर्ग से जगत्प्रतर को भाग देने पर पंचेन्द्रिय जीवों का प्रमाण प्राप्त होता है। इसमें से असंख्यात नारकी, असंख्यात देव तथा असंख्यात मनुष्य इन तीनों असंख्यात राशियों के घटाने पर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का प्रमाण प्राप्त होता है।

जगत्प्रतर के सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग के वर्ग से भाजित करने पर पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों का प्रमाण प्राप्त होता है, जो मध्यम असंख्यातासंख्यात है। इसमें से असंख्यात नारकी, संख्यात मनुष्य व असंख्यात देव इन तीन गतियों के प्रमाण को घटाने पर पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों का प्रमाण प्राप्त होता है।

देव-अवहार काल को संख्यात रूपों से गुणित करने पर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी जीवों का अवहार काल होता है। अथवा छह सौ योजन के अंगुल करके वर्ग करने पर 2123 कोड़ाकोड़ी, छत्तीस कोड़ी लाख और 64 कोड़ी हजार-(2123, 36, 64,0000000000) प्रतरांगुल पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी का अवहार काल होता है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियों के अवहार काल से संबध रखने वाला यह कितने ही आचार्यों का व्याख्यान घटित नहीं होता है, क्योंकि तीन सौ योजनों के अंगुलों का वर्गमात्र व्यंतर देवों का अवहार काल होता है।

शंका - यह पूर्वोक्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियों के अवहार काल

समाधान - इस विषय में पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी संबधी अवहार काल का व्यख्यान असत्य ही है और व्यंतर देवों के अवहार काल का व्याख्यान सत्य ही है, ऐसा एकांतमत नहीं है, किन्तु उक्त दोनों व्याख्यानों में से कोई एक व्याख्यान असत्य होना चाहिये अथवा दोनों ही व्याख्यान असत्य हैं।

षट्खण्डागम के अनुसार मलमूत्रों में तो क्षेत्र की अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी जीवों के द्वारा देव अवहार काल से, संख्यातगुणे काल से, जगत्प्रतर अपहृत होता है, ऐसा कहा है। देव अवहार काल 256 अंगुल का वर्ग है। क्षेत्र की अपेक्षा देवों का प्रमाण जगत्प्रतर के 256 अंगुल के वर्गरूप प्रतिभाग से प्राप्त होता है।

श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती का मत तो यही है कि 600 योजन के वर्ग से जगत्प्रतर को भाग देने पर पंचेन्द्रिय योनिनी का प्रमाण प्राप्त होता है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच लबध्यपर्याप्त जीव द्रव्य प्रमाण की अपेक्षा असंख्यात हैं। काल की अपेक्षा असंख्यात अवसर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं। क्षेत्र की अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तों के द्वारा देवों के अवहार काल से असंख्यातगुणे हीन काल के द्वारा जगत्प्रतर अपहृत होता है। पैसठ हजार पाँच सौ छत्तीस (256 का वर्ग) प्रतरांगुल देवों के अवहार काल में आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर, पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त का अवहार काल होता है। सामान्य पंचेन्द्रिय तिर्यंच के प्रमाण में से पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त राशि को घटा देने पर पंचेन्द्रिय लबध्यपर्याप्त तिर्यंचों का प्रमाण प्राप्त होता है।

शंका - पंचेन्द्रिय तिर्यंच सामान्य मात्र से पंचेन्द्रिय पर्याप्त क्यों कम किये गये, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी का प्रमाण भी कम होना चाहिये, क्योंकि पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी भी पर्याप्त होते हैं?

समाधान - नहीं, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त में तीनों वेद वाले जीव आ जाते हैं। अतः पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकों के प्रमाण में पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियों का

स्कंधावार समूहेषु प्रस्त्रावोच्चार भूमिषु।।
शुक्रसिंधाण कश्लेष्मकर्ण दन्तमलेषुच।
अत्यन्ताशुचिदेशेषु सद्यः सम्मुर्च्छनेनय।। (भगवती आराधना पृ.सं. 483)

कर्म भूमियों में चक्रवर्ती, बलदेव, राजाओं की सेना के पड़ावों में मलमूत्र त्यागने के स्थानों में वीर्य, नाक के मल, कफ, कान और दाँतों के मल में और अत्यन्त गन्दे प्रदेशों में शीघ्र ही सम्मूर्च्छन जन्म से उत्पन्न होकर तत्काल ही अपर्याप्त दशा में मरण को प्राप्त होने वाले सम्मूर्छन मनुष्य होते हैं। उनका शरीर अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र होता है। इसी प्रकार मांस, मछली, अण्डा, शराब, चर्म, चर्म निर्मित वस्तु, गंदगी, मर्यादा से रहित दूध, दही, पानी, रोटी, भात, सब्जी, दाल, मुरब्बा, पापड़, आचार, ब्रेड, बिस्कीट, आइस्क्रीम, कुल्फी, कोल्ड्रींक, दही बड़ा, पानी पूड़ी, भेलपूड़ी, गीली जमीन, कच्चे पानी से धोया हुआ बिना सूखा हुआ वस्त्र आदि में भी ऐसे जीव उत्पन्न हो जाते हैं। (सूक्ष्मजीव विज्ञान... पृ.311)

सूक्ष्म जीवों से पूर्ण ब्रह्माण्ड

पुण्णा वि अपुण्णा विय थूला जीवा हंवंति साहारा।
छव्विह सुहुमा जीवा लोयायासे वि सहत्थ।। (23) **(स्वा.का.अनु.)**

अर्थ - पर्याप्तक और अपर्याप्तक, दोनों ही प्रकार के बादर जीव आधार के सहारे से रहते हैं। और छह प्रकार के सूक्ष्मजीव समस्त लोकाकाश में रहते हैं।

भावार्थ - जीव दो प्रकार के होते हैं- बादर और सूक्ष्म। बादर नामकर्म के उदय से बादर पर्याय में उत्पन्न जीवों को बादर कहते हैं और सूक्ष्म नामकर्म के उदय से सूक्ष्म पर्याय में उत्पन्न जीवों को सूक्ष्म कहते हैं। सूक्ष्मजीवों के भी छः भेद हैं- (1) पृथ्वीकायिक (2) जलकायिक (3) तेजकायिक (4) वायुकायिक (5) नित्यनिगोद वनस्पतिकायिक और (6) इतरनिगोद वनस्पतिकायिक। ये सब जीव पर्याप्त कभी होते हैं और अपर्याप्त कभी होते हैं। जो बादर होते हैं, वे किसी आधार से रहते हैं।

पुढवी-जलाग्गि-वाऊ चत्तारि वि होंति बायरा सुहुमा।
साहारण-पत्तेया वणप्फदी पंचमा दुविहा।। (124)

अर्थ - पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीव बादर भी होते हैं और सूक्ष्म भी होते हैं। पाँचवे वनस्पतिकायिक के दो भेद हैं- (1) साधारण और (2) प्रत्येक।

अनादि-सादि निगोदिया

साहारणा वि दुविहा अणाइ-काला य साइ-काला य।
ते वि य बादर-सुहुमा सेसा पुण बायरा सव्वे।। (125) कार्ति. प्रे.

अर्थ - साधारण वनस्पति काय के दो भेद हैं - अनादि साधारण वनस्पति काय और सादि साधारण वनस्पतिकाय। ये दोनों प्रकार के जीव बादर भी होते हैं और सूक्ष्म भी होते हैं। बाकी के सब जीव बादर ही होते हैं।

भावार्थ - साधारण नामकर्म के उदय से साधारण वनस्पतिकायिक जीव होते हैं, जिन्हें निगोदिया जीव भी कहते हैं। उनके भी दो भेद हैं- अनादिकालीन और आदिकालीन। अनादिकालीन साधारण वनस्पति काय को नित्य निगोद कहते हैं। ये नित्य निगोदिया और चतुर्गति निगोदिया जीव भी बादर और सूक्ष्म के भेद से दो प्रकार के होते हैं। जिन जीवों के बादर नामकर्म का उदय होता है वे बादर कहलाते हैं और जिन जीवों के सूक्ष्म नामकर्म का उदय होता है वे सूक्ष्म कहलाते हैं। दोनों ही प्रकार के निगोदिया जीव बादर भी होते हैं और सूक्ष्म भी होते हैं। किंतु बाकी के सब प्रत्येक वनस्पति कायिक जीव और द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीव बादर भी होते हैं।

साधारण की परिभाषा

साहारणाणि जेसि आहारूस्सास-काय-आऊणि।
ते साहारण-जीवा णंताणंत-प्पमाणाणं।। (126) कार्ति. प्रे.

भावार्थ - जिन अनंतानंत निगोदिया जीवों के साधारण नामकर्म का उदय होता है उनकी आहार, श्वासोच्छवास, शरीर और आयु साधारण यानि समान होती है। अर्थात् उन अनंतानंत जीवों का पिण्ड मिलकर एक जीव के जैसा हो जाता है अतः जब उनमें से एक जीव आहार ग्रहण करता है तो उसी समय उसी के साथ अनन्तानंत जीव आहार ग्रहण करते हैं। जब एक जीव श्वास लेता है तो उसी समय उसके साथ अनंतानंत जीव श्वास लेते हैं। जब उनमें से एक जीव मरकर नया शरीर धारण करता है तो उसी समय उसी के साथ अनंतानंत जीव वर्तमान शरीर को छोड़कर उसी नये शरीर को अपना लेते हैं। सारांश यह है कि एक के जीवन के साथ उन सबका जीवन होता है और एक की मृत्यु के साथ उन सबकी मृत्यु हो जाती है इसी से उन जीवों को साधारण जीव कहते हैं। इसका और भी खुलासा इस प्रकार है- साधारण वनस्पति कायिक जीव एकेन्द्रिय होता है। और एकेन्द्रिय जीव के चार पर्याप्तियाँ होती हैं - (1) आहार पर्याप्ति (2) शरीर पर्याप्ति (3) इन्द्रिय पर्याप्ति (4) श्वासोच्छ्वास् पर्याप्ति। जब कोई जीव जन्म लेता है तो जन्म लेने के प्रथम समय में आहार पर्याप्ति होती है, उसके बाद उक्त तीनों पर्याप्तियाँ एक के बाद एक के क्रम से होती हैं। आहार वर्गणा के रूप में ग्रहण किये गये पुद्गल स्कन्धों का खल भाग और रस भाग रूप परिणमन होना आहार पर्याप्ति का कार्य है। खल भाग और रस भाग का शरीर रूप पारिणमन होना शरीर पर्याप्ति का कार्य है। आहार वर्गणा के परमाणुओं का इन्द्रिय के आकार रूप परिणमन होना इन्द्रिय पर्याप्ति का कार्य है। और आहार वर्गणा के परमाणुओं का श्वासोच्छ्वास रूप परिणमन होना श्वासोच्छवास पर्याप्ति का कार्य है। एक शरीर में रहने वाले अनंतानंत साधारण कायिक जीवों में ये चारों पर्याप्तियाँ और इनका कार्य एक साथ एक समय में होता है। गोम्मटसार जीवकाण्ड में साधारण वनस्पति काय का लक्षण इस प्रकार कहा है- जहाँ एक जीव के मर जाने पर अनन्त जीवों का मरण होता हो जाता है और एक जीव के शरीर को छोड़कर चले जाने पर अनंतानंत जीव उस शरीर को

शरीर का स्वामी एक ही जीव होता है उसे प्रत्येक शरीर कहते हैं। और जिस वनस्पति रूप शरीर के बहुत से जीव समान रूप से स्वामी होते हैं उसे साधारण शरीर कहते हैं। सारांश यह है कि प्रत्येक वनस्पति में तो एक जीव का एक शरीर होता है। और साधारण वनस्पति में बहुत से जीवों का एक ही शरीर होता है। ये बहुत से जीव एक साथ ही खाते हैं; एक साथ ही श्वास लेते हैं। एक साथ ही मरते हैं और एक साथ ही जीते हैं। इन्हें निगोदिया जीव कहते हैं। इन साधारण अथवा निगोदिया जीवों के भी दो भेद हैं - (1) नित्य निगोदिया (2) इतर निगोदिया चतुर्गति निगोदिया। जो जीव अनादिकाल से निगोद में ही पड़े हुये हैं और जिन्होंने कभी त्रस पर्याय नहीं पाई है उन्हें नित्य निगोदिया कहते हैं जो जीव त्रस पर्याय धारण करके निगोद पर्याय में चले जाते हैं उन्हें इतर निगोद कहते हैं। साधारण वनस्पति की तरह प्रत्येक वनस्पति के भी दो भेद हैं- (1) सप्रतिष्ठित प्रत्येक (2) प्रतिष्ठित प्रत्येक। जिस प्रत्येक वनस्पति के शरीर में बादर निगोदिया जीवों का आवास हो उसे सप्रतिष्ठत प्रत्येक कहते हैं। जिस प्रत्येक वनस्पति के शरीर में बादर निगोदिया जीवों का वास न हो उसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं।

सूक्ष्म बादर की पहचान

ण य जेसिं पडिखलागं पुढवी-तोएहिं अग्नि-वाएहिं।

ते जाण सुहुम-काया इयरा पुण थूल-काया य।। (127) का.प्रे.

अर्थ - जिन जीवों का पृथ्वी से, जल से, आग से, और वायु से प्रतिघात नहीं होता उन्हें सूक्ष्मकायिक जीव जानो। और जिनका इनसे प्रतिघात होता है स्थूलकायिक जीव जानो।

भावार्थ - पाँच प्रकार के स्थावर कायों में भी बादर और सूक्ष्म भेद होता है। त्रसकायिक जीव तो बादर ही होते हैं। जो जीव न पृथ्वी से रुकते हैं, न जल से रुकते हैं, न आग से जलते हैं और न वायु से टकराते हैं- सारांश यह है कि वज्रपटल वगैरह से भी जिनका रूकना संभव नहीं है। उन जीवों को सूक्ष्मकायिक जीव कहते

प्रत्येक वनस्पति

पत्तेया वि य दुविहा णिगोद-सहिदा तहेव रहिया य।

दुविहा होंति तसा वि य वि-ति चउरक्खा तहेव पंचरक्खा।। (128) का.प्रे.

अर्थ- प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं (1) निगोद सहित (2) निगोद रहित। त्रस जीव भी दो प्रकार के होते हैं- (1) दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय (2) पंचेन्द्रिय।

भावार्थ - प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं। एक निगोद सहित अर्थात् जिसके आश्रय अनेक निगोदिया जीव रहते हैं। ऐसे प्रत्येक वनस्पति को सप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं। गोम्मटसार में कहा है- वनस्पतियाँ 7 प्रकार की होती हैं - मूल-बीज, अग्रबीज, पर्वबीज, कंदबीज, स्कंधबीज, बीजरूह और सम्मूर्च्छन। जिन वनस्पतियों का बीज उनका मूल ही होता है, उन्हें मूलबीज कहते हैं। जैसे - अदरक, हल्दी वगैरह।

जिन वनस्पतियों का बीज उनका अग्र भाग होता है उन्हें अग्रबीज कहते हैं। जैसे नेत्रबाला वगैरह। जिन वनस्पतियों का बीज उनका पर्व भाग होता है उन्हें पर्वबीज कहते हैं। जैसे - ईख, बेंत वगैरह। जिन वनस्पतियों का बीज कंद होता है उन्हें कंदबीज कहते हैं जैसे - रतालू, सूरण वगैरह। जिन वनस्पतियों का बीज उनका स्कंध भाग होता है उन्हें स्कंधबीज कहते हैं। जैसे सलई, पलाश वगैरह। जो वनस्पतियाँ बीज से पैदा होती है उन्हें बीजरूह कहते हैं। जैसे - धान, गेहूँ, वगैरह। और जो वनस्पति स्वयं ही उग आती है वह सम्मूर्च्छन कही जाती हैं। ये वनस्पतियाँ अनंतकाय अर्थात् सप्रतिष्ठित प्रत्येक भी होती हैं और अप्रतिष्ठित प्रत्येक भी होते हैं। जिस प्रत्येक वनस्पति की धारियाँ, फांके और गाँठें दिखाई न देती हो, जिसे तोड़ने पर खट से दो टुकड़े बराबर हो जाये और बीच में कोई तार वगैरह न लगा रहे तथा जो काट देने पर भी पुनः उग जाये वह साधारण अर्थात् सप्रतिष्ठित प्रत्येक है। यहाँ सप्रतिष्ठित प्रत्येक है शरीर वनस्पति को

टुकड़े न हो, टूटने पर तार लगा रह जाये आदि, उस वनस्पति को अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर कहते हैं। जिस वनस्पति की जड़, कंद, छाल, कोंपल, टहनी, पत्ते, फूल, फल और बीज को तोड़ने पर खट से बराबर दो टुकड़े हो जायें उसे सप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं। और जिसका सम भंग न हो उसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं। तथा जिस वनस्पति के कंद की, जल की, टहनी की अथवा तने की छाल मोटी हो वह अनंतकाय यानि सप्रतिष्ठित प्रत्येक है। और जिस वनस्पति के कंद वगैरह की छाल पतली हो वह अप्रतिष्ठित प्रत्येक है। इस तरह श्री गोम्मटसार में सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित वनस्पति की पहचान बतलाई है। अस्तु अब पुनः मूल गाथा का व्याख्यान करते हैं। प्रत्येक वनस्पति के दो भेद हैं - (1) निगोद सहित (2) निगोद रहित। अथवा एक सप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर, एक अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर। जिन प्रत्येक वनस्पति के शरीरों को निगोदिया जीवों ने अपना वासस्थान बनाया है उन्हें सप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर कहते हैं। और जिन प्रत्येक वनस्पति के शरीर में निगोदिया जीवों का आवास नहीं है। उन्हें अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर कहते हैं। जैसे पके हुये तालफल, नारियल, इमली, आम वगैरह का शरीर। जिनके त्रस नामकर्म का उदय होता है उन्हें त्रस जीव कहते हैं। उनके भी दो भेद हैं - एक विकलेन्द्रिय, एक सकलेन्द्रिय। दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय जीवों को विकलेन्द्रिय कहते हैं, क्योंकि शंख आदि दोइन्द्रिय जीवों के स्पर्शन और रसना दो ही इन्द्रियाँ होती हैं, चिऊंटी, खटमल वगैरह तेइन्द्रिय जीवों के स्पर्शन, रसना और घ्राण ये तीन ही इन्द्रियाँ होती हैं। और भौंरा, मक्खी, डांस, मच्छर वगैरह चौइन्द्रिय जीवों के स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार ही इन्द्रियाँ होती हैं। अतः ये जीव विकलेन्द्रिय कहे जाते हैं। मनुष्य देव, नारकी, पशु आदि पंचेन्द्रिय जीवों को सकलेन्द्रिय कहते है, क्योंकि उनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पाँचों इन्द्रियाँ पायी जाती है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच के भेद

पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों के तीन भेद हैं- जलचर, थलचर और नभचर। इन तीनों में से प्रत्येक के दो-दो भेद हैं। एक मनसहित सैनी और मनरहित असैनी। भावार्थ -पंचेन्द्रिय नामकर्म के उदय से तिर्यंच जीव पंचेन्द्रिय होते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों के तीन भेद हैं - जलचर, थलचर, नभचर। अर्थात् कुछ पंचेन्द्रिय जीव जलचर होते हैं। जैसे मछली, कछुआ आदि। कुछ थलचर होते हैं - जैसे हाथी, घोड़ा, गाय, भैंस, व्याघ्र, भेड़िया, सिंह, मृग, खरगोश वगैरह। और कुछ पंचेन्द्रिय जीव नभचर होते हैं, जैसे - तोता, कौआ, बगुला, चिड़िया, सारस, हंस, मयूर वगैरह। इन तीनों प्रकार के तिर्यंचों में से भी प्रत्येक के दो-दो भेद हैं - एक अनेक प्रकार के संकल्प विकल्पों से युक्त मनसहित सैनी तिर्यंच और एक अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प युक्त मन से रहित असैनी तिर्यंच। अर्थात् सैनी जलचर तिर्यंच, असैनी जलचर तिर्यंच, सैनी थलचर तिर्यंच, असैनी थलचर तिर्यंच, सैनी नभचर तिर्यंच, असैनी नभचर तिर्यंच इस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के छः भेद हुये।

ते वि पुणो वि य दुविहा गब्भज-जम्मा तहेव संमुच्छा।
भोग-भुवा गब्भ-भुवा थलयर-णह गामिणो सण्णी।। (130)

इन छः प्रकार तिर्यंचों के भी दो भेद हैं- एक गर्भ जन्म वाले और एक सम्मूर्च्छन जन्म वाले। किंतु भोगभूमि के तिर्यंज गर्भज ही होते हैं। तथा वे थलचर व नभचर ही होते हैं, जलचर नहीं होते और सब सैनी ही होते है असैनी नहीं होते। भावार्थ- वे पूर्वोक्त छः प्रकार के तिर्यंच भी दो प्रकार के होते हैं- एक गर्भ जन्म वाले और एक सम्मूर्च्छन जन्म वाले। जन्म लेने वाले जीव के द्वारा रज और वीर्य रूप पिण्ड को अपने शरीर रूप से परिणमाने का नाम गर्भ है। उस गर्भ से जो पैदा होते हैं उन्हें गर्भ जन्म वाले कहते हैं। अर्थात् माता के गर्भ से पैदा होने वाले जीव गर्भ जन्म वाले कहे जाते हैं। शरीर के आकार रूप परिणमन करने की योग्यता रखने वाले पुद्गल स्कंधों का चारों ओर से एकत्र होकर जन्म

वगैरह थलचर तिर्यंच तथा हंस, मोर, तोता वगैरह नभचर तिर्यंच ही होते है, जलचर तिर्यंच नहीं होते। तथा ये सब पंचेन्द्रिय तिर्यंच संज्ञी ही होते हैं, असंज्ञी नहीं होते।

तिर्यंचों के 85 वर्ग (जीव समास)

अट्ठवि गब्भज दुविहा तिविहा संमुच्छिणो वि तेवीसा।
इदि पणसीदी भेया सव्वेसिं होति तिरियाणं।। (131) स्वा.का.

आठों ही गर्भजों के पर्याप्त और अपर्याप्त की अपेक्षा सोलह भेद होते हैं। और तेईस सम्मूर्च्छन जन्म वालों के पर्याप्त निवृत्त्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा उनहत्तर भेद होते हैं। इस तरह सब पर्याप्त के पिचासी भेद होते हैं।

भावार्थ- कर्मभूमियाँ गर्भज तिर्यंच जलचर, जैसे मछली वगैरह। ये संज्ञी और असंज्ञी के भेद से दो प्रकार के होते हैं (2) कर्मभूमियाँ गर्भज तिर्यंच थलचर, जैसे हिरन वगैरह, ये सभी संज्ञी और असंज्ञी भेद से दो प्रकार के होते हैं (2) कर्मभूमियाँ गर्भज तिर्यंच नभचर जैसे सभी पक्षी वगैरह ये भी संज्ञी और असंज्ञी के भेद से दो प्रकार के होते हैं (2) भोगभूमियाँ थलचर तिर्यंच संज्ञी ही होते हैं (1) और भोगभूमियाँ नभचर तिर्यंच भी संज्ञी ही होते हैं (1) इस तरह ये आठों ही कर्मभूमियाँ और भोगभूमियाँ गर्भज तिर्यंच पर्याप्त भी होते हैं और निवृत्यपर्याप्त भी होते हैं। अतः गर्भज तिर्यंचों के सोलह भेद होते हैं। तथा सम्मूर्च्छन जन्म वाले तिर्यंचों के तेइस भेद होते हैं, जो इस प्रकार हैं- सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, बादर पृथ्वी कायिक सूक्ष्म जलकायिक, बादर जलकायिक, सूक्ष्म तेजकायिक, बादर तेजकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, बादर वायुकायिक, सूक्ष्म नित्य निगोद साधारण वनस्पतिकायिक, बादर नित्य निगोद वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म चतुर्गति निगोद साधारण वनस्पतिकायिक, बादर चतुर्गति निगोद साधारण वनस्पतिकायिक तथा सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक और अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव बादर ही होते हैं। इस तरह एकेन्द्रिय के चौदह भेद तिर्यंच पंचेन्द्रिय संज्ञी भी होते हैं और असंज्ञी भी होते हैं। कर्मभूमियाँ थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच संज्ञी और असंज्ञी (2) कर्मभूमियाँ नभचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच संज्ञी और असंज्ञी (2) इस तरह कर्मभूतियाँ तिर्यंच पंचेन्द्रिय के छः भेद हुए। इन सबको जोड़ने पर 14+3+6=23 भेद सम्मूर्च्छन तिर्यंचों के होते हैं। ये तेईस प्रकार के सम्मूर्च्छन तिर्यंच भी तीन प्रकार के होते हैं पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक। अतः 23 को 3 से गुणा करने पर सब सम्मूर्च्छन तिर्यंच के 69 भेद होते हैं। इनमें पहले कहे हुए गर्भज तिर्यंचों के 16 भेद मिलने पर सब 69+16=85 पिचासी भेद होते हैं।

मनुष्यों के आठ भेद

अज्जव-मिलेच्छ-खंडे भोग-महीसु वि कुभोग भूमीसु।
मणुया हंवति दुविहा णिव्वित्ति-अपुण्णगा पुण्णा।। (132) (स्वा.का.पृ.70)

आर्यखण्ड में, म्लेच्छखण्ड में, भोगभूमि में और कुभोगभूमि में मनुष्य होते हैं। ये चारों कई प्रकार के मनुष्य पर्याप्त और निवृत्यपर्याप्त के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

भावार्थ- आर्यखण्ड, म्लेच्छखण्ड भोगभूमि और कुभोगभूमि की अपेक्षा मनुष्य चार प्रकार के होते हैं तथा ये चारों प्रकार के मनुष्य निवृत्यपर्याप्त भी होते हैं और पर्याप्त भी होते हैं। इसका खुलासा इस प्रकार है- आर्यखण्ड 170 हैं- पाँच भरत संबंधी 5, पाँच ऐरावत संबंधी 5, और पाँच विदेह संबंधी 160 । क्योंकि एक-एक महाविदेह में 32-32 उपविदेह होते हैं। तथा आठ सौ पचास (850) म्लेच्छखण्ड हैं, क्योंकि प्रत्येक भरत, प्रत्येक ऐरावत और प्रत्येक उपविदेह क्षेत्र के छः छः खण्ड होते हैं। जिनमें से एक आर्यखण्ड होता है और शेष 5 म्लेच्छखण्ड होते हैं। अतः एक सौ सत्तर आर्यखण्डो से पाँच गुने म्लेच्छखण्ड हैं। इससे 170×5=850 आठ सौ पचास म्लेच्छखण्ड हैं। और तीस भोगभूमियाँ हैं- 5 हैमवत और 5 हैरण्यवत ये 10 जघन्य भोगभूमियाँ हैं। 5 हरिवर्ष और 5 रम्यक वर्ष ये 10 भोगभूमियाँ हैं। 5

समुद्र और कालोदधि समुद्र में 96 अंतर्द्वीप हैं जिनमें से 24 अंतर्द्वीप लवण समुद्र के जंबूद्वीप संबंधी तट के करीब में हैं और 24 अंतर्द्वीप धातकी खण्ड संबंधी तट के निकट हैं। इस तरह 48 अंतर्द्वीप तो लवण समुद्र में हैं और इसी तरह 48 अतंर्द्वीप कालोदधि समुद्र में है, जिनमें से चौबीस अभ्यंतर तट के करीब हैं और 24 वाह्य तट के करीब हैं। इन 96 अंतर्द्वीप में कुभोगभूमि हैं। अतः 96 कुभोगभूमियाँ हैं। इन 170 आर्यखण्ड में, 850 म्लेच्छखण्डों में, 30 भोगभूमियों में और 96 कुभोगभूमियों में रहने वाले मनुष्य निवृत्त्यपर्याप्तक और पर्याप्तक के भेद से दो-दो प्रकार के होते हैं। इस तरह मनुष्यों के आठ भेद होते हैं।

लब्ध्यपर्याप्तक मानव, नारकी देव

संमुच्छिया मणुस्सा अज्जव-खंडेसु होंति णियमेण।

ते पुण लद्धि-अपुण्णा णारय-देवा वि ते दुविहाण (133) का.प्रे.

अर्थ- सम्मूर्च्छन मनुष्य नियम से आर्यखण्डो में ही होते हैं। और वे लब्ध्यपर्याप्तक ही होते हैं। तथा नारकी और देव निवृत्यपर्याप्तक और पर्याप्तक के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

भावार्थ- एक सौ सत्तर आर्यखण्डों में ही सम्मूर्च्छन मनुष्य नियम से होते हैं, आर्यखण्ड के सिवा अन्य भोगभूमि वगैरह में नहीं होते। तथा वे सम्मूर्च्छन मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक ही होते हैं। वे सम्मूर्च्छन मनुष्य कहाँ उत्पन्न होते हैं? इस प्रश्न का उत्तर भगवती आराधना में देते हुए बतलाया है कि वीर्य में, नाक के सिंघाणकों में, कफ में, दाँत के मैल में, कान के मैल में और शरीर के अत्यन्त गंदे प्रदेशों में तुरंत ही सम्मूर्च्छन जीव पैदा हो जाते हैं। अस्तु इस प्रकार मनुष्य की अपेक्षा दो प्रकार के होते हैं। और भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क और कल्पवासी देव भी पर्याप्त और निवृत्त्यपर्याप्त की अपेक्षा दो प्रकार के होते हैं। इस तरह तिर्यंचों के पिचासी, मनुष्यों के नौ और नारकी तथा देवों के चार ये सब मिलाकर जीवसमास के 98 अठानवें भेद होते हैं। जिनके द्वारा अथवा जिनमें जीवों का संक्षेप से संग्रह किया जाता है उन्हें जीवसमास कहते हैं सो इन 98

लब्ध्यपर्याप्त का स्वरुप

उस्सासट्ठरसमे भागे जो मरदि ण य समाणेदि।

एक्को वि य पज्जत्ती लद्धि-अपुण्णो हवे सो दु।। (137) का.प्रे.

अर्थ- जो जीव श्वास के अठारहवें भाग में मर जाता है और एक भी पर्याप्ति को समाप्त नहीं कर पाता, उसे लब्ध्यपर्याप्त कहते हैं।

भावार्थ- वह जीव लब्ध्यपर्याप्तक है जो एक भी पर्याप्ति को पूर्ण नहीं करता और एक श्वास के अट्ठारह भागों में से एक भाग में ही मर जाता है। गोम्मटसार में भी कहा है- अपर्याप्त नामकर्म का उदय होने पर जीव अपनी-2 पर्याप्ति को पूर्ण नहीं करता और अंतर्मुहुर्त में मर जाता है। उसे लब्ध्यपर्याप्तक कहते हैं। अर्थात् एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के अपर्याप्त नामकर्म का उदय होने पर वे जीव अपनी-अपनी चार पाँच या छः पर्याप्तियों में से एक भी पर्याप्ति को पूर्ण नहीं कर पाते। तथा श्वास के अट्ठारहवें भाग प्रमाण अंतर्मुहूर्त काल में ही मर जाते हैं। उन जीवों को लब्ध्यपर्याप्तक कहते हैं। क्योंकि लब्धि अर्थात् अपनी-2 पर्याप्तियों को पूर्ण करने की योग्यता जो अपर्याप्त अर्थात् अपूर्ण हैं वे लब्ध्यपर्याप्त हैं ऐसी लब्ध्यपर्याप्त शब्द की व्युत्पत्ति है। एकेन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त लब्ध्यपर्याप्तक जीवों में निरंतर जन्ममरण के द्वारा इस प्रकार कहा है- एक अंर्तुहूर्त काल में क्षुद्र अर्थात् लब्ध्यपर्याप्त जीव 66336 बार मरता है और 66336 बार ही जन्म लेता है। (1) उन छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस क्षुद्र भवों में से 66132 बार तो लब्ध्यपर्याप्त एकेन्द्रिय में जन्म लेता है। जिसका खुलासा इस प्रकार है- कोई एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव अपने भव के प्रथम समय से लेकर उच्छवास के अठारहवे भाग प्रमाण अपनी आयु पूरी करके पुनः एकेन्द्रिय पर्याय में ही उत्पन्न हुआ। और उच्छवास के अट्ठारहवें भाग काल तक जीकर मर गया और पुनः एकेन्द्रिय पर्याय में उत्पन्न हुआ। इस तरह यदि वह निरंतर एकेन्द्रिय

पर्याप्तकों में 60 बार। चौइन्द्रिय लब्ध्य पर्याप्तकों में 40 बार और पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक में 24 बार उसमें भी मनुष्य लब्धिपर्याप्तकों में 8 बार असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक और संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक में आठ 8 बार इस तरह मिलकर पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक में चौबीस बार निरंतर जन्म लेता है। इससे अधिक जन्म नहीं ले सकता। एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के निरंतर क्षुद्र भवों की संख्या जो 66132 बतलाई है उसका विभाग स्वामी की अपेक्षा से इस प्रकार है- पृथ्वीकाय, जलकाय, तेजकाय, वायुकाय और साधारण वनस्पतिकाय ये पाँचों बादर और सूक्ष्म के भेद से 10 (दस) होते हैं। इनमें प्रत्येक वनस्पति को मिलाने से ग्यारह होते हैं। इन ग्यारह प्रकार के लब्ध्यपर्याप्तकों में से एक-एक भेद में 6012 निरंतर क्षुद्र भव होते हैं। अर्थात् लब्ध्यपर्याप्त जीव जो एकेन्द्रिय पर्याय में 66132 भव धारण करता है उन भावों में 6012 भव पृथ्वीकाय में धारण करता है, 6012 भव जलकाय में धारण करता है, 6012 भव तेजकाय में धारण करता है। इस तरह एकेन्द्रिय के ग्यारहों भेदों में 6012, 6012 बार जन्म लेता और मरता है। इस प्रकार के अंतर्मुहूर्त काल में लब्ध्यपर्याप्तक जीव 66336 बार जन्म लेता है, और उतनी ही बार मरता है।

गाथा 137 की संदृष्टि का खुलासा इस प्रकार है-

(1) पृथ्वीकायिक सूक्ष्म के भव 6012+ (2) पृथ्वीकायिक बादर के भव 6012+ (3) जलकायिक सूक्ष्म के भव 6012+ (4) जलकायिक बादर के भव 6012+ (5) तेजकायिक सूक्ष्म के भव 6012+ (6) तेजकायिक बादर के भव 6012+ (7) वायुकायिक सूक्ष्म के भव 6012+ (8) वायुकायिक बादर के भव 6012+ (9) साधारणकायिक सूक्ष्म के भव 6012+ (10) साधारणकायिक बादर के भव 6012+ (11) प्रत्येक वनस्पतिकायिक के भव 6012=66132+दोइन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के 80+ तेइन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक 60+ चौइन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के 40+ पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के 24= 66336! ये

है सो इतने उच्छ्वास में 66336 में भवलब्ध्यपर्याप्तक जीव धारण करता है। एक अंतर्मुहूर्त में 3773 उच्छ्वास होते हैं। अतः 3685 1/3 उच्छ्वास एक-एक अंतर्मुहूर्त में हुआ। यदि 1/18 उच्छ्वास में 1 भव धारण करता है तो 3685 1/3 में कितने भव धारण करेगा ऐसा त्रैराशिक करने पर 3685 1/3 में 18 का गुणा करने से 66336 भव होते हैं। (3) यदि छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस भव का काल 3685 1/3 उच्छ्वास है तो एक भव का काल कितना है ऐसा त्रैराशिक करने पर 66336 से 3685 1/3 उच्छ्वास में भाग देने से एक भव का काल 1/18 उच्छ्वास आता है (4) यदि 3685 1/3 उच्छवास में 66336 भव धारण करता है तो 1/18 उच्छ्वास में कितने भव धारण करेगा? ऐसा त्रैराशिक करने पर उत्तर एक भव आता है।

पर्याप्त एवं लब्ध्यपर्याप्त जीवों की पर्याप्तियाँ

लद्धियपुण्णे पुण्णं पज्जत्ती एयक्ख-वियल-सण्णीणं।
चदु-पण-छक्कं कमसो पज्जत्तीए वियाणेह।। (138) का.प्रे.

अर्थ- लब्ध्यपर्याप्त जीव तो अपर्याप्तक होता है अतः उसके पर्याप्ति नहीं है। एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के क्रम से चार, पाँच और छः पर्याप्तियाँ जानो।

भावार्थ- लब्ध्यपर्याप्तक जीव के किसी पर्याप्ति की पूर्ति नहीं होती, क्योंकि वह अपर्याप्तक है। अतः लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के पर्याप्ति का कथन इतने से ही पूर्ण हो जाता है। पर्याप्तक जीवों में एकेन्द्रिय के आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, उच्छ्वासपर्याप्ति ये चार पर्याप्तियाँ होती हैं। दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के आहार, शरीर, इन्द्रिय, उच्छ्वास और भाषा मन ये छः पर्याप्तियाँ होती हैं।

बादर एवं सूक्ष्म जीव

बादर सहमदरेण य बादर सहमा हवंति जोवेहा।

गाथार्थ- बादर व सूक्ष्म नाम कर्मोदय से उन पृथ्वीकायिक आदि जीवों का शरीर बादर व सूक्ष्म होता है, घात लक्षण वाला शरीर बादर (स्थूल) होता है। और आघात लक्षण वाला शरीर सूक्ष्म होता है।

(Their bodies are gross or fine through the operation of gross and fine body making karmas). Obstructive (ghata) body is gross, while non-obstarctive (aghata) body is fine.

Commentary- Ghata Sharira, an obstructive body is a gross body which obstructs and is obstructed by other objects. A body which neither construct nor is obstructed by other objects is aghata sharira non-obstructive or a fine body. A fine body can pass through any kind of matter.

Gross bodies are called destructible or obstructive because they alone can destroy each other. Fine bodies are in destructible or non-obstructive because nothing can kill them and they can kill nothing. They die a natural death at the exhaustion of their age karma. They prevade throughout the whole universe.

विशेषार्थ- स्थावर जीव दो प्रकार के हैं- बादर व सूक्ष्म। जिनके जीवविपाकी बादर नामकर्म का उदय है, वे बादर जीव हैं। जिनके सूक्ष्म जीवविपाकी नामकर्म का उदय है, वे सूक्ष्म जीव हैं। बादर जीवों का शरीर भी बादर होता है और सूक्ष्म जीवों का शरीर भी सूक्ष्म होता है।

शंका- बादर शब्द स्थूल का पर्यायवाची है और स्थूलता का स्वरूप नियत नहीं है, अतः यह ज्ञात नहीं होता है कि कौन-कौन जीव स्थूल हैं। जो चक्षु इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण करने योग्य हैं, वे स्थूल हैं, यदि ऐसा कहा जाए तो भी नहीं बनता, क्योंकि ऐसा मानने पर जो स्थूल जीव चक्षु इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण करने के योग्य नहीं है, उनके सूक्ष्मपने की प्राप्ति हो जाएगी। जिनका चक्षु इन्द्रिय द्वारा ग्रहण नहीं होता उनको बादर मन लेने पर सूक्ष्म और बादर में कोई भेद नहीं रह जायेगा।

समाधान- नहीं, क्योंकि यह शंका आगम के स्वरूप की अनभिज्ञता की द्योतक है। वह बादर शब्द स्थूल का पर्यायवाची नहीं है, किंतु बादर नामकर्म का वाचक को उत्पन्न करने वाले को सूक्ष्म कहते हैं। तथापि जो चक्षु इंद्रिय द्वारा ग्रहण करने योग्य नहीं है, वह सूक्ष्म शरीर है और जो उसके द्वारा ग्रहण करने योग्य है वह बादर शरीर है। अतः सूक्ष्म और बादर कर्म के उदय वाले सूक्ष्म और बादर शरीर से युक्त जीवों को सूक्ष्म और बादर संज्ञा हठात् प्राप्त हो जाती है। इससे यह सिद्ध हुआ जो चक्षु से ग्राह्य हैं वे बादर हैं और जो चक्षु से अग्राह्य हैं, वे सूक्ष्म हैं। यदि यह लक्षण न माना जाये तो सूक्ष्म और बादर में कोई भेद नहीं रह जाता?

समाधान- ऐसा नहीं हैं, क्योंकि स्थूल तो हो और चक्षु से ग्रहण करने योग्य न हो, इस कथन में कोई विरोध नहीं है।

शंका- सूक्ष्म शरीर से असंख्यातगुणी अधिक अवगाहना वाले शरीर को बादर कहते हैं और उस शरीर से युक्त जीवों को उपचार से बादर कहते हैं। अथवा बादर शरीर से असंख्यातगुणी हीन अवगाहना वाले शरीर को सूक्ष्म कहते हैं।

समाधान- यह कल्पना भी ठीक नहीं है, क्योंकि सबसे जघन्य बादर शरीर से सूक्ष्म नामकर्म के द्वारा निर्मित सूक्ष्म शरीर की अवगाहना असंख्यातगुणी होने से उपर्युक्त कथन में अनेकांत दोष आता है। इसलिए जिन जीवों के बादर नामकर्म का उदय पाया जाता है वे बादर हैं और जिनके सूक्ष्म नामकर्म का उदय पाया जाता है वे सूक्ष्म हैं, यह बात सिद्ध हो जाती है।

शंका- सूक्ष्म नामकर्म के उदय और बादर नामकर्म के उदय में क्या भेद है?

समाधान- बादर नामकर्म का उदय दूसरे मूर्त-पदार्थों से आघात करने योग्य शरीर को धारण करता है और सूक्ष्म नामकर्म का उदय दूसरे मूर्त-पदार्थों के द्वारा आघात नहीं होने योग्य शरीर को उत्पन्न करता है यही इन दोनों में भेद है।

शंका- सूक्ष्म जीवों का शरीर सूक्ष्म होने से ही अन्य मूर्त द्रव्यों के द्वारा आघात को प्राप्त नहीं होता है, अतः मूर्त द्रव्यों के साथ प्रतिघात का नहीं होना सूक्ष्म नामकर्म के उदय से नहीं मानना चाहिए?

हीन अवगाहना वाले और बादर नामकर्म के उदय से बादर संज्ञा को प्राप्त होने वाले बादर शरीर की सूक्ष्मता के प्रति कोई विशेषता नहीं रह जाती है, अतएव उसका भी मूर्त-पदार्थों से प्रतिघात नहीं होगा, ऐसी आपत्ति आएगी।

शंका- आ जाने दो?

समाधान- नहीं, क्योंकि ऐसा मानने पर सूक्ष्म और बादर नामकर्म के उदय में कोई विशेषता नहीं रह जाएगी।

शंका- सूक्ष्म नामकर्म का उदय सूक्ष्म शरीर को उत्पन्न करने वाला है, इसलिए इन दोनों के उदय में भेद है।

समाधान- नहीं, क्योंकि सूक्ष्म शरीर से भी असंख्यातगुणी हीन अवगाहना वाले और बादर नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुए बादर शरीर की उपलब्धि होती है।

इस उपर्युक्त कथन से यह बात सिद्ध हुई कि जिसका मूर्त-पदार्थों से प्रतिघात नहीं होता है, ऐसे शरीर का निर्माण करने वाला सूक्ष्म नामकर्म है और उससे विपरीत अर्थात् मूर्त-पदार्थों से प्रतिघात को प्राप्त होने वाले शरीर को निर्माण करने वाला बादर नामकर्म है।

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के हैं बादर और सूक्ष्म अर्थात् बादर पृथ्वीकायिक और सूक्ष्म पृथ्वीकायिक। जलकायिक जीव दो प्रकार के हैं बादर जलकायिक और सूक्ष्म जलकायिक। अग्निकायिक जीव दो प्रकार के हैं बादर अग्निकायिक और सूक्ष्म अग्निकायिक। वायुकायिक जीव दो प्रकार के है- बादर वायुकायिक और सूक्ष्म वायुकायिक।

चारों स्थावरों के शरीर की अवगाहना और आश्रय

तद्देहमंगुलस्स असंखभागस्स बिंदमाणं तु।
आधारे थूला ओ सव्वत्थ णिरंतरा सुहुमा।। (184)

गाथार्थ- हे भव्यों! बादर और सूक्ष्म दोनों प्रकार के चारों स्थावर जीवों की अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। स्थूल अर्थात् बादर जीव

part of a cubic figure. Gross bodies need support but fine bodies need no support and exist every where (in the universe) with nothing intervenning between them.

Commentary:- The physical size of such souls is so small that a grain of earth, a drop of water, a tine flame or a breath of wind, countains numberless embodies souls.

From the smallest undevelopable fine air bodies being up to the largest developable gross earth bodies being there are 42 stages of different sizes body. For their various degrees.

The host souls, Nigada vegetables which derive support from the host-individual-souled vegetables are all gross-bodies and not fine-bodied, which need no support.

विशेषार्थ- आठ यव से द्रव्य अंगुल निष्पन्न होता है, उसको तीन बार परस्पर गुणित करने से घनांगुल हो जाता है। उस द्रव्य घनांगुल में जितने आकाश के प्रदेश हों, उन प्रदेशों के असंख्यात खण्ड करने पर उनमें से एक खण्ड, अंगुल का असंख्यातवाँ भाग होता है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुकायिक बादर व सूक्ष्म जीवों के शरीर की उतनी अवगाहना होती है अर्थात् घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण आकाशप्रदेशों को उक्त जीवों का शरीर रोककर ठहरता है।

शंका- घनांगुल प्रमाण आकाशप्रदेशों का भागहार क्या है?

समाधान- पल्य का असंख्यातवाँ भाग।

शंका- यह जघन्य अवगाहना का प्रमाण है या उत्कृष्ट अवगाहना का?

समाधान- सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त जीव की जघन्य शरीर अवगाहना से लेकर बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक की उत्कृष्ट शरीर अवगाहना पर्यन्त जितनी भी शरीर अवगाहना है अर्थात् बादर व सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों का सर्व शरीर अवगाहनाओं का प्रमाण अंगुल का असंख्यातवाँ भाग है।

शंका- सब शरीरों की अवगाहना भिन्न-भिन्न होती है, उन सबका प्रमाण एक

संख्या भी असंख्यात प्रकार की होती है। सामान्य दृष्टि से वे सब अंगुल के असंख्यातवें भाग है तथापि विशेष दृष्टि से उनमें परस्पर हीनाधिकता है।

शंका- विशेषरूप हीनाधिकता है या गुणाकार रूप हीनाधिकता है?

समाधान- विशेष रूप हीन अधिकता भी है और गुणाकार रूप हीन अधिकता भी है। यह पूर्व में शरीर अवगाहना के कथन से स्पष्ट है।

शंका- अंगुल के असंख्यातवें भाग में गुणाकार वृद्धि होने पर भी अंगुल का असंख्यातवाँ भाग ही बना रहता है यह कैसे संभव है?

समाधान- अंगुल के असंखयातवें भाग में असंख्यातगुणी वृद्धि होने पर पूर्व की अपेक्षा प्रमाण में वृद्धि होती है, तथापि असंख्यात से गुणा करने पर जो लब्ध प्राप्त होता है, उसका प्रमाण भी अंगुल का असंख्यातवाँ भाग ही होता है। जैसे 4 संख्या 100 संख्या का संख्यातवाँ भाग है। चार को संख्यात (5) से गुणा करने पर भी जो संख्या (4×5=20) प्राप्त होती है, वह भी 100 संख्या का संख्यातवाँ भाग है।

जो बादर शरीर है वे अन्य के आधार से रहते हैं, जैसे बादर जीव वातवलय के, आठ पृथ्वियों के तथा विमान पटलों के आश्रय से रहते हैं, जिससे वे नीचे न गिर जावें। और जो सूक्ष्म शरीर है वे जल स्थल आदि में अर्थात् लोकाकाश में सर्वत्र पाये जाते हैं, क्योंकि वे व्याघात से रहित हैं।

बादर जीव लोक के एकदेश में रहते हैं परंतु लोक का एकप्रदेश भी सूक्ष्म जीवों से रहित नहीं हैं।

शंका- यदि सूक्ष्म जीवों का शरीर व्याघात से रहित है तो वे लोकाकाश के बाहर क्यों नहीं पाये जाते?

समाधान- जहाँ तक धर्मस्तिकाय है वहाँ तक ही जीव-पुद्गलों का गमन पाया जाता है। गमन में बाह्य सहकारी कारण धर्मस्तिकाय का अभाव होने से लोकाकाश के बाहर जीव-पुद्गलों का गमन संभव नहीं हैं।

अध्याय - VIII

"जैन कर्म सिद्धान्त एवं जीव विज्ञान"

सूक्ष्म निगोदिया से लेकर मनुष्य तक समस्त ब्रह्माण्ड के 84 लाख योनियों के जीव कर्म के संयोग के कारण उत्पन्न होते हैं। संसार के जीवों की उत्पत्ति के कारण कुछ दार्शनिक पंचमहाभूत, तो कुछ प्रकृति, तो कुछ संस्कार मानते हैं तो आधुनिक वैज्ञानिक जीन्स (D.N.A), (R.N.A) मानते हैं। सर्वज्ञ तीर्थंकरों ने महाभूत-प्रकृति संस्कार जीन्स का भी सूक्ष्म मूल कारण कर्म कहा है। कर्म मुख्यतः (1) भावकर्म (2) द्रव्यकर्म हैं। जीव में जो मोह-अविद्या, राग-द्वेष, काम-क्रोध, ईर्ष्या-तृष्णा आदि वैभाविक परिणाम होते हैं उसे भाव कर्म कहते हैं और उस भाव के कारण आत्मा (जीव) के असंख्यात प्रदेश में परिस्पन्दन होता है, उससे ब्रह्माण्ड में व्याप्त कर्म वर्गणा में अनंतानंत कर्म परमाणु आकर्षित होकर आत्मप्रदेश में संश्लेषित रूप में बंध जाते हैं, उसे द्रव्य कर्म कहते हैं। यह द्रव्य कर्म भी भाव कर्म के विभिन्न स्तर के कारण विभिन्न कर्म रूप में परिणमन कर लेता है। उन अनंतानंत कर्म परमाणु में से कुछ परमाणु ज्ञान को विकृत और ढकने का काम करते हैं जिसे (1) ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं तो कुछ अनंत परमाणु दर्शन को ढकने का काम करते हैं जिसे (2) दर्शनावरणीय कहते हैं, कुछ अनंत परमाणु जीव को सांसारिक सुख-दुःख देने का काम करते हैं जिसे (3) वेदनीय कर्म कहते हैं, कुछ कर्म परमाणु जीव को मोहित/विभ्रमित करने का काम करते है, जिसे (4) मोहनीय कर्म कहते हैं, कुछ अनंत कर्म परमाणु मनुष्य पशु आदि अवस्था में रहने की अवधि को निश्चित करते हैं, जिसे (5) आयुकर्म कहते हैं, कुछ अनंत परमाणु जीवों के शरीर-शरीर के आंगोपांग निर्माण का कार्य करते हैं जिसे (6) नामकर्म कहते हैं, कुछ कर्म जीवों की सामाजिक मान्यता/प्रतिष्ठा तथा इससे विपरीत अप्रतिष्ठा का कार्य करते हैं, जिसे (7) गोत्र कर्म कहते हैं, कुछ अनंत कर्म परमाणु जिवन की आवश्यकता/इच्छा/ सफलता में बाधक बनते हैं, जिसे (8) अंतराय कर्म कहते हैं।

वैसा वर्णन अन्यत्र देश-विदेश के किसी भी ग्रंथ व दर्शन में मुझे अभी तक नहीं मिला है। निम्न में जैन धर्मानुसार इसका सविस्तार वर्णन दे रहा हूँ।

कर्म सिद्धान्तानुसार त्रस-स्थावर-शरीर

जाईअविणाभावीतसथावर उदयजो हवेकाओ।

जो जिणमदहिमभणिओ पुढवीकायादि छब्भेओ।। (181)

गाथार्थ- जाति नामकर्म के अविनाभावी त्रस व स्थावर नामकर्म उदय से काय होती है। वह जिनमत में पृथ्वीकाय आदि के भेद से छह प्रकार की कही गई है।

Embodiment is caused by the operation of mobile and immobile body. making karmas which are inseparably connected with the genus, gati (body making Karma). It (embodiment) is spoken of in Jinan philosopy of six kinds, earth embodiments and others.

Commentary:- The embodiments Kaya are of six kinds (1) earth (2) Water (3) Fire (4) Air (5) Vegetable and (6) Mobile bodies. Souls are accordingly earth, water, fire, air and mobile Vegetable bodied. Mobile beings are called, Trasa, from the Sanskrit root, tras, to fear, because they have the natural inclination to move away from objects of fear. Immobiles do not behave in this manner.

विशेषार्थ- जाति नामकर्म के साथ अविनाभावी संबंध रखने वाला त्रस व स्थावर नामकर्म है। उसके उदय से उत्पन्न हुई आत्मा की त्रस व स्थावर रूप पर्याय काय है, ऐसा सर्वज्ञ वीतराग के मत में कहा गया है। त्रस जीव है अथवा स्थावर जीव है, सो काय है ऐसा व्यवहार होता है, कहा जाता है। उद्वेगजनित क्रिया वाला त्रस और स्थितिक्रिया वाला स्थावर यह लक्षण निरक्ति से सिद्ध हो सकता है जो पुद्गल स्कंधों के द्वारा संचित किया जाता है वह काय है, जैसे औदारिक आदि शरीर। शरीर में स्थित आत्मा भी उपचार से काय है। जीवविपाकी जाति नामकर्म त्रस व स्थावर नामकर्म का कार्य होने से जीव की पर्याय ही काय है, ऐसा व्यवहार होता है, पुद्गलविपाकी शरीर नामकर्म का कार्य होने से शरीर

"जीव का अशुद्ध एवं शुद्ध स्वरूप"

मग्गणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह अशुद्ध णया।

विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया।। (13) (द्र.स. 84-89)

Again, according to impure (Vyavahara) Naya, Samsari Jivas are of fourteen kinds according to Margana and Gunasthana. But according to pure Naya, all jivas should be understood to pure.

संसारी जीव अशुद्ध नय से चौदह मार्गणा स्थानों से तथा चौदह गुणस्थानों से चौदह-चौदह प्रकार के होते हैं और शुद्धनय से सब संसारी जीव शुद्ध ही है।

शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नय से सिद्ध जीव तो शुद्ध है ही परन्तु संसारी जीव भी शुद्ध है क्योंकि शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नय केवल शुद्ध द्रव्य का ही ग्रहण करता है पर मिश्र अवस्थाओं को ग्रहण नहीं करता है क्योंकि इस नय का प्रतिपादित विषय शुद्ध द्रव्य ही होता है। अशुद्ध नय अर्थात् व्यवहार नय से संसारी जीव कर्म से युक्त हैं इस अवस्था में जीव के अनेक भेद-प्रभेद हो जाते हैं क्योंकि संसारी जीव अनंतानंत हैं और कर्म भी असंख्यात लोक प्रमाण है। इस अपेक्षा से संसारी जीव के भी संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद हो जाते हैं तथापि समझने के लिए एवं समझाने के लिए एक सुव्यवस्थित प्रणाली को अपनाकर उसमें समस्त भेद प्रभेदों को गर्भित किया जाता है। इस गाथा में आचार्य श्री ने संसारी जीवों के वर्गीकरण को मुख्य दो भेदों में किया है। (1) मार्गणा स्थान (2) गुणस्थान। मार्गणा स्थान के पुनः 14 अर्न्तभेद हो जाते हैं और उस अर्न्तभेद में भी अनेक प्रभेद होते हैं। इसी प्रकार गुणस्थान के 14 भेद होते हैं उन 14 भेद के भी अनेक प्रभेद हो जाते हैं।

मार्गणा- जीव जिन भावों के द्वारा अथवा जिन पर्यायों में खोजे जाते हैं- अनुमार्गण किये जाते हैं, उन्हें मार्गणा कहते हैं। जीवों का अन्वेषण करने वाली ऐसी मार्गणाएँ श्रुतज्ञान में चौदह कही गयी है।

चौदह मार्गणाओं के नाम- (1) गति मार्गणा (2) इन्द्रिय मार्गणा (3) काय मार्गणा (4) योग मार्गणा (5) वेद मार्गणा (6) कषाय मार्गणा (7) ज्ञान

1. **गति मार्गणा :** गति कर्मोदय जनित पर्याय ''गति'' है अथवा चारों गति में गमन करने के कारण को गति कहते हैं। वे गतियाँ चार हैं - (1) नरक गति (2) तिर्यंच गति (3) मनुष्य गति (4) देव गति।

2. **इन्द्रिय मार्गणा :** जिस प्रकार अहमिन्द्र देव बिना किसी विशेषता के ''मैं इन्द्र हूँ, मैं इन्द्र हूँ'' इस प्रकार मानते हुए प्रत्येक स्वयं को स्वामी मानता है उसी प्रकार इन्द्रियों को जानना चाहिए।

   स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द का ज्ञान जिनका चिन्ह है, ऐसे ऐकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय-चतुरीन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव हैं और वे अपने-अपने भेदों सहित हैं। एकेन्द्रिय जीव के एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है, शेष जीवों के क्रम से जिह्वा, घ्राण, चक्षु और श्रोत बढ़ते जाते हैं।

3. **काय मार्गणा :** जाति नामकर्म के अविनाभावी त्रस और स्थावर नामकर्म के उदय से होने वाली आत्मा की पर्याय को जिनमत में काय कहते हैं। इसके छह भेद हैं (1) पृथ्वी (2) जल (3) अग्नि (4) वायु (5) वनस्पति (6) त्रस।

4. **योग मार्गणा :** पुद्गल विपाकी शरीर नामकर्म के उदय से मन, वचन, काय से युक्त जीव की जो कर्मों को ग्रहण करने में कारण भूत शक्ति है उसको योग कहते हैं।

5. **वेद मार्गणा :** पुरुष, स्त्री और नपुंसक वेदकर्म के उदय से भाव पुरुष, भाव स्त्री, भाव नपुंसक होता है और नामकर्म के उदय से द्रव्य पुरुष, द्रव्य स्त्री, द्रव्य नंपुसक होता है। सो यह भाववेद और द्रव्यवेद प्रायः करके समान होता है, परन्तु कहीं-कहीं विषम भी होता है।

6. **कषाय मार्गणा :** जीव के सुख-दुःख आदि रूप अनेक प्रकार के धान्य को उत्पन्न करने वाले तथा जिसकी संसार रूप मर्यादा अत्यन्त दूर है ऐसे कर्मरूपी क्षेत्र, खेत का यह कर्षण करता है, इसलिए इसको कषाय कहते हैं। अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन इस प्रकार चार भेद होते हैं। अन्तानुबन्धी आदि चारों के क्रोध, मान, माया, लोभ इस तरह चार-चार भेद होने से कषाय के उत्तर भेद सोलह होते हैं। किन्तु कषाय के उदय स्थानों की अपेक्षा से असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं। जो सम्यक्त्व को रोके उसको अनन्तानुबन्धी, जो देश चारित्र को रोके उसको अप्रत्याख्यानावरण, जो सकल चारित्र को रोके उसको प्रत्याख्यानावरण, जो यथाख्यात चारित्र को रोके उसको संज्वलन कषाय कहते हैं।

7. **ज्ञान मार्गणा :** जिसके द्वारा जीव त्रिकाल विषयक भूत, भविष्यत्, वर्तमान काल सम्बन्धी समस्त द्रव्य और उनके गुण तथा उनकी अनेक प्रकार की पर्यायों को जाने उसको ज्ञान कहते हैं। इसके दो भेद हैं, एक प्रत्यक्ष दूसरा परोक्ष।

8. **संयम मार्गणा :** अहिंसा, अचौर्य, सत्य, शील, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन पाँच महाव्रतों का धारण करना ईर्या, भाषा, एषणा, अदाननिक्षेपण, उत्सर्ग इन पाँच समितियों का पालना क्रोधादि चार प्रकार की कषायों निग्रह करना मन, वचन, कायरूप दण्ड का त्याग तथा पाँच इन्द्रियों का जय, इसको संयम कहते हैं। अतएव संयम के पाँच भेद हैं।

9. **दर्शन मार्गणा :** सामान्य - विशेषात्मक पदार्थ के विशेष अंश को ग्रहण न करके केवल सामान्य अंश का जो निर्विकल्प रूप से ग्रहण होता है, उसको परमागम में दर्शन कहते हैं।

   सामान्य - विशेषात्मक पदार्थों की स्वरूप मात्र स्व-परसत्ता का निर्विकल्प रूप से जीव के द्वारा अवभासन होता है उसको दर्शन कहते हैं।

   पदार्थों में सामान्य विशेष दोनों ही धर्म रहते हैं; किन्तु इनके केवल स्वरूप मात्र की अपेक्षा से जो स्व-परसत्ता का अभेदरूप निर्विकल्प अवभासन होता है, उसको दर्शन कहते हैं अतएव वह निराकार हैं और इसलिए इसका शब्दों के द्वारा

10. **लेश्या मार्गणा :** लेश्या के गुण को स्वरूप को जानने वाले गणधरादि देवों ने लेश्या का स्वरूप ऐसा कहा है कि जिसके द्वारा जीव अपने को पुण्य और पाप से लिप्त करे, पुण्य और पाप के अधीन करे उसको लेश्या कहते हैं।

लेश्याओं के नियम से ये छह ही निर्देश-संज्ञाएं हैं कृष्णलेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजो लेश्या, (पीत लेश्या) पद्म लेश्या, शुक्ल लेश्या।

11. **भव्य मार्गणा :** जिन जीवों की अनंत चतुष्टय रूप सिद्धि होने वाली हो अथवा जो उसकी प्राप्ति के योग्य हों उनको भवसिद्ध कहते हैं। जिनमें इन दोनों में से कोई भी लक्षण घटित न हो उन जीवों को अभव्य सिद्ध कहते हैं।

12. **सम्यक्त्व मार्गणा :** छह द्रव्य पाँच अस्तिकाय नव पदार्थ इनका जिनेन्द्र देव ने जिस प्रकार से वर्णन किया है उस ही प्रकार से इनका जो श्रद्धान करना उसको सम्यक्त्व कहते हैं। यह दो प्रकार से होता है- एक तो केवल आज्ञा से दूसरा अधिगम से।

13. **संज्ञि मार्गणा :** नो इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम को या तज्जन्य ज्ञान को संज्ञा कहते हैं। यह संज्ञा जिसके हो उसको संज्ञी कहते और जिनके यह संज्ञा न हो, किन्तु यथा संभव इन्द्रिय जन्य ज्ञान हो उसके असंज्ञी कहते हैं।

14. **आहार मार्गणा :** शरीर नामक नामकर्म के उदय से देह-औदारिक, वैक्रियक आहारक इनमें से यथा संभव किसी भी शरीर तथा वचन और द्रव्य मनरूप बनने के योग्य नोकर्म वर्गणाओं का जो ग्रहण होता है उसको आहार कहते हैं।

II गुणस्थान का सामान्य लक्षण : दर्शन मोहनीय आदि कर्मों की उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम, आदि अवस्था के होने पर होने वाले जिन परिणामों से युक्त जो जीव देखे जाते हैं उन जीवों को सर्वज्ञ देव ने उसी गुण स्थान वाला और उन परिणामों को गुणस्थान कहा है।

(8) अपूर्वकरण (9) अनिवृत्तिकरण (10) सूक्ष्म साम्पराय (11) उपशान्त मोह (12) क्षीण मोह (13) सयोग केवलि जिन (14) अयोग केवलि जिन ये चौदह जीव समास, गुणस्थान हैं और सिद्ध इन जीव समासों गुणस्थानों से रहित हैं।

1. **मिथ्यात्व गुणस्थान का लक्षण :** मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से होने वाले तत्त्वार्थ के अश्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं। इसके पांच भेद हैं - एकान्त, विपरीत, विनय, संशयित, अज्ञान।

2. **दूसरे सासादान गुणस्थान का स्वरूप :** प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अथवा यहाँ पर 'वा' शब्द का ग्रहण किया है इसलिये द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के अन्तर्मुहूर्त मात्र काल में से जब जघन्य एक समय तथा उत्कृष्ट छह आवली प्रमाण काल शेष रहे उतने काल में अन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ में से किसी के भी उदय में आने सम्यक्त्व की विराधना होने पर सम्यग्दर्शन गुण की जो अव्यक्त अतत्व श्रद्धान रूप परिणति होती है, उसको सासन या सासादन गुणस्थान कहते हैं।

3. **तृतीय गुणस्थान का लक्षण :** जिसका प्रतिपक्षी आत्मा के गुण को सर्वथा घातने का कार्य दूसरी सर्वघाति प्रकृतियों से विलक्षण जाति का है उस जात्यन्तर सर्वघाति सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से केवल सम्यक्त्व रूप या मिथ्यात्व रूप परिणाम न होकर जो मिश्र रूप परिणाम होता है उसको तीसरा मिश्र गुणस्थान कहते हैं।

4. **अविरत सम्यग्दृष्टि :** जो इन्द्रियों के विषयों से तथा त्रस स्थावर जीवों की हिंसा से विरक्त नहीं है, किन्तु जिनेन्द्र देव द्वारा कथित प्रवचन का श्रद्धान करता है वह अविरत सम्यग्दृष्टि है।

5. **देशविरत :** जो जीव जिनेन्द्र देव में अद्वितीय श्रद्धा को रखता हुआ त्रस की हिंसा से विरत और उस ही समय में स्थावर की हिंसा से अविरति होता

युक्त होता हुआ भी व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों प्रकार के प्रमादों को करता है वह प्रमत्त संयत गुणस्थान वाला है। अतएव वह चित्रल आचरण वाला माना गया है।

7. **सप्तम गुणस्थान का स्वरूप** : जब संज्वलन और नोकषाय का मन्द उदय होता है तब सकल संयम से युक्त मुनि के प्रमाद का अभाव हो जाता है। इसलिए इस गुणस्थान को अप्रमत्त संयत कहते हैं। इसके दो भेद हैं एक स्वस्थान प्रमत्त दूसरा सातिशय प्रमत्त।

8. **अपूर्वकरण गुणस्थान** : जिसका अर्न्तमुहूर्तमात्र काल है ऐसे अधः प्रवृत्त कारण को बिताकर वह सातिशय अप्रमत्त जब प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धि को लिए हुए अपूर्वकरण जाति के परिणामों को करता है तब उसको अपूर्वकरण नामक अष्टम गुणस्थानवर्ती कहते हैं।

9. **नवमें गुणस्थान का स्वरूप** : अर्न्तमुहूर्तमात्र काल में से आदि या मध्य अन्त के एक समयवर्ती अनेक जीवों में जिस प्रकार शरीर की अवगाहना आदि बाह्य कारणों से तथा ज्ञानावरणादिक कर्म के क्षयोपशम अंतरंग कारणों से परस्पर भेद पाया जाता है, उसी प्रकार जिन परिणामों के निमित्त से परस्पर भेद नहीं पाया जाता; उनको अनिवृत्तिकरण कहते हैं। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान का जितना काल है, उतने ही उसके परिमणाम हैं। इसलिए उसके काल के प्रत्येक समय में अनिवृत्तिकरण का एक-एक ही परिणाम होता है तथा ये परिणाम अत्यन्त निर्मल ध्यान रूप अग्नि की शिखाओं की सहायता से कर्मवन को भस्म कर देता है।

10. **दशवें गुणस्थान का स्वरूप** : जिस प्रकार धुले हुए कसूमी वस्त्र में लालिमा-सूर्खी-सूक्ष्म रह जाती है, उसी प्रकार जो जीव अत्यन्त सूक्ष्म राग-लोभ कषाय से युक्त है उसको सूक्ष्म सम्पराय नामक दशम गुणस्थानवर्ती कहते हैं।

कर्म के उपशम से उत्पन्न होने वाले निर्मल परिणामों को उपशान्त कषाय ग्यारहवाँ गुणस्थान कहते हैं।

12. **बारहवें गुणस्थान का स्वरूप** : जिस निर्ग्रंथ का चित्त मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षीण हो जाने से स्फटिक के निर्मल पात्र में रखे हुए जल के समान निर्मल हो गया है उसको वीतराग देव ने क्षीण कषाय नाम का बारहवाँ गुणस्थान कहा है।

13. **तेरहवें गुणस्थान का वर्णन** : जिसका केवलज्ञान रूपी सूर्य की अविभाग प्रतिच्छेद रूप किरणों के समूह से (उत्कृष्ट, अनन्तानन्त प्रमाण) अज्ञान अन्धकार सर्वथा नष्ट हो गया हो और जिसको नव केवल लब्धियों के (क्षायिक-सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य) प्रकट होने से परमात्मा यह व्यपदेश संज्ञा प्राप्त हो गया है। इन्द्रियाँ, आलोक आदि की अपेक्षा न रखने वाले ज्ञान दर्शन से युक्त होने के कारण केवली और योग से युक्त रहने के कारण सयोग तथा घाति कर्मों से रहित होने के कारण जिन कहा जाता है, ऐसा अनादि निधन आर्ष आगम में कहा है।

14. **चौदहवें अयोग केवली गुणस्थान का वर्णन** : जो अठारह हजार शील के भेदों के स्वामी हो चुके हैं। और जिसके कर्मों के आने का द्वारा रूप आस्रव सर्वथा बन्द हो गया है तथा सत्त्व और उदयरूप अवस्था को प्राप्त कर्मरूप रज की सर्वथा निर्जरा होने से जो उस कर्म से सर्वथा मुक्त होने के सम्मुख हैं, उस योग रहित केवली को चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोग केवली कहते हैं।

उपर्युक्त जो मार्गणा एवं गुणस्थान का वर्णन किया गया है इसमें सम्पूर्ण संसारी जीवों का कथन है तथापि दोनों में कुछ सूक्ष्म भेद है। वह भेद यह है कि मार्गणा स्थान में तो विशेषतः बाह्य गति; शरीर, इन्द्रिय आदि को माध्यम करके

है। इस सिद्धान्त से सिद्ध होता है कि आध्यात्मिक दृष्टि से कोई भी जीव न छोटा है और न बड़ा है। भले बाह्य शरीर, गति, इन्द्रिय आदि से गुणस्थान की अपेक्षा छोटे-बड़े हो सकते हैं। विशेष जिज्ञासु को प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, समयसार आदि का अवलोकन करना चाहिए। यह जैन धर्म का सार्वभौम/साम्यभाव/समताभाव/समानाधिकार सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त से ही राजनीति में समाजवाद, लोकतंत्र, साम्यवाद की सही स्थापना हो सकती है। इसी से ही विश्वमैत्री, विश्वप्रेम, विश्व समाज, विश्वबन्धुत्व निरस्त्रीकरण (अस्त्ररहित राष्ट्र निर्माण), विश्वशांति आदि महान् उदात्त भावना की सम्पूर्ति हो सकती है। सिद्धान्ततःशुद्ध निश्चय नय से संसारी जीव भी अनंतज्ञान, दर्शन, सुख, सम्पन्न सिद्ध भगवान् के समान होते हुए भी व्यवहारतः अशुद्ध नय से संसारी जीव सिद्ध स्वरूप नहीं है। क्योंकि संसारी जीव कर्म परतंत्रता के कारण संसार अवस्था में अनंत शारीरिक, मानसिक दुःखों को भोगता रहता है। यदि व्यवहार नय से भी शुद्ध मानेंगे तो अनुभव रूप में उपलब्ध रूप जो दुःख है एवं कर्म परतंत्रता है उसका अभाव होने का प्रसंग आयेगा परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है और एक अनर्थ यह हो जायेगा कि संसारी जीव मुक्त जीव की तरह अनंत सुखी होगा तो मोक्ष के लिए जो भगवान् का उपदेश एवं सिद्धि की साधना की जाती है वह भी निष्फल हो जायेगी। यदि शुद्ध निश्चयनय को मानते हुए व्यवहार नय को नहीं मानेंगे तो सिद्ध भगवान् तथा संसार में स्थित अभव्य मिथ्यादृष्टि कीड़े-मकोड़े, कुत्ता, सियार, सुअर, नारकी, पापी, कामी आदि जीवों में किसी में भी किसी प्रकार अन्तर नहीं रहेगा। अभव्य तो सम्यग्दृष्टि तक कभी नहीं हो सकता है? तो वह सिद्ध कैसे हो सकता है। इतना ही नहीं संसार, मोक्ष, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मुनिव्रत, श्रावक व्रत धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान आदि का भी लोप हो जायेगा।

द्रव्य संग्रह एक संक्षिप्त सूत्रबद्ध आध्यात्मिक ग्रन्थ होने के कारण इसमें संक्षिप्त रूप में संसारी जीवों का वर्णन किया गया है। ऐसे तो जैन धर्म सर्वज्ञ है ऐसा वर्णन अन्यत्र नहीं पाया जाता है। विशेष जिज्ञासु विस्तृत अध्ययन के लिए गोम्मटसार जीव काण्ड, स्वतन्त्रता के सूत्र (तत्वार्थ सूत्र) धवला आदि का आवलम्बन ले।

यहाँ पर जिन-जिन मुख्य प्रणालियों के माध्यम से जीवों का अन्वेषण शोध-बोध किया गया है। उसको कुछ दिग्दर्शन मैं यहाँ कर रहा हूँ। यहाँ चौदह गुणस्थान, अठानवें जीव समास, छह पर्याप्ति, दस प्राण, चार संज्ञा, चार गति मार्गणा, पांच इन्द्रिय-मार्गणा, छह काय मार्गणा, पन्द्रह योग मार्गणा, तीन वेद मार्गणा, चार कषाय मार्गणा, आठ ज्ञान मार्गणा, सात संयम मार्गणा, चार दर्शन मार्गणा, छह लेश्या-मार्गणा, दो भव्य मार्गणा, छह सम्यक्त्व मार्गणा, दो संज्ञी मार्गणा, आहार मार्गणा, दो उपयोग इस प्रकार ये जीव प्ररूपणा बीस कही हैं। प्रत्येक प्ररूपणा की निरूक्ति कहते हैं - ''गुण्यते अर्थात् जिसके द्वारा द्रव्य से द्रव्यान्तर को जाना जाता है वह गुण है। कर्म की उपाधि की अपेक्षा सहित ज्ञान, दर्शन उपयोग रूप चैतन्य प्राणों से जो जीता है वह जीव है। वे जीव जिनमें सम्यक् रूप से ''आसते'' रहते हैं वह जीव समास हैं। ''परि'' अर्थात् समंत रूप से आप्ति अर्थात् प्राप्ति पर्याप्ति है जिसका अर्थ है शक्ति की निष्पत्ति। जिनसे जीव ''प्राणन्ति जीते हैं अर्थात् जीवित व्यवहार के योग्य होते हैं वे प्राण हैं। आगम प्रसिद्ध वांछा या अभिलाषा को संज्ञा कहते हैं। जिनके द्वारा या जिनमें जीव खोजे जाते हैं वे मार्गणा हैं। मार्गयिता खोजे जाते हैं वे मार्गणा हैं। मार्गयिता खोजने वाला तत्त्वार्थ का श्रद्धालु भव्य जीव है। ''मृग्य'' अर्थात् खोजने योग्य चौदह मार्गणा वाले जीव हैं मृग्यपने के कारणपने या अधिकारपने को प्राप्त गति आदि मार्गणाओं में उन -उन मार्गणा वाले जीवों को खोजा जाता है। ज्ञान सामान्य और दर्शन सामान्य रूप उपयोग मार्गणा का उपाय है। इस प्रकार इन प्ररूपणाओं के सामन्य अर्थ का कथन किया।

अध्याय - IX

"जीव विज्ञान की समीक्षा"

तिर्यंच गति, तिर्यंच आयु के उदय से तिर्यंच (पंचस्थावर, विकलत्रय, पशु पक्षी) होता है और मनुष्य गति, मनुष्यायु के उदय से जीव मनुष्य होता है अतः विज्ञान के क्रमविकास सिद्धान्त के अनुसार जो निम्न श्रेणीय प्राणी विकास करता हुआ वानर से नर बना, यह सिद्धान्त पूर्ण सत्य नहीं है, भले मरने के बाद कोई एक तिर्यंच अपना कर्मानुसार मनुष्य भी क्यों न बनता हो। मिथ्यादृष्टि (सत्य-तथ्य के विश्वास से रहित अवस्था) सम्पूर्ण तिर्यंच (एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक) शुद्ध तिर्यंच है और द्वितीय गुणस्थान से लेकर पंचम गुणस्थान के तिर्यंच आध्यात्मिक दृष्टि से मनुष्य आदि के समान होते हैं, अतः वे मिश्र तिर्यंच है। ऐसा जीव तो मिथ्यादृष्टि मनुष्य और देव से भी श्रेष्ठ है, परन्तु शरीर-गति-आयु की दृष्टि (अपेक्षा) तिर्यंच ही रहेंगे।

उपरोक्त तिर्यंचों में से पंच स्थावरों के अन्तर्गत वनस्पतिकायिक की निम्नतम प्रजाति निगोदिया है। इसके पुनः दो भेद है- (1) नित्य निगोद, (2) इतर निगोद। प्रकारान्तर से सूक्ष्म एवं बादर (स्थूल) भेद से निगोदिया के दो भेद हैं। ब्रह्माण्ड में इनकी संख्या सबसे अधिक अर्थात् अक्षय अनन्तानंत है जो कि ब्रह्माण्ड (लोकाकाश) में ठसाठस भरे हुए हैं। सूक्ष्म नामकर्म के उदय से जीव, सूक्ष्म जीव बनता है। यह सूक्ष्म प्रभेद पंच स्थावरों में ही होता है जो कि ब्रह्माण्ड में सर्वत्र बिना बाधा के गमनागमन करते हैं। उनका अपघात से भी अकाल मरण नहीं होता है। उनको न कोई मार सकते हैं न उनसे किसी अन्य की क्षति पहुँचती है। कुछ द्वीन्द्रियादि जीव इतने छोटे होते है कि उन्हें मानव आखों से नहीं देखा सकता तथापि जैन धर्म में उसे सूक्ष्म जीव नहीं कहा गया है क्योंकि उसका सूक्ष्म नामकर्म का उदय नहीं होता है। अतः वे अविरोध रूप में सर्वत्र गमनागमन भी नहीं कर सकते हैं। एकेन्द्रिय जीव से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य तक में अपर्याप्त जीव भी होते हैं, हो सकते हैं। 4 स्थावरों को छोड़कर वनस्पति से

सूक्ष्म-व्यापक-वैश्विक दृष्टिकोण से विचार करने पर अनेक सत्य-तथ्य उजागर होते हैं यथा- (1) संसारी जीव एक दूसरे के आश्रय से रहते हैं। (2) "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" अर्थात् परस्पर उपकार करना जीवों का धर्म है। इसे ही आधुनिक वैज्ञानक दृष्टि से पारिस्थितकी तंत्र कहते हैं। (3) भले संसारी जीव के समान मुक्त जीवों के लिए एक-दूसरे के लिए सहायता की किसी भी प्रकार की आवश्यकता ही नहीं रहती है क्योंकि वे केवली हैं; स्वयं पूर्ण हैं तथापि उनके अमूर्तिक ज्ञानानंद शरीर में और भी अनन्त मुक्त जीव समाविष्ट होकर रहते हैं। इतना ही नहीं अनंतानंत सूक्ष्म निगोदिया जीव भी उनके ज्ञानात्मक शरीर में समाहित होकर रहते हैं तथापि वे भी परस्पर को किसी प्रकार प्रभावित नहीं करते। (4) वर्तमान विज्ञान में सूक्ष्म जीवों से भी जैन धर्म में वर्णित सूक्ष्म जीव छोटा है तथापि वे भी रासायनिक प्रक्रिया से, भौतिक तत्व से उत्पन्न नहीं होते हैं। वे भी क्रम-विकास करते हुए मानव से भगवान् बन सकते हैं। (5) अनंतानंत जीव संसार (ब्रह्माण्ड) में अनादि काल से विद्यमान होने से जीव की उत्पत्ति होना, न ही आवश्यक है, न ही संभव है। (6) प्रत्येक जीव स्व-स्व भाग्य एवं पुरुषार्थ के माध्यम से मरणान्तर 84 लाख योनियों में जन्म लेता है और मानव पर्याय में आत्म विशुद्धि के बल पर परमात्मा (अरहन्त, सिद्ध) बन सकता है। (7) दूसरे जीवों को क्षति पहुंचाए बिना अपितु यथासंभव दूसरे जीवों के उपकार करते हुए जीवात्मा से परमात्मा बनना ही धर्म है। (सूक्ष्म जीव-वि.से शुद्ध पृ. 32-34)

जीव विज्ञान के डॉ. अल्पातोव की कल्पना भारतीय कल्पना से स्पष्ट मेल खा जाती है। उन्होंने जीवन को दो रूपों में बाँटा हैं- (1) सक्रिय स्वरूप, (2) निष्क्रिय स्वरूप। सक्रिय स्वरूप के अन्तर्गत ऐसे जीवित प्राणी आते हैं, जो वातावरण में रहकर उसके सम्पर्क से अपने आप की वृद्धि करते रहते हैं। जीवन के निष्क्रिय स्वरूप का क्षेत्र उससे अधिक व्यापक, विस्तृत एवं अनन्त है। निष्क्रिय स्वरूप बीजों या बीजाणुओं के रूप में जीवित होने की शक्तियुक्त

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि शरीर की बीज अवस्था बिल्कुल सूक्ष्म और अदृष्य है, उसे प्रकाशस्वरूप भी कह सकते हैं, उसकी उर्ध्वगति या अधोगति अच्छे और बुरे भावों, विचारों, संकल्पों एवं क्रियाकलापों में होती है। इसलिए जीव के अन्यान्य ग्रहों में आवागमन का कारण भी सूक्ष्म रूप में विचार और भावनाएँ तथा स्थूल रूप में क्रिया-कलाप, रहन-सहन और खान-पान होता है अर्थात् स्वर्ग और नर्क की प्राप्ति या उनसे छूटना एक ओर स्थूल शरीर की शुद्धि पर भी आश्रित है और सूक्ष्म शरीर की शुद्धता पर भी। यहाँ तक दो बातें निर्विवाद सत्य सिद्ध होती हैं- (1) पारलौकिक जीवन, (2) आवागमन की स्थिति में सुख और दुःख की अनुभूति। तब फिर हमें उपनिषदों की इस मान्यता की ओर लौटना ही पडता है-

''न ह्यन्ततरतो रूपं किंचन सिध्येत्। नो एतन्नाना। तद्यथा रथस्यारेषु नेमिरर्पिता नाभावरा अर्पिता एवमेदैता भूत मात्राः प्रज्ञामात्रास्वर्पिताः प्रज्ञामात्रा प्राणे अर्पिता। एष लोकपाल एष लोकाधिपतिरेष सर्वेश्वरः स म आत्मेति विद्यात् स म आत्मेति विद्यात्।'' कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद.

अर्थात्- प्रज्ञामात्रा और भूतमात्रा के स्वरूप में कोई विभिन्नता नहीं है। जैसे रथ की नेमि अरों में और अरे रथ-नाभि के आश्रित रहते हैं, वैसे ही भूत-मात्राएँ

प्रज्ञा मात्राएँ प्राण में स्थित है। यह प्राण ही अजर-अमर सुखमय और प्रज्ञामात्रा है। यद्यपि वह श्रेष्ठ कर्मों से न तो बढता है और न बुरे कर्मों से घटता है, किन्तु जो शुभ कर्म करते हैं, प्रज्ञा और प्राण रूप परमेश्वर उन्हें ऊपर के लोकों (स्वर्ग) में पहुँचाता है तथा जो बुरे कर्म करते हैं, उन्हें नीचे के लोकों (नर्क) में धकेल देता है। यह आत्मा सब लोकों का अधीश्वर, लोकपाल एवं सबका स्वामी, गुणों वाला प्राण ही आत्मा है।

वैज्ञानिक मान्यताएँ या तीर-तुक्का. ?

अनेक दिशाओं में बिखरा-फैला. ज्ञान और अनुभवों का क्षेत्र बहुत व्यापक एवं क्षेत्र की नई से नई जानकारी होती रह सके। यह खुलापन, जागरूकता और परिश्रम ही प्रतिभा है। प्रतिभा का अर्थ है क्षमतावान मनुष्य। प्रतिभाशालियों की संख्या जितनी अधिक होती है और उनमें आपसी सहयोग जितना प्रगाढ होता है, ज्ञान-विज्ञान का उतना ही बहुमुखी विकास होता है। जहाँ और जब संख्या और सहयोग कम होता है, तब वहाँ संकीर्णता बढती-फैलती है।

आधुनिक वैज्ञानिक विकास-क्रम के प्राथमिक चरणों में ऐसी ही संकीर्णता का बोलबाला था। यद्यपि उनके पीछे प्रगति की सत्प्रेरणा और सदुत्साह ही था, किन्तु ज्ञानराशि के अपरिचय के कारण वह बाल-उत्साह अनेक काल्पनिक मान्यताओं को वास्तविक मान बैठा था। उस बाल कल्पना की उडान कभी ठीक दिशा में हो जाती रही। तो तीर बनती रही, लक्ष्य वेध में सफल होती रही। कभी वह यों ही तुक्का होकर रह जाती थी। गम्भीर उद्योगों प्रयासों के सत्परिणाम देखकर लोग प्रत्येक वैज्ञानिक परिकल्पना और मान्यता को ही सत्य मानने लगे। किन्तु प्रगति के साथ-साथ यह स्पष्ट होता जा रहा है कि परिकल्पनाओं मान्यताओं में तथ्यों नियमों के साथ ही पूर्वाग्रह प्रेरित कल्पनाओं का अच्छा खासा सम्मिश्रण है। नियम और तथ्य अपनी जगह पर हैं। उनसे कभी लाभान्वित होते और प्रगति करते हैं। मान्यतायें भिन्न हैं। वे अपनी खींचतान का कारण बनती हैं। समझदारी का तकाजा है कि मान्यताओं को कसौटी पर कसने के लिए सदा तैयार रहा जाए, उन्हें सदा सही सिद्ध करने के मोह से मुक्त रहा जाए। विज्ञानवादियों की विकासवादी मान्यताएँ भी ऐसी ही हैं, जिन्हें लोग विज्ञान द्वारा प्रमाणित और पुष्ट, निर्विवाद सत्य मान बैठे हैं।

यह माना जाने लगा हैं कि सृष्टि के विकास-प्रयोजन एवं कार्यकारण की पूरी-पूरी जानकारी विज्ञान को हो चुकी है और वैज्ञानिक फॉर्मूलों द्वारा हर बात की सही-सही जाँच हो सकती है। दूध का दूध, पानी का पानी किया जा सकता है।

विकासवाद की मान्यता है कि ''सृष्टि एक निश्चित क्रम से क्रमशः विकसित हो रही है। पृथ्वी पर मानवीय सभ्यता का भी विकास हुआ है

की मान्यताएँ हैं जब मनुष्य को प्रकृति पर विजय प्राप्त नहीं थी और यह प्रकृति की विचित्रता से विमोहित, आतंकित, चकित और विचलित होकर इन रहस्यवादी भावनाओं की शरण में जाता था। आज के उन्नत मनुष्य को विश्व के सभी रहस्य ज्ञात होने का सूत्र प्राप्त है। उसे इन मान्यताओं से चिपटे रहने के पिछडेपन से पूरी तरह मुक्त होना चाहिए।''

सर्वप्रथम तो डार्विन के विकासवादी जोड-तोड की सैद्धान्तिक परीक्षा ही की जा सकती है। उनके अनुसार एककोशीय जीव अमीबा प्रारम्भ में हुआ। फिर वह हाइड्रा में विकसित हुआ। उससे मछली, मेंढक, सर्पणशील पक्षी, स्तनधारी जीव आदि के श्रेणी विकास पथ से बात बंदर तक पहुंची। वही बंदर प्रागैतिहासिक मानव के रूप में परिवर्तित हुआ। मनुष्य निरन्तर अपना विकास करता बढ रहा है। विकासवाद द्वारा यह नहीं बताया जा सकता कि अमीबा से ही नर-मादा दो श्रेणियाँ कैसे विकसित हुई? उस एककोशीय जीव से दोकोशीय हाइड्रा कैसे पैदा हुआ? क्या अन्य जीव भी इसी गुणोत्तर श्रेणी में रखे जा सकते हैं। सर्पणशील जीव श्रेणी विकास के क्रम में पंखधारी बने। तब चीटे, पतंगे, मच्छर जैसे कृमि किस प्रक्रिया में पनपे? मांसाहारी पक्षी, जल-जन्तु आदि विकसित हुए तो गाय, भैंस, बकरी, हाथी जैसे शाकाहारी प्राणी कैसे बन गए? सहसा माँसाहार से शाकाहार की प्रवृत्ति परिवर्तन किस इच्छा के कारण हुआ? फिर एक ही जीव के नर-मादा में अन्तर का कारण क्या है? हाथी के दाँत होते हैं हथिनियों के नहीं। मुर्गे में कलंकी होते हैं, मुर्गियों में नहीं। मोर जैसे रंग-बिरंगे पंखों वाले की मादा मोरनी बिना पंखों के क्यों? पक्षियों की उम्र कुछ ही वर्ष होती है, सर्प और कछुओं की आयु सैंकडों वर्ष होती है, ऐसा क्यों? एक जीव से दूसरी किस्म का उसी से मिलता जीव इच्छा के कारण विकसित हुआ, तब एक ही विकास-श्रेणी में और एक-दूसरी से जुडी विकास-श्रेणी में इतनी भिन्नताएँ क्यों है?

सुविधापूर्ण जीवन की इच्छा ने शरीर संस्थानों में इच्छित परिवर्तन किए, तो मनुष्य की इच्छा शक्ति तो अत्यधिक प्रबल और विकसित हैं। वह पक्षियों को मारने का अभ्यास कर रहा है। तब भी वह इन विशेषताओं से सम्पन्न क्यों नहीं बन पा रहा? हजार-हजार वर्षों से मनुष्य द्वारा की जा रही सामुहिक इच्छा कोई प्रभाव नहीं दिखा रही?

शायद विकासवादी कह दें कि वह ऐसी इच्छाओं में उतना समय और शक्ति नहीं लगाता। अपितु औद्योगिक वैज्ञानिक विकास में प्रवृत्त हैं और इन क्षेत्रों में निरन्तर अभूतपूर्व प्रगति कर रहा है। परन्तु नित नए ऐतिहासिक-पुरातात्त्विक तत्त्व सामने आकर उनका यह दावा भी खंडित कर रहे हैं। यह स्पष्ट होता जा रहा है कि प्राचीन काल का मनुष्य पिछडा होने के स्थान पर बौद्धिक सामर्थ्य, विज्ञान, तकनीक, उद्योग, वाणिज्य, नभ संचरण, स्थापत्य, वास्तुकला और आध्यात्म सभी में इतना विकसित था कि वहाँ तक पहुँचने में आधुनिक विज्ञान को शताब्धियाँ लग सकती है।

अन्य लोगों में भी जीवन है-

हमारी आकाशगंगा में प्रायः एक करोड नक्षत्र हैं। ऐसी अगणित आकाशगंगाएँ विराट् ब्रह्माण्ड में है। प्रत्येक आकाशगंगा में प्रायः इतने ही नक्षत्रों की संभावना है जितनी कि अपनी आकाशगंगा में। इतने ग्रह-नक्षत्रों को सर्वथा निर्जीव नहीं माना जा सकता। अनुमान है कि समुचे ब्रह्माण्ड में प्रायः एक हजार तो ऐसे नक्षत्र होने चाहिए जैसे कि पृथ्वी की विकसित सभ्यता है। उनमें से कितने ही अविकसित स्तर के प्राणी हो सकते हैं पर कितनों में ही मनुष्य की तुलना में अधिक बुद्धिमान प्राणी हो सकते हैं।

दक्षिण अमेरिकी के सेरों डिपास्को क्षेत्र के प्यूरियोरिकन कस्बे में एक शक्तिशाली रेडियन दूरबीन लगाई गई है, जिसका व्यास एक हजार फुट है। इसके शक्तिशाली लेन्सों द्वारा देखे जाने पर ब्रह्माण्ड की स्थिति सम्बन्धी बहुत कुछ जानकारियाँ मिलती हैं। मिली सूचनाओं में से एक यह भी है कि सम्भवतः मनुष्य की तुलना में कहीं अधिक बुद्धिमान प्राणी अन्य लोकों में विद्यमान है। इतना ही नहीं, वे

सुप्रसिद्ध खगोलशास्त्री कार्ड एडवर्ड सैगन ने खगोल विज्ञान संबंधी नई शोधें की हैं और इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि ब्रह्माण्ड में अन्यत्र भी जीवन है और वह मनुष्य से कहीं अधिक बुद्धिमान तथा साधन सम्पन्न है।

कहा जाता है कि अन्य ग्रहों में भी पृथ्वी जैसी परिस्थितियाँ न होने से वहाँ विकसित स्तर का जीवन होने में सन्देह है। इस सन्देह का निवारण शिकागो विश्वविद्यालय के विज्ञानी स्टेलने मिलर ने अपनी प्रयोगशाला में अन्यान्य परिस्थितियों में जीवन को विकसित करके दिखाया है। रूस के वैज्ञानिक इयोशेफ्लेवलीस्की ने अपने ग्रंथ 'द इण्टेलिजेण्ट लाइफ इन द यूनिवर्स' में इस तथ्य की पुष्टि की है कि अकेले पृथ्वी पर बुद्धिमान प्राणी नहीं रहते।

अमेरिकन एसोशिएसन फॉर द एडवान्समेण्ट सांइसेज (ए.ए.ए.एस.) नामक संस्था ने उडनतश्तरियों के संबंध में अपना अभिमत 'साइन्स' पत्रिका में व्यक्त किया है कि वे दृष्टिभ्रम अथवा प्रकृति प्रवाह का मायाजाल नहीं है। इनमें से अनेकों में जीवनधारी प्राणियों और खोजी उपकरणों का प्रमाण पाया गया है। अमेरिका की यू.एफ.ओ. एसोशिएसन तो बाकायदा ऐसे कई प्रामाणिक तथ्यों का संकलन कर चुकी है।

कहा जाता है कि शीत या ताप की अधिकता में जीवन विकसित नहीं हो सकता किन्तु पाया गया है कि 160 डिग्री फा. तक के उबलते हुए तापमान में भी जीवन अपना अस्तित्त्व बनाये रखता है। साथ ही शून्य से 100 डिग्री फा. कम वाली ठण्डक में भी वे हो सकते हैं। उनकी शारीरिक संरचना ऐसी होती है कि असाह्य शीत या ताप के मध्य भी अपना क्रिया-कलाप जारी रख सकते हैं।

सौर-मण्डल के अन्य ग्रहों के सम्बन्ध में भी जो नवीनतम खोजे हुई हैं, उनसे सिद्ध होता है कि उनमें भी विकसित जीवन रहा है और वह सिकुडे हुए रूप में अभी भी स्वाभाविक स्थिति में अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं। जीवन तत्व (प्रोटोप्लाज्म) अन्तरिक्ष की घातक किरणों से केवल मूर्च्छित होता है, नष्ट

काल में जब जीवन का प्रादुर्भाव हो रहा था, तब यहाँ के वायुमण्डल में हाइड्रोजन, अमोनिया, मीथेन आदि गैसीय तत्वों का बाहुल्य था। पानी इस रूप में नहीं था। पानी की आवश्यकता अमोनिया से भी पूरी होती रह सकती है, ऐसा ब्रह्माण्ड वैज्ञानिकों का मत हैं।

चन्द्रमा, मंगल और शुक्र पृथ्वी के निकटतम पडौसी हैं। इनके बीच कितनी ही तरंगों का आदान-प्रदान चलता रहता है। इस आधार पर अभी भी वैज्ञानिक क्षेत्र की यह मान्यता है कि इन ग्रहों से पृथ्वी पर या पृथ्वी से इन ग्रहों पर भी जीवन तत्व का आदान-प्रदान होता रहता होगा इससे निष्कर्ष निकलता है कि वहाँ किसी न किसी प्रकार का ऐसा जीवन होगा जो अपने क्षेत्र में न पायी जाने वाली सामग्री को एक-दूसरे के अनुदानों के सहारे उपलब्ध करता होगा।

सेविलें (स्पेन) में सम्पन्न हुए जीव विज्ञान के 24वें अन्तरिक्षीय सम्मेलन (कॉस्मो बायोलॉजिस्टर कॉन्फ्रेन्स) में विश्व के प्रमुख वैज्ञानिकों ने इस तथ्य को मान्यता प्रदान की कि ब्रह्माण्ड में विकसित जीवन का स्तर मौजूद है। उसके साथ सम्पर्क बढाकर हमें अपने ज्ञान एवं सुविधा साधनों की अभिवृद्धि करनी चाहिए।

मेरी लैण्ड युनिवर्सिटी (यू.एस.ए.) के विकास विज्ञान विभाग के अध्यक्ष डॉ. सिरिल पैरूमान ने कहा कि परिस्थितियाँ जीवन को सीमित नहीं कर सकती। जीवन तत्व की यह विशेषता है कि वह हर प्रकार की परिस्थितियों में अपने आपको ढाल लेता है और अपनी सत्ता को परिस्थितियों के अनुरूप ढाँचे में ढालकर अपनी सत्ता बनाये रह सकता है।

इस मान्यता को यू.सी.एल.ए. के मैलकिन कालनन शिकागो, यूनिवर्सिटी के डॉ. हैराल्ड पूरे, मियामी यूनिवर्सिटी के सिडनी फाक्स आदि ने अपने-अपने ढंग से व्यक्त किया है एलडुअस हक्सले ने अपने ग्रंथ 'दि ब्रेव न्यू वर्ल्ड' में यह अनुमान लगाया है कि किस ग्रह की कैसी परिस्थितियों में वहाँ किस प्रकार के किस आकृति-प्रकृति के जीवधारी हो सकते हैं और वे किस प्रकार प्रतिकूल

जानते हैं, आयन मण्डल रूपी छत्र के कारण कुछ तो वायुमण्डल में प्रवेश करते ही जल जाती हैं लेकिन कुछ कभी-कभी जमीन तक आ पहुँचाती है। ऐसे कितने ही खण्ड अभी तक पाये गये हैं, उनसे पता चलता है कि उल्का क्षेत्र में खनिजों, गैसों तथा रसायनों का ऐसा बाहुल्य है, जिनमें किसी न किसी प्रकार के जीवन का उद्भव हो सकता है। जीवन विकास के मूलभूत सिद्धान्तों के आधार पर अन्य लोकों में जीवन विकास की पूरी-पूरी गुंजाइश है।

आज तो हम मनुष्य-2 के बीच सद्भाव सहकार का क्रम तक चलता रहता नहीं देखा जाता। मनुष्यों और पालतू पशुओं के बीच तक वह तारतम्य नहीं बना है, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि समानता और एकता के सिद्धान्तों का निर्वाह बन पडा है। एक-दूसरे शोषण की आपाधापी ही इन दिनों चल रही है किन्तु वह दिन दूर नहीं कि प्रस्तुत अनगढपन का अन्त होगा और स्नेह, सहयोग के सहारे न्यायोचित निर्वाह का क्रम चल पडेगा। नवयुग की यही विशेषता होगी कि पदार्थों को ही सब कुछ न मानकर आदर्शो को व्यवहार में उतारा जायेगा।

इससे भी एक कदम आगे बढकर सच्चे विज्ञान की प्रगति हमें यह भी सिखायेगी कि ग्रह-नक्षत्रों के बीच भी जीवधारी आदान-प्रदान की शैली अपनाएँ और अपनी उपलब्धियों से अन्य लोकवासियों को उसी प्रकार का लाभ पहुंचाएँ जैसा कि जीवात्मा की गरिमा के अनुरूप पहुँचाया जाना चाहिए।

जीवों के लिए पुद्गल द्रव्य का उपकार

शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् (19)

शरीरवाङ्मनसप्राण-अपानाः जीवानां पुद्गलानां उपकारः।

The function of matter forms the physical basis of the bodies, speech, mind the respiration of the souls.

शरीर,वचन,मन और प्राणापान यह पुद्गलों का उपकार है।

से बनते हैं अर्थात् शरीर आदि पुद्गल स्वरूप है। गोम्मट्टसार जीवकाण्ड में विश्व में स्थित 23 पौद्गालिक वर्गणाओं में से किन-किन वर्गणाओं से उपरोक्त शरीर आदि बनते हैं उसका वर्णन निम्न प्रकार किया है-

आहारवग्गणादो तिण्णि सरीराणि होंति उस्सासो।
णिस्सासो वि य तेजोवग्गणखंधादु तेजंगं।। (607)

तेईस जाति की वर्गणाओं में से आहारवर्गणा के द्वारा औदारिक, वेक्रियक, आहारक, ये तीन श्रीर और श्वासोच्छवास होते हैं तथा तेजोवर्गणा रूप स्कन्ध के द्वारा तैजस श्रीर बनता है।

भासमणवग्गणादो कमेण भासा मणं च कम्मादो।
अट्ठविहकम्मदव्यं होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।। (608)

भाषा वर्गणा के चार प्रकार का वचन, मनोवर्गणा के द्वारा हृदय स्थान में अष्ट दल कमल का द्रव्यमन तथा कर्माण, वर्गणा के द्वारा आठ प्रकार के कर्म बनते हैं- ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

''शरीर आदि पौद्गलिक हैं'' इसको सिद्ध करने के लिए तार्किक शिरोमणि भट्टअकलंक देव ने राजवार्तिक में तार्किक एवं वैज्ञानिक प्रणाली से बहुत सुन्दर वर्णन किया है, जो निम्न प्रकार है-

1. शरीर पौद्गलिक- औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तेजस और कर्माण इन पांचों शरीर कर्म मूलतः सूक्ष्म होने से अप्रत्यक्ष है और जो स्थूल है वह प्रत्यक्ष है। मन अप्रत्यक्ष ही है। वचन और श्वासोच्छावास कुछ प्रत्यक्ष और कुछ अप्रत्यक्ष हैं- क्योंकि ये इन्द्रियों के विषय नहीं हैं अतः इन्द्रियों से अतीत है। अतः शरीर पुद्गल है।

2. कार्माण शरीर पौद्गलिक- यद्यपि कार्माण शरीर आकार रहित है तथापि मूत्तिमान् पुद्गलों के सम्बन्ध से अपना फल देता है, जैसे ब्रीहि (चावल) आदि धान्य पानी, धूप आदि मूर्त्तिमान पुद्गलों के सम्बन्ध से पकता है। इसलिए

अपना फल देता है, अतः कार्माण शरीर पौद्गलिक है, क्योंकि कोई भी अमूर्त पदार्थ मूर्त्तिमान पदार्थ के सम्बन्ध से नहीं पकता तथा अमूर्त पदार्थ मूर्तिमान पदार्थ से विपच्यमान दृष्टिगोचर नहीं होता।

वचन पौद्गलिक- पुद्गल के निमित्त से होने से दोनों प्रकार के वचन पौद्गलिक हैं। वचन दो प्रकार के हैं- द्रव्यवचन और भाववचन दोनों ही पौद्गलिक है क्योंकि दोनों ही पुद्गल के कार्य हैं अर्थात् पुद्गल के निमित्त से होते है। भाववचन, वीर्यन्तराय और मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण के क्षयोपशम तथा अङ्गोपाङ्ग नामकर्म के उदय के निमित्त से होते है। अतः भावमन पुद्गल का कार्य होने से पौद्गलिक है, यदि वीर्यान्तराय और मति श्रुत-ज्ञानावरण रूप कर्मों का क्षयोपशम नहीं हो तो भाववचन हो ही नहीं सकता। भाववचन के सामर्थ्य वाले आत्मा के द्वारा प्रेर्यमाण पुद्गल वचनरूप से परिणत हैं अर्थात् आत्मा के द्वारा तालु आदि क्रिया से जो पुद्गल वर्गणाएं वचनरूप परिणत होती हैं उसे द्रव्यवचन कहते हैं। श्रोतेन्द्रिय का विषय होने से द्रव्य वचन भी पौद्गलिक है।

प्रश्न- यदि शब्द पौद्गलिक है तो एक बार ग्रहण होने के बाद उनका पुनः ग्रहण क्यों नहीं होता? अर्थात् एक बार उच्चारण करने के बाद वही शब्द पुनः सुनाई क्यों नहीं देता?

उत्तर- बिजली के समान असंहतत्व होने से पुनः गृहीत नहीं होते हैं जिस प्रकार चक्षु इन्द्रिय के द्वारा उपलब्ध बिजली द्रव्य एक बार चमक कर फिर शीघ्र ही विर्शीण; (नष्ट) हो जाता है अतः पुनः आँखों से दिखाई नहीं देता हैं, उसी प्रकार श्रोतेन्द्रिय के द्वारा एक बार उपलब्ध (सुने गये) वचन सम्पूर्ण से शीघ्र ही विर्शीण हो जाने से पुनः दुबारा नहीं सुनाई देते।

प्रश्न - यदि शब्द पौद्गलिक हैं तो चक्षु आदि के द्वारा शब्दों का ग्रहण क्यों नहीं होता?

उत्तर- घ्राण के द्वारा ग्रहण करने योग्य होने पर गन्धद्रव्य रसादि की अनुपलब्धि के समान चक्षु आदि के द्वारा गृहित नहीं होते है। घ्राणेन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य ग्राह्य नहीं होते है, उसी प्रकार श्रोतेन्द्रिय के विषयभूत शब्द सूक्ष्म होने से चक्षु आदि शेष इन्द्रियों के द्वारा गृहित नहीं होते।

शब्द को अमूर्तिक कहना उचित नहीं है क्योंकि शब्द का मूर्त्तिमान पदार्थ के द्वारा ग्रहण, प्रेरणा और अवरोध देखा जाता है। शब्द अमूर्त्तिक है 'अमूर्त आकाश का गुण होने से' यह कथन भी ठीक नहीं है क्योंकि मूर्त्तिमान पौद्गलिक पदार्थों के ग्रहण होता है। कर्णेन्द्रिय का विषय होने से मूर्त्तिमान, पौद्गलिक पदार्थों के द्वारा ग्रहण होता है जो अमूर्त होता है वह किसी मूर्त्तिमान इन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य नहीं होता। वायु के द्वारा प्रेरित रुई की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान को प्रेरित किया जाता हैं क्योंकि विरूद्ध दिशा में स्थित व्यक्ति को वह शब्द सुनाई देता है, अर्थात् जिस तरफ की वायु होती है उधर ही अधिक सुनाई देता है, वायु के प्रतिकूल होने से समीपस्थ को भी सुनाई नहीं देता है। इससे अनुमान होता है कि शब्द प्रेरित है और यंत्र के द्वारा प्रेरित कर दूसरे देशों में भिजवाया भी जाता है। अमूर्त पदार्थ मूर्त्तिमान पदार्थों के द्वारा प्रेरित नहीं होता। नल, बिल, रिकार्ड आदि में नदी के जल की तरह शब्द रोका जाता है, परन्तु अमूर्त्तिक पदार्थ मूर्त्तिमान किसी पदार्थ के द्वारा अवरुद्ध हुआ नहीं देखा जाता है। मूर्त्तिमान पदार्थों के द्वारा अभिभूत- तिरस्कृत होने से शब्द को मूर्त्तिमान जानना चाहिए। जैसे सूर्य के प्रकाश से अभिभूत (तिरोभूत) होने वाले होने से तारा आदि मूर्त्तिक हैं, उसी प्रकार सिंह की दहाड, हाथी की चिंघाड और भेरी का घोष आदि महान् शब्द के द्वारा शकुनि (पक्षियों) के मन्द शब्द तिरोभूत होते है तथा कांसी आदि के बर्तन गिरने पर उत्पन्न ध्वनि ध्वनि अन्तर के आरंभ में हेतु होती है। अथवा गिरि-गहर-कूप आदि में शब्द करने पर प्रतिध्वनि उत्पन्न होती है। पर्वत की गुफाओं आदि से टकराकर होती है। अतः शब्द मूर्त्तिक है।

प्रश्न- अमूर्त्तिक पदार्थों का भी मूर्त्तिमान पदार्थों के द्वारा तिरोभाव देखा जाता है, जैसे मूर्त्तिमान मदिरा के द्वारा अमूर्त्तिक विज्ञान (इन्द्रियज्ञान) का तिरोभाव

उत्तर- मूर्त्तिक मदिरा के द्वारा इन्द्रियज्ञान का जो अभिभव देखा जाता है वह भी मूर्त्त से मूर्त्तिक का ही अभिभव है, क्योंकि क्षायोपशमिक ज्ञान इन्द्रियादि पुद्गलों के आधीन होने से पौद्गलिक है, अन्यथा (यदि विज्ञान पौद्गलिक नहीं है तो) आकाश के समान विज्ञान का भी मदिरा आदि के द्वारा अभिभव नहीं हो सकता था। अतः उपर्युक्त हेतुओं से शब्द पौद्गलिक पदार्थ सिद्ध होता है।

4. **प्राणापान पौद्गलिक-** कोष्ठ (उदर) की वायु की उच्छवासलक्षण प्राण कहते हैं। वीर्यान्तराय ज्ञाना वरण कर्म का क्षयोपशम और अंगोपाङ्ग नाम कर्म के उदय की अपेक्षा रखने वाले आत्मा के द्वारा शरीर कोष्ठ से जो वायु बाहर निकाली जाती है, उसको उच्छ्वासलक्षण प्राण कहते हैं।

बाह्य वायु की अभ्यन्तर करना अपान है। वीर्यान्तराय ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम और अंगोपाङ्ग नाम कर्म के उदय की अपेक्षा रखने वाले आत्मा के द्वारा जो बाह्य वायु भीतर ली जाती है, उस निःश्वास को अपान कहते है। ये सोच्छ्वास (प्राणापान) आत्मा के जीवन में कारण होते हैं अतः इनके द्वारा पुद्गल आत्मा का उपकार करता है।

इन सब का प्रतिघात देखा जाता है अतः ये सब मूर्त्तिक हैं। उन प्राणापान और वाङ् (वचन), मन, श्वासोच्छ्वास का प्रतिघात आदि होने से इन को मूर्त्तिमान (पौद्गलिक) समझना चाहिए। जैसे भय के कारणों से तथा वज्रपात आदि के शब्दो के द्वारा मन का प्रतिघात और मदिरा आदि के द्वारा मन का अभिभव देखा जाता हैं। हाथ से मुख और नाक को बन्द कर देने पर श्वासोच्छ्वास का प्रतिघात और कष्ठ में कफ आदि के आजाने से श्वासोच्छ्वास पौद्गलिक हैं क्योंकि मूर्त्तिक पदार्थो के द्वारा अमूर्त्तिक पदार्थ के अभिघात और अभिभव (रुकावट) नहीं हो सकते।

श्वासोच्छ्वास रूपी कार्य से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। इनके द्वारा आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि होती है; क्योंकि प्राणापानादि कर्म आत्मा के कार्य हैं अतः आत्मा रूपी कारण के बिना श्वासोच्छ्वास रूपी कार्य नहीं हो

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च। (20)

जीवानां सुख-दुःख जीवित-मरण-उपग्रहाश्च पुद्गलानामुपकारों भवति।

Soul experience pain, pleasure, life and death through the agency of matter.

सुख, दुख, जीवन और मरण ये भी पुद्गलों के उपकार हैं। 19 नम्बर सूत्र में बताया गया कि, परिमाण विशेष से गृहित पुद्गल जैसे- शरीर, वचन, मन और श्वासोच्छ्वास चतुष्टय क्रम से गमन, व्यवहरण, चिन्तवन और श्वासोच्छ्वास रूप से जीव का उपकार करते है वैसे सुख आदि भी पुद्गलकृत उपकार हैं उसको बताने के लिए इस सूत्र में कहते हैं कि सुख, दुःख, जीवन, मरण भी पुद्गल कृत उपकार है।

(1) सुख- बाह्य कारणों के कारण और साता वेदनीय के उदय से जो प्रसन्नता होती है, उसे सुख कहते है। जब आत्मा से बद्ध साता वेदनीय कर्म द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादि बाह्य कारणों से परिपाक को प्राप्त होता है।

(2) दुःख- असाता वेदनीय कर्म के उदय से आत्म परिणामों में संक्लेश होता है वह दुःख है। जब आत्मा से बद्ध असाता वेदनीय कर्म द्रव्य, क्षेत्रादि बाह्य कारणों से परिपाक को प्राप्त होते है तब आत्मा के जो संक्लेश परिणाम होते है, उसे दुःख कहा जाता है अर्थात् सातावेदनीय के उदय में सुख और असाता वेदनीय के उदय को दुःख कहते हैं।

(3) जीवित- भवस्थिति में कारणभूत आयुकर्म द्रव्य से सम्बन्धित जीव के प्राणापान लक्षण क्रिया का उपरम नहीं होना ही जीवित है। भवधारण के कारण आयु नाम का कर्म है। उस आयु कर्म के उदय से प्राप्त भवस्थिति को धारण करने वाले जीव के पूर्वोक्त प्राणापान (श्वासोच्छ्वास) क्रिया का चालू रहना उसका उच्छेद नहीं होना ही जीवित है।

(4) मरण- उस श्वासोच्छ्वास का उच्छेद ही मरण है। जीव के करण भत

जीवों का उपकार

परस्परोग्रहो जीवानाम्। (21)

परस्परोग्रहो जीवानां उपकारः भवति।

The Mundane souls help the support each other.

परस्पर सहायता में निमित्त होना जीवों का उपकार है।

स्वामीसेवक आदि कर्म से वृति (व्यापार) को परस्परोपग्रह कहते हैं। स्वामी, नौकर, आचार्य (गुरु) शिष्य आदि भाव से जो वृति होती है, उसका परस्पर उपग्रह कहते हैं, जैसे-स्वामी अपने धन का त्याग करके (रुपयादि प्रदान करके) सेवक का उपकार करते हैं और सेवक स्वामी के हितप्रतिपादन और अहित के प्रतिषेध द्वारा उसका उपकार करता है। आचार्य (गुरु) उभय लोक का हितकारी मार्ग दिखाकर तथा हितकारी क्रिया का अनुष्ठान कराकर शिष्यों का उपकार करते हैं और शिष्य गुरु के अनुकूल वृति से उपकार करते हैं।

यद्यपि 'उपग्रह' का प्रकरण है, फिर भी इस सूत्र में 'उपग्रह' शब्द के द्वारा पूर्व सूत्र में निर्दिष्ट सुख-दुःख, जीवित और मरण इन चारों का ही प्रतिनिर्देश किया है। इन चारों के सिवाय जीवों का अन्य कोई परस्पर उपग्रह नहीं है किन्तु पूर्व सूत्र में निदिष्ट ही उपकार है।

स्त्री-पुरुष की रति के समान परस्पर उपकार का अनियम प्रदर्शित करने के लिए पुनः 'उपग्रह' वचन का प्रयोग सुखादि में सर्वथा नियम परस्परोपकार का नहीं है, यह बताने के लिए पुनः उपग्रह वचन का प्रयोग किया है; क्योंकि कोई जीव अपने लिए सुख उत्पन्न करता हुआ कदाचित् दूसरे जीव को वा दो जीवों को वा बहुत से जीवों को सुखी करता है और कोई जीव अपने को दुःखी करता हुआ एक जीव को, दो जीवों को या बहुत से जीवों को दुःखी करता है अथवा कभी दो, बहुत जीवों तथा अपने आपके लिए सुख या दुःख एक करता हुआ दूसरे एक वा दो वा बहुत से जीवों के लिए सुख दुख उत्पन्न करता है। इस प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

(भव्य केशलोंच समारोह सम्पन्न)

औरंगाबाद के मेयर (महापौर) व आमदार (विधायक)

श्री किशनचन्द जी तनवानी द्वारा आचार्य श्री

कनकनन्दी जी गुरुदेव ससंघ को चातुर्मास करने हेतु विनती -----

मेवाड की सुरम्य अरावली पर्वतमाला के लघु ग्राम टोकर के राजकीय विद्यालय में आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के केंशलोंच समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में महाराष्ट्र प्रदेश की ऐतिहासिक नगरी औरंगाबाद के गुरु भक्त जन प्रतिनिधि आमदार श्री किशनचन्दजी तनवानी ने आचार्य श्री ससंघ को आगामी वर्षायोग (चातुर्मास) करने हेतु हार्दिक अनुरोध किया। इसके पूर्व भी औरंगाबाद के उपनगरों के जैन समाज के प्रतिनिधि गुरुदेव को लगातार आकर निवेदन कर रहे हैं। इस अवसर पर गुरुदेव ने अपनी प्रकृति, नियम एवं गैस से बने हुए भोजन को पर्यावरण प्रदूषक, रोगकारक, अपमृत्यु, दुर्घटना आदि के विषय की चर्चा भी की तो श्री तनवानी जी ने कहा हे गुरुदेव आपके लिए मैं मेवाड़ से लेकर महाराष्ट्र के विहार से लेकर आपके प्रवास तक भी लकड़ी, कोयला सिगड़ी की व्यवस्था करूंगा एवं यह भी कहा कि जैसी भक्ति आपको मेवाड़-बागड़ में अनुभव हुई इससे भी अधिक बढ़-चढ़कर आपको मराठवाड़ा के केन्द्र औरंगाबाद एवं आस-पास के ग्रामों में प्राप्त होगी, वहाँ के लोग यहाँ से भी अच्छे हैं। इस सम्बन्ध में और भी सविस्तार चर्चा आचार्य श्री से की।

उपरोक्त केशलोंच समारोह के अवसर पर आचार्य श्री ने केशलोंच का महत्त्व साधना एवं आध्यात्म दृष्टि से बताते हुए कहा भारत देश की महानता संस्कृति एवं विश्व को योगदान आदि विषयों पर विश्व कवि रवीन्द्रनाथ एवं अल्बर्ट आइन्सटीन के बीच हुई चर्चा का सार बताते हुए गुरुदेव ने कहा कि आज के

है। आज युग को अणुबम की नहीं अणुव्रत की आवश्यकता है। केशलोंच अयाचक वृत्ति, अहिंसा, संयम आदि गुणों की वृद्धि का साधन है। स्थानीय लोगों को गुरुवर ने अपनी संस्कृति की महानता, गौरव, स्वाभिमान, गुरुभक्ति आदि न छोड़ने की प्रतिज्ञा कराई। इस अवसर पर स्थानीय बच्चे, बच्चियों, युवा, महिलाओं आदि ने भी गुरुदेव रचित गीत व कविताओं की सुन्दर प्रस्तुति दी। आर्यिका क्षमाश्री माताजी आदि ने भी गुरुदेव की पूजा-स्तुति करते हुए अपने विचार रखे। ब्र. सोहनलालजी देवड़ा ने आचार्य श्री के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में बताया। मंच संचालन श्री भरतभाई ने किया। -शुभकामनाओं सह-

मुनिश्री सुविज्ञसागर,

संघस्थ आ. श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव, ग्राम टोकर प्रवास में-

त्रय दिवसीय महोत्सव

(वर्षायोग - गुरु पूर्णिमा - वीरशासन जयन्ती का महत्त्व)

सेमारी (राज.) त. सराड़ा, जिला - उदयपुर

ग्राम सेमारी में दिनांक 3/7/2011 को परमपूज्य वैश्विक विचारक आध्यात्म वेत्ता, सिद्धान्त चक्रवर्ती, अभीक्ष्ण ज्ञानयोपगी वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव का प्रातः वेला में सोल्लास मंगल प्रवेश हुआ प्रवेश के समय ग.आ. सुप्रकाश मति माता जी व सेमारी के भक्तों ने भक्ति रस में झूमते गाते गुरुदेव का भव्य स्वागत किया।

14 जुलाई को संसंघ वर्षायोग स्थापन कार्यक्रम सोल्लास सम्पन्न हुआ। चातुर्मास स्थापना दौरान आचार्य श्री ने आगमोक्त पद्धति से सारी क्रिया सम्पन्न कर दिग्बंधन आदि किया तथा समाज को चातुर्मास का वैज्ञानिक आध्यात्मिक महत्त्व समझाया और कहा कि चातुर्मास स्व-पर कल्याण व आत्मिक गुणों की जागृती हेतु होता इसलिए सभी आत्मशांति, कांति व आनंद प्राप्त करें। गुरु जीवन को अनुशासित किया। उसी प्रकार हम भी अपने जीवन को अनुशासित बनाये। गौतम जैसा शिष्य प्राप्त होने पर महावीर भगवान् की दिव्य ध्वनि खिरी जिससे वीर शासन जयंति का शुभारंभ हुआ। इस पावन अवसर गुरुदेव की भक्तों ने भक्ति पूर्वक पूजा आराधना कर पुण्यलाभ प्राप्त किया मुनि सुविज्ञ सागर जी ने गुरु वंदना से सभा का शुभारंभ किया।

चातुर्मास स्थापना के अवसर पर चारों ओर से भक्त पधारे। महाराष्ट्र, देउलगांव राजा, औरंगाबाद के भक्तों ने महाराष्ट्र पधारने व अगला चातुर्मास करने हेतु विशेष निवेदन किया। गुरुदेव ने सभी भक्तों को आशीर्वाद देकर आनंदित किया। गुरुदेव ने चातुर्मास में सभी भक्तों को, समयानुशासन, धनानुशासन, धर्मानुशासन में रहकर किस प्रकार आत्म कल्याण करें यह प्रायोगिक शिक्षा देना प्रारंभ किया है। चातुर्मास के अवसर पर स्वाध्याय, शोध पूर्ण ग्रंथ लेखन, कविताओं की रचना, देश-विदेश से पधारने वाले जैन अजैन वैज्ञानिक, प्रोफेसर, कुलपति, डा., विद्वानों को प्रशिक्षण, देश-विदेश में चल रही धर्म प्रभावना के कार्यक्रम भी चलते रहेंगे। प्रस्तुति- आ. क्षमा श्री

श्रुत (साहित्य) पर्व विशेष

हम ज्ञान, संस्कृति, वैभव के खजाने पर बैठकर भीख मांग रहे हैं

जैन ज्ञान-विज्ञान-संस्कृति-साहित्य-आगम के महान पर्वश्रुत-पञ्चमी के शुभ अवसर पर मेवाड अञ्चल के सांस्कृतिक ग्राम सेमारी में प.पू. वैश्विक ज्ञान-विज्ञान प्रसारक वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव (ससंघ) सानिध्य में अनूठी संगठन-समन्वय-साहित्य जागरण की अलख जगी। पू.गुरुदेव ने ग्राम के तीन स्थल 1. गणपति चौक 2. आदिनाथ दि. जैन मन्दिर सभागृह 3. सदर बाजार में प्राचीन ज्ञान-विज्ञान साहित्य से लेकर वर्तमान में गुरुदेव द्वारा देश-विदेश में चल रहे आगम साहित्य की प्रभावना की जानकारी दी। यह पर्व स्वयं

धर्म-दर्शन-विज्ञान-पर्यावरण के समन्वय रूप में वि.वि. से लेकर विश्व धर्म संसद तक हो रहा है जिसके समक्ष आज सारा विश्व नतमस्तक है। गुरुदेव ने भारतीयों को अपने हुतगत गौरव के प्रति जागरूक रहने का आह्वान करते हुए कहा कि हम ज्ञान-विज्ञान-संस्कृति-वैभव के खजाने पर बैठकर भीख मांग रहे हैं।

इस अवसर पर जयपुर से शाकाहार-पर्यावरण रथ का ग्राम में आगमन हुआ, जिसके साथ पधारे युवा शास्त्री विद्वानों द्वारा आचार्य श्री संघ को ससम्मान निवेदन पूर्वक सभा में पधारने व सम्बोधित करने हेतु ले गये जिसमें गुरुदेव ने शाकाहार-पर्यावरण व आध्यात्म आदि विषयों को वर्तमान वैज्ञानिक सन्दर्भ में जोड़ते हुए प्रभावी प्रस्तुति दी। सभा के पश्चात् आगन्तुक युवा कार्यकर्त्ताओं को गुरुदेव ने अपना साहित्य, आशीर्वाद व शुभाकांक्षा सह प्रदान किया। जिससे सभी अभिभूत व आनन्दित हुए। उदयपुर से पधारे धर्म-दर्शन सेवा संस्थान के अध्यक्ष डॉ. माणकचन्दजी ने गुरुदेव के साहित्य कृतित्त्व आदि की जानकारी दी। चीतरी से पधारे युवा कार्यकर्त्ता श्री मणिभद्र, दीपेश, मयंक, राजन व कॉलोनी से पधारे श्री खुशपाल जी आदि गणमान्य लोगों ने अपने-अपने विचार रखे व गुरुदेव की 197 वीं कृति ''आध्यात्मिक ज्ञानानन्द'' का विमोचन किया गया। स्थानीय बच्चों व महिलाओं ने भी विमोचन किया। कुमार निखिल, यश, रोमिल आदि बच्चों ने श्रुत पञ्चमी महोत्सव का मंगलाचरण गुरुदेव की कविता के माध्यम से किया।

श्रुतसाहित्य के आराधक, शुभकामनाओं सह
मुनि सुविज्ञसागर, संघस्थ आ.श्री
दि. 6-6-2011, सेमारी (राज.)

फ्लोरिडा वि.वि. अमेरिका से आगत प्रो. डॉ. बिटनी बॉमन की धर्म एवं दर्शन सम्बन्धी चर्चा = आचार्य श्री कनकनन्दी से

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव जैनधर्म एवं भारतीय संस्कृति को आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भारत के विश्वविद्यालय से लेकर विश्वस्तर पर प्रचार-प्रसार करने के लिए प्रयासरत हैं जिसके अन्तर्गत धार्मिक एवं वैज्ञानिक शोधपूर्ण साहित्यों की रचना तथा देश-विदेश के जैन-अजैन वैज्ञानिक स्वशिष्यों को प्रशिक्षण देकर उनके माध्यम से भारत के वि.वि.से लेकर विदेश के वि.वि. व विश्व धर्म संसद तक धर्म प्रचार कार्य में प्रयासरत हैं, इसके अन्तर्गत आज (दि. 4/6/2011) को फ्लोरिडा अन्तर्राष्ट्रीय वि.वि. अमेरिका से डॉ. बिटनी बॉमन तथा डॉ. नारायणलालजी कछारा (आ.श्री के स्वशिष्य) सेमारी ग्राम में आकर साधुओं की आहार चर्या के अवलोकन के बाद आचार्य श्री से जैन धर्म के विभिन्न पक्षों को लेकर जिज्ञासा प्रगट की एवं आ. श्री ने उनके प्रश्नों का उत्तर सविस्तार, वैज्ञानिक एवं दार्शनिक पद्धति से समाधान किया। डॉ. बामन ने अमेरिका अंग्रेजी में प्रश्न किया एवं आ.श्री ने भारतीय अंग्रेजी में समाधान किया। मध्य-मध्य में डॉ. कछारा द्विभाषी का कार्य करते रहे।

सबसे पहले आ. श्री ने उन्हें अंग्रेजी में ही भारत आने का एवं साधु-सन्तों के दर्शन करने हेतु उन्हें आशीर्वाद व धन्यवाद दिया फिर उन्हें आ. श्री ने उनके उद्देश्य एवं कार्य के बारे में जानकारी ली, विशेषतः प्रो. बिटनी की जिज्ञासा जैनधर्म के आध्यात्मिक-वैज्ञानिक-पर्यावरण सम्बन्धी रही जिसका समाधान आ.श्री ने वैज्ञानिक-आध्यात्मिक दृष्टिकोण से दिया। आ. श्री ने भी उन्हें पाश्चात्य संस्कृति की विशेषताओं के बारे में प्रश्न किया और उन्होंने उसका समाधान भी किया। आ. श्री ने उन्हें यह बताया कि विज्ञान सत्य मार्ग पर होने पर भी परम सत्य में पहुँचा नहीं है तथा वैज्ञानिक भी कोई

वैज्ञानिक अधिक विनम्र, प्रगतिशील, उदार हैं किन्तु अधिकांश धार्मिक लोग आध्यात्मिक सत्य तथ्य से रहित रूढ़िवादी, संकीर्ण है इसलिए अभी की आवश्यकता धर्म एवं धार्मिकों को विज्ञानमय एवं वैज्ञानिकों को धर्ममय बनना।

जब डॉ. कछारा से कुछ दिन पहले पता चला कि प्रो. बिटनी आ. श्री से चर्चा करने के लिए आ रहे हैं तब आ. श्री ने ''विश्वशान्ति पाठ पढ़ाते हैं-भारतीय सूत्र'' (वैश्विक ज्ञान-विज्ञान है भारतीय ज्ञान) नामक कविता की रचना की थी जिसके माध्यम से आ. श्री ने उन्हें प्रायः आधा घण्टा तक अंग्रेजी में जैनधर्म के बारे में तथ्यात्मक जानकारी दी जिससे वे बहुत प्रसन्न एवं प्रभावित हुए एवं ई-मेल के द्वारा सम्पर्क करने के लिये कहा एवं अभिभूत होकर निवेदन पूर्वक पुनः पधारने का मानस दर्शाया।

आ. श्री स्व एवं वैज्ञानिक शिष्यों द्वारा रचित अंग्रेजी साहित्य डॉ. बिटेनी को प्रदान किया जिससे वे बहुत आनन्दित हुए।

डॉ. बिटेनी का अभिमत

Thanks for this poetry. It is a tribute to planetary becoming, a recognition that we human beings live in a multi-prespectival world, evolving toward an unknown future.

Your work on "religion & science" is truly inspiring me to work harder toward a better planetary future for all life on the planet.

In search of the many truths, may I never fall into the slumber of ignorance & " blind faith" whatever form it may take In gratitude,

Whitney Bauman, Ph.D.

आ. कनक नन्दी के भक्त U.G.C में

Prof. (Dr.) Sohan Raj Tater in the meeting with University Grant Commission, New Delhi authorities as UGC Panel Member on 8th Feb. 2011

आ. कनक नन्दी के शिष्य अ.भा. दर्शन परिषद में

आ. कनक नन्दी के शिष्य विश्व धर्म सभा में

पाँचवी विश्वधर्म सभा में डॉ. कच्छारा के व्याख्यान में उपस्थित माँ करुणामयी एवं भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति जी (मैलबोर्न ऑस्ट्रेलिया 2009)
डॉ. कच्छारा आ. कनक नन्दी के प्रतिनिधित्व रुप में भाग लिया।

आ. कनक नन्दी के भक्त U.G.C में